भारत का संविधान
सिद्धांत और व्यवहार

कक्षा 11 के लिए राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तक

11103

© NCERT not to be republished

विद्यया ऽमृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

11103 – भारत का संविधान सिद्धांत और व्यवहार
कक्षा 11 के लिए पाठ्यपुस्तक

ISBN 81-7450-590-3

प्रथम संस्करण
मई 2006 ज्येष्ठ 1928
पुनर्मुद्रण
जनवरी 2007 माघ 1928
जनवरी 2008 माघ 1929
जनवरी 2009 माघ 1930
जनवरी 2010 माघ 1931
जनवरी 2011 पौष 1932
मार्च 2013 फाल्गुन 1934
जनवरी 2013 अग्रहायण 1935
दिसंबर 2014 पौष 1936
दिसंबर 2015 अग्रहायण 1937
जनवरी 2017 माघ 1938
मार्च 2018 फाल्गुन 1939
फ़रवरी 2019 फाल्गुन 1940
जनवरी 2020 माघ 1941
मार्च 2021 फाल्गुन 1942 (NTR)
दिसंबर 2021 अग्रहायण 1943
अक्तूबर 2022 कार्तिक 1944
अप्रैल 2024 चैत्र 1946

PD 15T SU

© ***राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2006***

₹ 160.00

आवरण पर अंकित चित्र ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। पहला कार्टून शंकर द्वारा 1950 में भारत का संविधान लागू होने के समय बनाया गया। दूसरा कार्टून आर.के. लक्ष्मण ने भारत की आज़ादी की 50वीं वर्षगाँठ पर बनाया और टाइम्स ऑफ इंडिया में 1997 में प्रकाशित हुआ।

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा चार दिशाएँ प्रिंटर्स (प्रा.) लि., जी-39-40, सैक्टर-3, नोएडा- 201 301 (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एनसीईआरटी के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एनसीईआरटी कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : अनूप कुमार राजपूत
मुख्य संपादक : श्वेता उप्पल
मुख्य उत्पादन अधिकारी : अरुण चितकारा
मुख्य व्यापार प्रबंधक (प्रभारी) : अमिताभ कुमार
संपादक : मरियम बारा
सहायक उत्पादन अधिकारी : ओम प्रकाश

आवरण और सज्जा
श्वेता राव

चित्रांकन
राजीव कुमार

कार्टून्स
इरफ़ान

© NCERT not to be republished

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और अपने अनुभव पर विचार करने का अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों व स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें। ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितना वार्षिक कैलेण्डर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में विचार-विमर्श और ऐसी गतिविधियों को प्राथमिकता देती है, जिन्हें करने के लिए व्यावहारिक अनुभवों की आवश्यकता होती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक विकास समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् सामाजिक विज्ञान सलाहकार समूह के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन और राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तक समिति के मुख्य

© NCERT not to be republished

सलाहकार प्रोफ़ेसर सुहास पळशीकर तथा प्रोफ़ेसर योगेंद्र यादव के विशेष आभारी हैं। इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कई शिक्षकों ने योगदान दिया; इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री और सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों व सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 दिसंबर 2005

© NCERT not to be republished

एक चिट्ठी आपके नाम

'प्यारे विद्यार्थी!'

इस किताब के शीर्षक को देखकर शायद आपके मन में सवाल उठे कि 'भारत के संविधान' के बारे में दुबारा क्यों पढ़ना पड़ रहा है? क्या पिछली कक्षा में मैंने उसकी पढ़ाई नहीं की थी? आप ठीक कहते हैं – आपने पिछली कक्षा में भारतीय शासन-व्यवस्था की बुनियादी बनावट और थोड़ा-बहुत भारत के संविधान के बारे में पढ़ा था। लेकिन, किताब उससे आगे की कहानी कहती है जितनी आप पिछली कक्षा में सुन चुके हैं।

आपने अब राजनीतिशास्त्र को अपना विषय चुना है और अब आप इसे अगले दो सालों तक पढ़ेंगे। राजनीतिशास्त्र से दो-चार होने का इससे बेहतर तरीका और क्या हो सकता है कि हम इसे अपने देश की राजनीति के माध्यम से जानें? भारत के संविधान ने अपने लिए जो रास्ते अपनाए हैं उन्हें जानना भारतीय राजनीति को समझने की पहली सीढ़ी है। इसी तरह, भारतीय राजनीति को जानकर हम दूसरे देशों की राजनीति को भी जान सकते हैं। हमें उम्मीद है कि संस्थागत ढाँचे और उसके इर्द-गिर्द मौजूद सत्ता की राजनीति के अध्ययन से आपको राजनीति के नियमों और सिद्धांतों की जानकारी हो सकेगी। इसी कारण, यह किताब आपको बताती है कि हमारा संविधान किस तरह अपना कामकाज करता और हमारी राजनीति को एक आकार देता है। इस किताब में आपको संविधान में वर्णित कानूनी प्रावधानों या तकनीकी ब्यौरों के दर्शन नहीं होंगे। दरअसल, किताब यह बताती है कि किस तरह वास्तविक राजनीति के जमा-जोड़ से संस्थाएँ शक्ल अख्तियार करती हैं।

नये ढंग की इस पाठ्यपुस्तक को लिखने की प्रेरणा हमें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 से मिली। पाठ्यचर्या में कहा गया है कि पढ़ाई-लिखाई में दुहराने अथवा रट्टा लगाने की ज़रूरत नहीं। इसकी जगह, 'सामाजिक-आर्थिक और अवधारणागत समझ' को बनाने-बढ़ाने पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। इस किताब की प्रस्तावना स्वयं एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक की कलम से लिखी गई है। इसमें नयी पाठ्यचर्या के सोच और दर्शन को स्पष्ट किया गया है। राजनीतिशास्त्र का नया पाठ्यक्रम इस बात को मानता है कि भारतीय संविधान के प्रावधानों और उनके कामकाजों के बारे में विद्यार्थी की समझ को बढ़ाने की ज़रूरत है।

इस कारण इस किताब में संविधान के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा जानकारी देने के बजाय संविधान के बुनियादी तर्क और वास्तविक जीवन में इसकी परिणतियों पर ज़ोर दिया गया है। यह किताब आपका परिचय संविधान की धारणा से करायेगी, संविधान के बनने और इसके कामकाज की कथा सुनाएगी। यह तो निश्चित है ही कि हम इस किताब में संविधान के विभिन्न मुख्य प्रावधानों की चर्चा करेंगे। लेकिन, इसमें हमने तीन और विशेषताएँ जोड़ी हैं।

© NCERT not to be republished

आपके मन में यह सवाल उठता होगा कि संविधान में एक खास व्यवस्था को ही क्यों अपनाया गया है, किसी और को क्यों नहीं? पाठ्यपुस्तक में आपकी इस जिज्ञासा का समाधान किया गया है। यह तो हुई पहली बात! दूसरी, इस किताब के सहारे आप समझ सकेंगे कि वास्तविक राजनीति के साथ चलकर संस्थाओं का विकास होता है। इसी कारण इस किताब की दौड़ सन् 1950 पर आकर नहीं रुकती। पुस्तक के अध्याय पिछले 50 या उससे ज़्यादा सालों के राजनीतिक-इतिहास के उदाहरणों से आपकी मुठभेड़ करवाती है। हमें उम्मीद है कि इस किताब को पढ़कर आपको भारतीय राजनीति के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा जानने का चस्का लग जाएगा और यह किताब आपको भारतीय राजनीति पर केंद्रित अगले साल की पुस्तक के लिए तैयार करेगी। तीसरी बात, इस पुस्तक के सहारे आप भारत और उसके संविधान की तुलना दुनिया के दूसरे देशों से कर सकेंगे जिनके सवाल और सरोकार तो मिलते-जुलते हैं लेकिन जवाब अलग-अलग हैं। इसलिए, जहाँ संभव हो वहाँ यह पुस्तक आपको बताती है कि दुनिया में दूसरी जगहों पर क्या हुआ। हमें आशा है कि आपको एक संस्था की दूसरी संस्थाओं और सामाजिक-स्थितियों से तुलना करने की आदत लग जाएगी।

अनुच्छेद

पढ़ने में यह विषय आपको दिलचस्प लगे इसके लिए हमने किताब में कुछ और खूबियाँ जोड़ी हैं। हर अध्याय में **संविधान में वर्णित कुछ अनुच्छेद** दिए गए हैं। इससे आपको संविधान की भाषा और शब्द-योजना का सही-सही परिचय मिल जाएगा। हर अध्याय में आपको कुछ **उद्धरण** नज़र आएँगे। इनमें से अधिकांश **उद्धरण संविधान-सभा की बहसों** के हैं। इसका एक उद्देश्य तो राजनीतिक बुद्धिमता और दूरदृष्टि की अपनी इस विरासत से आपको रू-ब-रू कराना है और दूसरा उस घटनाक्रम को आपके सामने रखना है, जो संविधान-निर्माण के समय पेश आया।

संविधान सभा के वाद-विवाद से लिए गए उद्धरण

स्रोत : http://parliamentofindia.nic.in/ls/debates/debates.htm

अनेक अध्यायों में **कार्टून** दिए गए हैं। इन कार्टूनों का उद्देश्य महज हँसाना-गुदगुदाना नहीं है। ये कार्टून आपको किसी बात की आलोचना, कमज़ोरी और संभावित असफलता के बारे में बताते हैं। हमें आशा है कि इन कार्टूनों का मजा लेने के साथ-साथ आप इनके आधार पर राजनीति के बारे में सोचेंगे और बहस करेंगे। इसके अतिरिक्त, किताब में जगह-जगह पन्ने के हाशिए पर आपको दो चरित्र नज़र आएँगे। कार्टूनिस्ट इरफ़ान ने इन्हें बड़े जतन से आपके लिए उकेरा है ताकि आप इन दोनों चरित्रों से अपने को जोड़ सकें। ये दोनों चरित्र ठीक-आप जैसे हैं – सवाली, बातूनी और कुछ-कुछ शरारती! कभी-कभी तो ये चरित्र पुस्तक के लेखकों से कहीं ज़्यादा साहस दिखाते हैं। ये बड़े मुश्किल

© NCERT not to be republished

मुन्नी

सवाल पूछते हैं और ऐसी बातें कह जाते हैं कि उस पर कुछ देर रुककर सोचने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इन चरित्रों के नाम हैं – **उन्नी** और **मुन्नी**। इस किताब को लिखने के क्रम में हमें भी ये चरित्र प्यारे लगने लगे। हमें पूरी उम्मीद है कि आप को भी ये किरदार प्यारे लगेंगे। शायद, इनसे प्रेरणा लेकर आप अपने शिक्षकों से ज़्यादा सवाल पूछने लगें और कुछ हमारे पास भी भेजें।

हर अध्याय के अंत में प्रश्नावली के नाम से कुछ प्रश्न पूछे गए हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) से प्रेरित-उत्साहित होकर और कुछ युवा साथियों की मदद से हमने प्रश्नावली के रूप में कुछ नए प्रयोग करने की कोशिश की है। परिषद् के निदेशक को उम्मीद है कि इस तरह की किताबों से मूल्यांकन की पद्धति में सुधारों को भी बल मिलेगा। इस तरह के प्रश्न और पहेलियाँ आपके अंदर छुपी संभावनाओं को उजागर करने का काम करेंगे। हमारी उम्मीद है कि आपको अधिकतर सवाल रुचिकर लगेंगे और आपको ऐसा नहीं लगेगा कि आपकी हरदम परीक्षा ली जा रही है। आप चिट्ठी या ई-मेल लिखकर ज़रूर बताएँ कि हमारी यह उम्मीद कहाँ तक पूरी हुई।

इस पुस्तक को एक टीम ने मिलकर छः महीने के कड़े परिश्रम से पूरी की। इस टोली में स्कूल और कॉलेज के अध्यापक, शिक्षाविद्, राजनीतिशास्त्री और कलाकर्मी शामिल थे। इस पृष्ठ को पलटते ही आपका परिचय इस टोली के सदस्यों से होगा। शायद आप भी पसंद करेंगे कि टोली के सदस्यों को इस बात के लिए धन्यवाद दिया जाय कि इन्होंने अलग तरीके की किताब लिखने में अपनी ऊर्जा लगाई। इस पूरे प्रयास में परिषद् के निदेशक प्रोफ़ेसर कृष्ण कुमार ने हमारी मदद भी की और मार्गदर्शन भी। इसी प्रकार हमें प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन, प्रोफ़ेसर गोपाल गुरु, प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी, प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे और राष्ट्रीय निगरानी समिति के सदस्यों से भी भरपूर मदद तथा बहुमूल्य सुझाव मिले।

बड़ी संख्या में लोगों ने पूरी उदारता से इस पुस्तक को रचने में अपना समय लगाया। प्रोफ़ेसर राजीव भार्गव, प्रोफ़ेसर प्रताप भानु मेहता, प्रोफ़ेसर संदीप शास्त्री, डॉ. संजीव मुखर्जी, डॉ. संजय लोढा, डॉ. पुष्कर राज, डॉ. शैलेंद्र देवलंकर और चैत्रा रेडकर जैसे विद्वत् जनों ने पुस्तक के अध्याय लिखने में मदद की। पंकज पुष्कर, मनीष जैन, एलेक्स जार्ज और एम. मनीषा ने पूरी टोली के आधार का कार्य किया। इन्होंने पुस्तक के लिए शोध करके पुस्तक का प्रारूप बनाने में रात-दिन एक किया और पुस्तक की अन्य सामग्री तैयार की। समाज विज्ञान की शिक्षा के प्रति इनकी अंतर्दृष्टि और गुणवत्ता के प्रति आग्रह ने पुस्तक को एक अलग स्तर प्रदान किया। मनीष जैन सवालों में नवाचार और गुणवत्ता के अपने

उन्नी

सरोकार पर आखिरी दम तक अड़े रहे। पंकज पुष्कर ने पिछले छः महीनों में इस किताब को पूरा करने में जी तोड़ मेहनत की। विकासशील समाज अध्ययन पीठ की डॉ. श्रीरंजनी और डॉ. संजीर आलम ने हर ज़रूरत के वक्त पर भरपूर मदद की। मिशिगन विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ता अमित आहुजा ने अन्य देशों से तुलनात्मक उदाहरण उपलब्ध कराए।

हमें विश्वास है कि आपको श्वेता राव द्वारा तैयार किया हुआ यह डिज़ाइन पसंद आएगा। पुस्तक के हिंदी संस्करण की सज्जा योगेश कुमार समदर्शी ने बड़े जतन से की है। इरफ़ान ने आपके लिए उन्नी-मुन्नी नाम के चरित्र गढ़े हैं, उम्मीद है कि आपको इनमें अपनी ही तस्वीर नज़र आएगी।

मूलतः अंग्रेजी में तैयार की गई इस पुस्तक को हिंदी में लाना एक बड़ी जिम्मेदारी थी। हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में अच्छी गुणवत्ता की पाठ्य सामग्री विकसित करने की जिम्मेदारी को हम पूरी संजीदगी से निभाना चाहते हैं। हमारा प्रयास है कि हिंदी की पुस्तक में भाषा का बहाव और गुणवत्ता का स्तर वही हो जो किसी भी मूल पुस्तक में होता है। इस चुनौती को स्वीकार करते हुए अधिकतर पाठों का पहला अनुवाद अनिल कुमार वर्मा ने किया। वाक्यों की बनावट सुधारने में वरिष्ठ पत्रकार अरविंद मोहन और अभय कुमार दुबे ने मार्ग दर्शन किया। हिंदी संस्करण को मूल पुस्तक से पंक्ति-दर-पंक्ति मिलाने और भाषा में रवानगी लाने का श्रमसाध्य कार्य चंदन कुमार श्रीवास्तव ने किया। पंकज पुष्कर इस पूरी प्रक्रिया में एक कड़ी को दूसरी कड़ी से जोड़ने का काम करते रहे।

असल में यह राजनीति विज्ञान की पढ़ाई को अधिक जीवंत, प्रासंगिक और आपके लिए रुचिकर बनाने का एक सामूहिक प्रयास है। हमको इसके लिए विकासशील समाज अध्ययन पीठ के लोकनीति कार्यक्रम का विशेष उल्लेख करना है। वस्तुतः इस कार्य के लिए 'लोकनीति' अपना पूरा सहयोग दिया। लोकनीति के निदेशक प्रोफ़ेसर पीटर डिसूजा और संजय कुमार विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं।

आपने हाल में एक बड़ी परीक्षा पास की है। अब हमारी बारी है हम चाहते हैं कि आप हमारी परीक्षा लें और बताएँ कि यह किताब पास हुई या फेल। हम अपने परीक्षाफल का बेताबी से इंतजार करेंगे। आपकी टिप्पणियाँ, आलोचनाएँ और सुझावों से ही हमारा 'रिपोर्ट-कार्ड' तैयार होगा। आपके सुझावों के बल पर हम अगला प्रयास बेहतर करेंगे।

सुहास पळशीकर
योगेंद्र यादव
मुख्य सलाहकार

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तक विकास समिति

अध्यक्ष, पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति

हरि वासुदेवन, *प्रोफ़ेसर,* इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता।

मुख्य सलाहकार

सुहास पळशीकर, *प्रोफ़ेसर*, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, पुणे विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र।

योगेन्द्र यादव, सीनियर फेलो, विकासशील समाज अध्ययन पीठ, दिल्ली।

सदस्य

अनिल कुमार वर्मा, *रीडर*, राजनीति विज्ञान विभाग, क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर, उ.प्र.।

एलेक्स एम. जॉर्ज, *स्वतंत्र अनुसंधानकर्ता,* इरुवट्‌टी, जिला कुन्नूर, केरल।

अंजू मल्होत्रा, *प्राचार्य,* कालका पब्लिक स्कूल, नई दिल्ली।

चैत्रा रेडकर, *सीनियर लेक्चरर*, एस.एन.डी.टी. कालेज, मुंबई, महाराष्ट्र।

जी.पाठक, *पी.जी.टी.*, डोनी–पोलो पब्लिक स्कूल, इटानगर, अरूणाचल प्रदेश।

एम.मनीषा, *सीनियर लेक्चरर*, राजनीतिविज्ञान विभाग, लोरेटो कालेज, कोलकाता।

मनीष जैन, *पी.जी.टी.* एवं वर्तमान में शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय में शोधरत।

मनीषा प्रियम, *सीनियर लेक्चरर,* गार्गी कालेज, नई दिल्ली।

पंकज पुष्कर, *सीनियर लेक्चरर,* राजनीति विज्ञान विभाग, उच्च शिक्षा निदेशालय (उत्तरांचल), हल्द्वानी, उत्तरांचल।

प्रताप भानु मेहता, *अध्यक्ष,* सेंटर फॉर पालिसी रिसर्च, नई दिल्ली।

पुष्कर राज, *सीनियर लेक्चरर,* राजनीतिविज्ञान विभाग, ज़ाकिर हुसैन कालेज, नई दिल्ली।

राकेश शुक्ल, *अधिवक्ता,* सर्वोच्च न्यायालय, नई दिल्ली।

संदीप शास्त्री, *निदेशक,* इंटरनेशनल एकेडमी फॉर क्रिएटिव लर्निंग, बैंगलोर, कर्नाटक।

संजय लोढ़ा, *एसोशिएट प्रोफ़ेसर,* राजनीति विज्ञान विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान।

संजीब मुखर्जी, *सीनियर लेक्चरर,* राजनीति विज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता।

सैय्यद साबकुल्ला, *पी.जी.टी.,* महारानी शासकीय प्रि–यूनिवर्सटी कालेज, मैसूर, कर्नाटक।

© NCERT not to be republished

शैलेन्द्र देवलंकर, *प्रवक्ता,* राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, औरंगाबाद, महाराष्ट्र।

शेफाली झा, *एसोशिएट प्रोफ़ेसर,* सेंटर फॉर पॉलिटिकल स्टडीज, स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

श्रीलेखा मुखर्जी, *पी.जी.टी.,* सेंट पॉल स्कूल, नई दिल्ली।

वर्षा मंकू, *उप प्रधानाध्यापिका,* कुलाची हंसराज मॉडल स्कूल, नई दिल्ली।

हिंदी अनुवाद

अनिल कुमार वर्मा, संपादक–'शोधार्थी', *रीडर,* राजनीति विज्ञान विभाग, क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर, उ.प्र.।

अरविंद मोहन, *वरिष्ठ पत्रकार,* 78 डी, आई पॉकेट, दिलशाद गार्डन, दिल्ली–110 092 ।

चंदन कुमार श्रीवास्तव, *स्वतंत्र अनुवादक और अनुसंधानकर्ता,* जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

नरेश गोस्वामी, स्वतंत्र अनुवादक।

पंकज पुष्कर, *सीनियर लेक्चरर,* उच्च शिक्षा निदेशालय (उत्तरांचल), हल्द्वानी, उत्तरांचल।

सदस्य-संयोजक

संजय दुबे, *रीडर,* राजनीति विज्ञान, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

© NCERT not to be republished

# आभार

पाठ्यपुस्तक को तैयार करने में बहुत से व्यक्तियों और संस्थाओं ने सहयोग किया। केगल कार्टूंस ने शेपेट, जान ट्रेवर और एरेज के कार्टूंस उपयोग करने की अनुमति दी। नेहरू स्मारक पुस्तकालय, डाउन टू अर्थ, सहयोग पुस्तक कुटीर, शगुन जाट और काम्बेट ला नेटवर्क के साथी शान्तनु ने फोटोग्राफ़ जुटाने में भरपूर मदद की। इन सभी को हार्दिक धन्यवाद।

हम चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट के विशेष रूप से आभारी हैं जिन्होंने हमें शंकर के अमूल्य कार्टून छापने की अनुमति दी। आर. के. लक्ष्मण और द टाइम्स ऑफ इंडिया ने पूरी उदारता से अपने कार्टूंस के उपयोग की अनुमति देकर पाठ्यपुस्तक निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

सराय (विकासशील समाज अध्ययन पीठ) और निरंतर ऐसी संस्थाएँ हैं जिन्होंने इस पुस्तक की योजना के हर चरण में हर संभव सहयोग दिया। इनका सहयोग इनकी प्रतिबद्धता को भी दर्शाता है। विकासशील समाज अध्ययन पीठ के साथी अनिन्दिओ साहा, हिमांशु भट्टाचार्य, पुस्तकालयाध्यक्ष अविनाश झा, वनस्मिता बोरा और पूरन चंद्र अधिकारी ने भी सहयोग-सहकार में कोई कसर नहीं छोड़ी।

पुस्तक की तैयारी के क्रम में सैयद अफ़ज़ार अहसन ने प्रूफ जाँचने और दुरुस्त करने में भाषायी कौशल और श्रमशीलता का परिचय दिया। पुस्तक के हिंदी संस्करण का ले आउट और डिज़ाइन योगेश कुमार ने बहुत ही लगन से किया। डी.टी.पी. ऑपरेटर विक्रम रावत ने दिन-रात एक करके इस पुस्तक को तैयार किया। परिषद् की ओर से कॉपी एडिटर सतीश झा और विभूति नाथ झा, डी.टी.पी. ऑपरेटर उत्तम कुमार और विजय कुमार ने पूरी तत्परता से पुस्तक को निखारा और अंतिम स्पर्श दिया। इन सभी साथियों का जितना आभार व्यक्त किया जाए उतना कम है।

वर्तमान संस्करण की समीक्षा और अपडेट करने में एम.वी.एस.वी. प्रसाद, *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, पाठ्यचर्या अध्ययन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. का योगदान सराहनीय है। इस कार्य में संपादन सहयोग कहकशा वारसी, *सहायक संपादक* (संविदा), एन.सी.ई.आर.टी. ने किया है।

© NCERT not to be republished

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1][**संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य**] बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2][**राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

© NCERT not to be republished

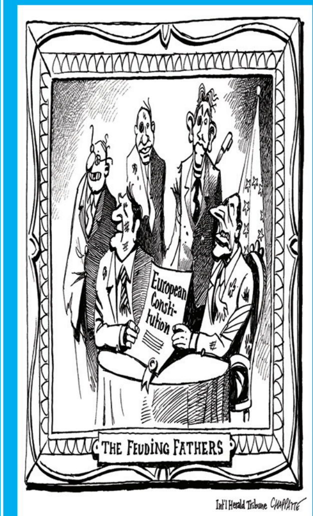

विषय-सूची

	आमुख	iii
	एक चिट्ठी आपके नाम	v
1.	संविधान – क्यों और कैसे?	1
2.	भारतीय संविधान में अधिकार	26
3.	चुनाव और प्रतिनिधित्व	51
4.	कार्यपालिका	78
5.	विधायिका	100
6.	न्यायपालिका	124
7.	संघवाद	150
8.	स्थानीय शासन	176
9.	संविधान – एक जीवंत दस्तावेज़	196
10.	संविधान का राजनीतिक दर्शन	220

© NCERT not to be republished

भारत का संविधान

[1]भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है;

(च) हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले;

[2][(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।]

---

[1] संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 11 द्वारा (3.1.1977 से) अंत:स्थापित।

[2] संविधान (छियासीवां संशोधन) अधिनियम, 2002 की धारा 4 द्वारा (1.4.2010 से) अंत:स्थापित।

© NCERT not to be republished

अध्याय एक

संविधान– क्यों और कैसे?

11103CH01

© NCERT not to be republished

परिचय

यह पुस्तक संविधान की कार्यप्रणाली पर लिखी गई है। आगे के अध्यायों में आप संविधान की कार्यप्रणाली के विभिन्न पहलुओं के बारे में पढ़ेंगे। हमारे देश के सरकार की विभिन्न संस्थाओं और उनके आपसी संबंधों के बारे में आप को ज्ञान होगा।

लेकिन इसके पहले कि आप चुनाव, सरकार, राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बारे में पढ़ें, यह समझना ज़रूरी है कि सरकार के पूरे ढाँचे और सरकार की संस्थाओं को नियंत्रित करने वाले विभिन्न सिद्धांतों की उत्पत्ति भारत के संविधान से हुई है।

इस अध्याय के अध्ययन से आपको निम्न बातों का ज्ञान होगा :

- *संविधान किसे कहते हैं;*
- *संविधान समाज को क्या देता है;*
- *संविधान समाज में शक्ति का बँटवारा कैसे करता है; और*
- *भारत का संविधान कैसे बनाया गया।*

हमें संविधान की क्या आवश्यकता है?

संविधान क्या है? इसके कार्य क्या हैं? समाज के लिए उसकी क्या भूमिका है? हमारे दैनिक जीवन से संविधान का क्या संबंध है? इन प्रश्नों के उत्तर उतने कठिन नहीं हैं जितना आप सोचते हैं।

संविधान तालमेल बढ़ाता है और भरोसा दिलाता है

यह समूह तो बहुत कुछ हमारे गाँव के लोगों जैसा है।

कल्पना करें कि आप एक बड़े समूह के सदस्य हैं। यह भी कल्पना करें कि उस समूह की कुछ विशेषताएँ हैं मसलन, उस समूह के सदस्य एक-दूसरे से अनेक तरह से भिन्न हैं। उनकी अलग-अलग धार्मिक निष्ठाएँ हैं; उनमें कुछ हिंदू, कुछ मुसलमान, कुछ ईसाई हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो किसी धर्म को नहीं मानते। वे और आधारों पर भी भिन्न हैं – वे अलग-अलग व्यवसाय करते हैं, उनकी भिन्न योग्यताएँ हैं, अलग-अलग शौक हैं, और सिनेमा से लेकर किताबों तक उनकी पसंद अलग-अलग है। उनमें कुछ धनी, तो कुछ गरीब हैं। कुछ लोग बूढ़े, तो कुछ जवान हैं। कल्पना करें कि ऐसे समूह के सदस्यों में जीवन के विभिन्न पहलुओं को लेकर विवाद है, जैसे-किसी व्यक्ति को कितनी संपत्ति रखने की इज़ाज़त होनी चाहिए? क्या सभी बच्चों को स्कूल भेजना अनिवार्य है या माता-पिता को इसका निर्णय लेने देना चाहिये? इस समूह को अपनी सुरक्षा के लिए कितना खर्च करना चाहिये? या इसकी जगह उसे बहुत सारे पार्क बनवाना चाहिये? क्या इस समूह को अपने ही कुछ सदस्यों के विरुद्ध भेदभाव करने देना चाहिए? भिन्न-भिन्न लोग इनमें से प्रत्येक प्रश्न का अलग-अलग उत्तर देंगे। लेकिन अपनी भिन्नताओं के बावजूद भी इस समूह को एक साथ रहना है। सदस्य अनेक रूपों में एक-दूसरे पर आश्रित हैं उन्हें एक-दूसरे के सहयोग की ज़रूरत होती है। इस समूह को शांतिपूर्वक एक साथ रहने के लिए क्या चाहिये?

हाँ! यह तो हमारी कालोनी जैसा ही है। क्या आपके गाँव, शहर या कालोनी में भी ऐसे ही समूह हैं?

लेकिन इस समूह के लोग एक साथ रह सकते हैं यदि वे कुछ बुनियादी नियमों के बारे में सहमत हो जाएँ। इस समूह को ऐसे नियम क्यों चाहिये? कल्पना करें कि ऐसे बुनियादी नियमों के अभाव में क्या होगा? प्रत्येक सदस्य अपने को असुरक्षित महसूस करेगा क्योंकि

उसे यह मालूम नहीं होगा कि समूह के सदस्य एक–दूसरे के साथ कैसा बर्ताव करेंगे और किसका किस चीज़ पर अधिकार है। किसी भी समूह को सार्वजनिक रूप से मान्यता प्राप्त कुछ बुनियादी नियमों की आवश्यकता होती है जिसे समूह के सभी सदस्य जानते हों, ताकि आपस में एक न्यूनतम समन्वय बना रहे। लेकिन ये नियम केवल पता ही नहीं होने चाहिए वरन् उन्हें लागू भी किया जाना चाहिये। यदि नागरिकों को यह विश्वास न हो कि दूसरे नागरिक भी उन नियमों का पालन करेंगे तो उनके पास भी उन नियमों को पालन करने का कोई आधार नहीं होगा। लेकिन जब यह कहा जाता है कि उन नियमों को न्यायालय में लागू किया जाएगा, तो इससे सभी को विश्वास हो जाता है कि और लोग भी इन नियमों का पालन करेंगे, क्योंकि ऐसा न करने पर उन्हें दंड दिया जाएगा।

संविधान का पहला काम यह है कि वह बुनियादी नियमों का एक ऐसा समूह उपलब्ध कराये जिससे समाज के सदस्यों में एक न्यूनतम समन्वय और विश्वास बना रहे।

खुद करें — खुद सीखें

पुस्तक के इस भाग में दिये गये विचार का अपनी कक्षा में प्रयोग करें। पूरी कक्षा वाद-विवाद करके उन निर्णयों पर पहुँचने की कोशिश करे, जो इस सत्र में सभी पर लागू होंगे। ये निर्णय निम्नलिखित के बारे में हो सकते हैं:

- *कक्षा प्रतिनिधि का चुनाव कैसे हो?*
- *कक्षा प्रतिनिधि पूरी कक्षा की ओर से कौन-सा निर्णय ले सकता है?*
- *क्या ऐसे भी निर्णय हैं जिन्हें कक्षा प्रतिनिधि पूरी कक्षा से परामर्श किये बिना नहीं ले सकता?*
- *यदि और लोग उससे सहमत हों, तो आप इसमें और बातें (कक्षा के लिए पिकनिक और यात्राओं के लिए पैसे जुटाने की योजना, अपने संसाधनों का साझा प्रयोग आदि) भी जोड़ सकते हैं। इसका ध्यान रहे कि इसमें वे बातें भी हो जिन पर पहले मतभेद रहा हो।*
- *यदि आवश्यकता पड़े तो इन निर्णयों को कैसे बदला जाए?*
- *इन सभी निर्णयों को कागज़ पर लिख लें और उसे नोटिस बोर्ड पर लगायें। इन निर्णयों को लेने में आपको किन कठिनाइयों का*

© NCERT not to be republished

सामना करना पड़ा? क्या विभिन्न छात्रों में इस पर मतभेद था? उन मतभेदों को आपने कैसे सुलझाया? क्या इस प्रक्रिया से पूरी कक्षा को कुछ लाभ हुआ?

निर्णय-निर्माण शक्ति की विशिष्टताएँ

संविधान कुछ ऐसे बुनियादी सिद्धांतों का समूह है जिसके आधार पर राज्य का निर्माण और शासन होता है। लेकिन ये बुनियादी नियम क्या हों? और ऐसी कौन-सी बात है जो उन्हें 'बुनियादी' बना देती है? पर हाँ ! सबसे पहले आपको यह तय करना पड़ेगा कि जिन नियमों के आधार पर समाज का शासन होता है उन्हें बनायेगा कौन ? आपको 'क' नियम बनाने की इच्छा है, लेकिन दूसरे लोग 'ख' नियम बनाना चाहते हैं। फिर यह कैसे तय किया जाए कि किसकी इच्छा वाले नियमों से हम पर शासन हो? जिन नियमों के अंतर्गत आप सभी को रखना चाहते हैं वे आपको सर्वश्रेष्ठ लग सकते हैं लेकिन दूसरे लोगों को लगता है कि उनके द्वारा सुझाये गये नियम सर्वश्रेष्ठ हैं। इस विवाद को कैसे सुलझाया जाए? अतः यह निर्णय करने से पहले कि हमारे समूह को किन नियमों से शासित होना है, हमें वास्तव में यह तय करना पड़ेगा कि उन नियमों को बनायेगा कौन?

संविधान ही इस प्रश्न का भी उत्तर देता है। वह समाज में शक्ति के मूल वितरण को स्पष्ट करता है। संविधान यह तय करता है कि कानून कौन बनायेगा? 'कानून कौन बनायेगा' – इस प्रश्न का उत्तर, सैद्धांतिक रूप में, कई प्रकार से दिया जा सकता है। राजतंत्र में कानून का निर्माण राजा करता है जबकि कुछ संविधान, जैसे पुराने सोवियत संघ के संविधान में निर्णय करने का अधिकार केवल एक पार्टी को दिया गया था। लेकिन लोकतांत्रिक संविधानों में निर्णय मोटे तौर पर जनता लेती है। लेकिन यह विषय इतना सरल नहीं है। यदि यह मान भी लिया जाए कि जनता निर्णय लेती है, तब भी यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है कि जनता निर्णय कैसे लेती है? क्या कोई कानून बनाने के लिए सभी लोगों को सहमत होना चाहिये? प्राचीन यूनान की पद्धति के अनुसार, क्या प्रत्येक मुद्दे पर सभी लोगों को वोट देना चाहिये? या लोगों को अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा अपनी राय को व्यक्त करना चाहिये? लेकिन लोगों को अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से काम करना हो, तो फिर उन प्रतिनिधियों का चयन कैसे हो? और कुल कितने प्रतिनिधि हों?

उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान में यह स्पष्ट किया गया है कि अधिकतर कानून संसद बनायेगी, और इस संसद का गठन भी एक विशेष प्रकार से किया जाएगा। किसी समाज में कानून कैसे हैं – इसे देखने के पहले उन कानूनों को बनाने का अधिकार रखने वालों को पहचानना होगा। यदि संसद को कानून बनाने का अधिकार है, तो पहले उसे यह

not to be republished © NCERT

अधिकार देने वाला कोई कानून होना चाहिये। यह काम संविधान करता है। संविधान वह सत्ता है जो, सर्वप्रथम, सरकार बनाती है।

संविधान का दूसरा काम यह स्पष्ट करना है कि समाज में निर्णय लेने की शक्ति किसके पास होगी। संविधान यह भी तय करता है कि सरकार कैसे निर्मित होगी।

कार्टून बूझें

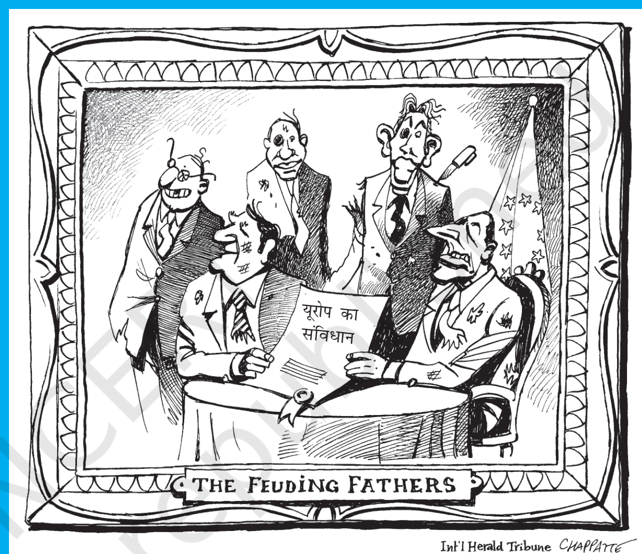

'यूरोपीय संविधान' पेट्रिक शेपट, इंटरनेशनल हेरल्ड ट्रिब्यून, 21 सितंबर 2004 © केगल कार्टूंस

यूरोपीय संघ के देशों ने एक यूरोपीय संविधान बनाने की कोशिश की। उनकी कोशिश असफल हो गई। कार्टूनिस्ट ने संविधान निर्माण के उनके प्रयास को मार-पीट और झगड़े से भरी कोशिश के रूप में देखा। क्या संविधान निर्माण की प्रक्रिया हमेशा ऐसी ही होती है?

सरकार की शक्तियों पर सीमाएँ

मान लीजिये कि आपने यह तय कर लिया कि निर्णय कौन करेगा। किंतु, जब उस सत्ता ने कानून बनाए तब आपको लगा कि वे कानून पूर्णतः अनुचित हैं। उदाहरण के लिए उसने आपको अपने धर्म का पालन करने से रोक दिया या उसने यह निर्णय लिया कि किसी खास किस्म के रंग वाले वस्त्र नहीं पहने जा सकते या आप कुछ विशेष गीत गाने को स्वतंत्र नहीं हैं या किसी विशेष समूह (धर्म, जाति) के लोगों को सदैव दूसरों की सेवा करनी पड़ेगी और उन्हें किसी प्रकार की संपत्ति रखने का अधिकार भी नहीं होगा या सरकार किसी को भी मनमाने तरीके से गिरफ़्तार कर सकती है या किसी एक खास रंग वाले लोगों को ही कुएँ से पानी भरने की इज़ाज़त दी जाएगी। स्वाभाविक है कि आपको यह कानून अनुचित और अन्यायपूर्ण लगेंगे। यद्यपि ये सभी कानून उस सरकार द्वारा बनाये गये जो एक विशेष प्रक्रिया का पालन करके बनी थी, लेकिन सरकार द्वारा ऐसे कानूनों को बनाने के पीछे ज़रूर कोई अन्यायपूर्ण बात रही होगी।

© NCERT not to be republished

ओह ! तो इसका मतलब यह कि पहले आप एक राक्षस बनाएँ और फिर खुद को उससे बचाने की चिंता करें। मैं तो यही कहूँगा कि फिर इस राक्षस जैसी सरकार को बनाया ही क्यों जाए?

अत: संविधान का तीसरा काम यह है कि वह सरकार द्वारा अपने नागरिकों पर लागू किये जाने वाले कानूनों पर कुछ सीमाएँ लगाए। ये सीमाएँ इस रूप में मौलिक होती हैं कि सरकार कभी उसका उल्लंघन नहीं कर सकती।

संविधान सरकार की शक्तियों को कई तरह से सीमित करता है। सरकार की शक्तियों को सीमित करने का सबसे सरल तरीका यह है कि नागरिकों के रूप में हमारे मौलिक अधिकारों को स्पष्ट कर दिया जाए और कोई भी सरकार कभी भी उनका उल्लंघन न कर सके। इन अधिकारों का वास्तविक स्वरूप और व्याख्याएँ भिन्न-भिन्न संविधानों में बदलती रहती हैं। लेकिन अधिकतर संविधानों में कुछ विशेष मौलिक अधिकार सदैव पाये जाते हैं। नागरिकों को मनमाने ढंग से बिना किसी कारण के गिरफ़्तार करने के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त है। यह सरकार की शक्तियों के ऊपर एक मूलभूत सीमा है। नागरिकों को सामान्यत: कुछ मौलिक स्वतंत्रताओं का अधिकार है जैसे भाषण की स्वतंत्रता, अंतरात्मा की आवाज पर काम करने की स्वतंत्रता, संगठन बनाने की स्वतंत्रता आदि। व्यवहार में, इन अधिकारों को राष्ट्रीय आपातकाल में सीमित किया जा सकता है और संविधान उन परिस्थितियों का उल्लेख भी करता है जिनमें इन अधिकारों को वापिस लिया जा सकता है।

समाज की आकांक्षाएँ और लक्ष्य

अधिकतर पुराने संविधानों द्वारा केवल निर्णय लेने की शक्ति का वितरण और सरकार की शक्ति पर प्रतिबंध लगाने का काम किया जाता था। लेकिन बीसवीं शताब्दी के अनेक संविधान – जिनमें भारतीय संविधान एक अत्यंत सुंदर उदाहरण है, एक ऐसा सक्षम ढाँचा भी प्रदान करता है जिससे सरकार कुछ सकारात्मक कार्य कर सके और समाज की आकांक्षाओं और उसके लक्ष्य को अभिव्यक्ति दे सके। भारतीय संविधान ने इस संबंध में कुछ नये प्रयोग किये। जिन समाजों में नाना प्रकार की असमानताओं की गहरी खाइयाँ हों, वहाँ केवल सरकार की शक्तियों पर प्रतिबंध लगाना ही पर्याप्त नहीं, वरन् वहाँ सरकार को समर्थ और शक्तिशाली भी बनाना पड़ेगा जिससे वह असमानता और गरीबी के विभिन्न रूपों से निपट सकें।

उदाहरण के लिए भारत की आकांक्षा है कि हम एक ऐसा समाज बनाएँ जिसमें जातिगत भेदभाव न हों। यदि यह हमारे समाज की आकांक्षा है, तो हमें अपनी सरकार को इतना समर्थ और शक्तिशाली बनाना पड़ेगा कि वह इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सभी आवश्यक

© NCERT not to be republished

कदम उठा सके। दक्षिण अफ्रीका नस्लीय भेदभाव के पुराने इतिहास का उदाहरण है। उसके नये संविधान ने सरकार को इस योग्य बनाया है कि वह नस्लीय भेदभाव को मिटा सके। वास्तव में एक संविधान अपने समाज की आकांक्षाओं का पिटारा है। उदाहरण के लिए भारत में संविधान निर्माताओं की इच्छा थी कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को बुनियादी भौतिक ज़रूरतें और शिक्षा सहित वह सब कुछ मिलना चाहिये जिसके आधार पर वह गरिमा और सामाजिक आत्मसम्मान से भरा हुआ जीवन जी सके। भारतीय संविधान सरकार को वह सामर्थ्य प्रदान

कार्टून बूझें

4 दिसंबर 1949

शंकर © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

संविधान निर्माताओं को लोगों की अलग-अलग आकांक्षाओं से जूझना पड़ा। यहाँ पर नेहरू को अनेक भावी कल्पनाओं और विचारधाराओं में संतुलन करते दिखाया गया है। क्या आप पहचान सकते हैं कि ये विभिन्न समूह क्या चाहते हैं? आपको क्या लगता है? संतुलन करने का अंतिम परिणाम क्या हुआ?

करता है जिससे वह कुछ सकारात्मक लोक-कल्याणकारी कदम उठा सके और जिन्हें कानून की मदद से लागू भी किया जा सके। जैसे-जैसे हम भारतीय संविधान को पढ़ते हैं, हमें पता चलता है कि ऐसी सामर्थ्य प्रदान करने वाले प्रावधानों को हमारे संविधान की प्रस्तावना का समर्थन प्राप्त है और वे संविधान के मौलिक अधिकारों वाले भाग में पाये जाते हैं।

© NCERT not to be republished

राज्य के नीति-निर्देशक तत्व भी सरकार से लोगों की कुछ आकांक्षाएँ पूरी करने की अपेक्षा करते हैं। संविधान में अच्छी बातें लिखने में क्या जाता है? लेकिन ऐसी ऊँची आकांक्षाओं और लक्ष्यों को लिखने का मतलब क्या है यदि वे लोगों के जीवन को बदल न सकें?

संविधान का चौथा काम यह है कि वह सरकार को ऐसी क्षमता प्रदान करे जिससे वह जनता की आकांक्षाओं को पूरा कर सके और एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए उचित परिस्थितियों का निर्माण कर सके।

संविधान के समर्थ बनाने वाले प्रावधान

संविधान सरकार की शक्तियों को नियंत्रित करने वाले नियमों और कानूनों का ही नाम नहीं है। वह सरकार को ऐसी शक्तियाँ भी देता है जिससे वह समाज की सामूहिक भलाई के लिये काम कर सके।

- दक्षिण अफ्रीका का संविधान सरकार को अनेक उत्तरदायित्व सौंपता है। वह सरकार को पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने और अन्यायपूर्ण भेदभाव से व्यक्तियों और समूहों को बचाने का प्रयास करने के लिये कदम उठाने का अधिकार देता है और यह प्रावधान भी करता है कि सरकार धीरे-धीरे सभी के लिये पर्याप्त आवास और स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराये।
- इंडोनेशिया में सरकार की ज़िम्मेदारी है कि वह राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था बनाए और उसका संचालन करे। इंडोनेशिया का संविधान यह भी सुनिश्चित करता है कि सरकार गरीब और अनाथ बच्चों की देखभाल करेगी।

© NCERT not to be republished

राष्ट्र की बुनियादी पहचान

आखिरी और शायद सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि संविधान किसी समाज की बुनियादी पहचान होता है।

इसका अर्थ यह है कि संविधान के माध्यम से ही किसी समाज की एक सामूहिक इकाई के रूप में पहचान होती है। इस सामूहिक पहचान को बनाने के लिए हमें इस संबंध में कुछ बुनियादी नियमों पर सहमत होना पड़ता है कि हम पर शासन कैसे होगा और शासितों में कौन-कौन से लोग होंगे। संविधान बनने के पहले हमारी अन्य अनेक प्रकार की पहचान या अस्मिताएँ होती हैं। लेकिन कुछ बुनियादी नियमों और सिद्धांतों पर सहमत होकर हम अपनी मूलभूत *राजनीतिक पहचान* बनाते हैं। दूसरा, संवैधानिक नियम हमें एक ऐसा विशाल

ढाँचा प्रदान करते हैं जिसके अंतर्गत हम अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं, लक्ष्य और स्वतंत्रताओं का प्रयोग करते हैं। संविधान आधिकारिक बंधन लगा कर यह तय कर देता है कि कोई क्या कर सकता है और क्या नहीं। अतः संविधान हमें एक *नैतिक पहचान* भी देता है। तीसरा, और अंतिम, अब शायद यह संभव हो सका है कि अनेक बुनियादी राजनीतिक और नैतिक नियम विश्व के सभी प्रकार के संविधानों में स्वीकार किये गये हैं।

अगर हम दुनिया भर के संविधानों को देखें तो हमें सरकारों के अलग-अलग स्वरूप और विविध प्रकार की प्रक्रियाएँ दिखाई देंगी। लेकिन उनमें काफी कुछ साझा भी है। अधिकतर संविधान कुछ मूलभूत अधिकारों की रक्षा करते हैं और ऐसी सरकारें संभव बनाते हैं जो किसी न किसी रूप में लोकतांत्रिक होती हैं। लेकिन राष्ट्रीय पहचान की अवधारणा अलग-अलग संविधानों में अलग-अलग ढंग की होती है। ज़्यादातर राष्ट्र विभिन्न जटिल ऐतिहासिक परंपराओं के सम्मिलन से बनते हैं। वे उस राष्ट्र में रहने वाले विभिन्न समूहों को कई तरीकों से आपस में मिला लेते हैं, जैसे जर्मनी का निर्माण 'जर्मन नस्ल' के आधार पर हुआ। संविधान ने इस पहचान को अभिव्यक्ति दी। दूसरी ओर भारतीय संविधान जातीयता या नस्ल को नागरिकता के आधार के रूप में मान्यता नहीं देता। विभिन्न राष्ट्रों में देश की केंद्रीय सरकार और विभिन्न क्षेत्रों के बीच के संबंधों को लेकर भिन्न-भिन्न अवधारणाएँ होती हैं। यह संबंध उस देश की राष्ट्रीय पहचान बनाता है।

कार्टून बूझें

इराकी संविधान, जान ट्रेवर, अल्बुकर्क जर्नल, 18 अगस्त 2005 © केगल कार्टून्स

इराक में सद्दाम हुसैन की सत्ता खत्म होने पर एक नए संविधान की रचना करने में देश के विभिन्न जातीय समूहों में काफी संघर्ष दिखाई दिया। इन भिन्न-भिन्न लोगों की क्या माँगे हैं? इसमें दिखाये गये संघर्ष की यूरोपीय संघ और भारत के संबंध में पिछले कार्टून में दिखाये संघर्ष से तुलना करें।

संविधान की सत्ता

हमने संविधान द्वारा किये जाने वाले कुछ कार्यों की रूपरेखा प्रस्तुत की है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

नीचे भारतीय और अन्य संविधानों के कुछ प्रावधान दिये गये हैं। बताएँ कि इनमें प्रत्येक प्रावधान का क्या कार्य है।

सरकार किसी भी नागरिक को किसी धर्म का पालन करने या न करने की आज्ञा नहीं दे सकती।	सरकार की शक्ति या सीमा
सरकार को आय और संपत्ति की असमानता को कम करने का प्रयास अवश्य करना चाहिये।	
राष्ट्रपति के पास प्रधानमंत्री को नियुक्त करने की शक्ति है।	
संविधान वह सर्वोच्च कानून है जिसका सभी को पालन करना पड़ता है।	
भारतीय नागरिकता किसी खास नस्ल, जाति या धर्म तक सीमित नहीं है।	

© NCERT not to be republished

इन कार्यों से स्पष्ट होता है कि क्यों अधिकतर समाजों में एक संविधान होता है। लेकिन संविधान के बारे में हम तीन और प्रश्न कर सकते हैं :

(क) संविधान क्या है?

(ख) संविधान कितना प्रभावी है?

(ग) क्या संविधान न्यायपूर्ण है?

अधिकतर देशों में 'संविधान' एक लिखित दस्तावेज़ के रूप में होता है जिसमें राज्य के बारे में कई प्रावधान होते हैं। यह प्रावधान बताते हैं कि राज्य का गठन कैसे होगा और वह किन सिद्धांतों का पालन करेगा। जब हम किसी देश के संविधान की बात करते हैं तो सामान्य रूप से हम उसी दस्तावेज़ का ज़िक्र कर

रहे होते हैं। लेकिन कुछ देशों जैसे इंग्लैंड के पास ऐसा कोई दस्तावेज़ नहीं है जिसे संविधान कहा जा सके बल्कि उनके पास दस्तावेज़ों और निर्णयों की एक लंबी शृंखला है जिसे सामूहिक रूप से संविधान कहा जाता है। अत: हम कह सकते हैं कि संविधान वह दस्तावेज़ या दस्तावेज़ों का पुँज है जो उन कार्यों को करने का प्रयास करता है जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है।

लेकिन विश्व में अनेक संविधान केवल कागज़ पर ही होते हैं। वे केवल थोथे शब्द होते हैं और कुछ नहीं। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कोई संविधान कितना प्रभावी है? उसे कौन–सी बात प्रभावी बनाती है? कौन–सी बात यह सुनिश्चित करती है कि लोगों के जीवन पर वास्तव में उसका प्रभाव पड़ा है? संविधान का प्रभावी होना अनेक कारणों पर निर्भर है।

संविधान को प्रचलन में लाने का तरीका

इसका मतलब है कि कोई संविधान कैसे अस्तित्व में आया। किसने संविधान बनाया और उनके पास इसे बनाने की कितनी शक्ति थी? अनेक देशों में संविधान इसीलिए निष्प्रभावी होते हैं क्योंकि वे सैनिक शासकों या ऐसे अलोकप्रिय नेताओं के द्वारा बनाये जाते हैं जिनके पास लोगों को अपने साथ लेकर चलने की क्षमता नहीं होती। विश्व के सर्वाधिक सफल संविधान भारत, दक्षिण अफ्रीका और अमेरिका के हैं। ये ऐसे संविधानों के उदाहरण हैं जिन्हें एक सफल राष्ट्रीय आंदोलन के बाद बनाया गया। यद्यपि भारतीय संविधान को औपचारिक रूप से एक संविधान सभा ने दिसंबर 1946 और नवंबर 1949 के मध्य बनाया पर ऐसा करने में उसने राष्ट्रीय आंदोलन के लंबे इतिहास से काफी प्रेरणा ली। राष्ट्रीय आंदोलन में समाज के सभी वर्गों को एक साथ लेकर चलने की विलक्षण क्षमता थी। संविधान को भारी वैधता मिली क्योंकि उसे ऐसे लोगों ने बनाया जिनमें समाज का अटूट विश्वास था और जिनके पास समाज के विभिन्न वर्गों से सीधा संवाद करने और उनका सम्मान प्राप्त करने की क्षमता थी। संविधान निर्माता लोगों को यह समझाने में सफल रहे कि संविधान उनकी व्यक्तिगत शक्तियों को बढ़ाने का कोई साधन नहीं है। यही कारण है कि संविधान को भारी वैधता मिली। संविधान का अंतिम प्रारूप उस समय की व्यापक राष्ट्रीय आम सहमति को व्यक्त करता है।

लोगों को जब यह पता चलता है कि उनका संविधान न्यायपूर्ण नहीं है तो वे क्या करते हैं? ऐसे लोगों का क्या होता है जिनका संविधान केवल कागज़ पर ही होता है?

कुछ देशों ने अपने संविधान पर पूर्ण जनमत संग्रह कराया जिसमें सभी लोग अपनाये जा रहे संविधान के पक्ष या विपक्ष में राय देते हैं। भारतीय संविधान पर ऐसा कोई जनमत

संग्रह नहीं हुआ। लेकिन इसे लोगों की ओर से प्रबल शक्ति प्राप्त थी क्योंकि यह बहुत ही लोकप्रिय नेताओं की सहमति और समर्थन पर आधारित था और लोगों ने उसके प्रावधानों पर अमल करके उसे अपना लिया। अत: संविधान बनाने वालों का प्रभाव भी एक हद तक संविधान की सफलता की संभावना सुनिश्चित करता है।

संविधान के मौलिक प्रावधान

एक सफल संविधान की यह विशेषता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को संविधान के प्रावधानों का आदर करने का कोई कारण अवश्य देता है। उदाहरण के लिए जिस संविधान में बहुसंख्यकों को समाज के अल्पसंख्यक समूहों का उत्पीड़न करने की अनुमति दी गई हो, वहाँ अल्पसंख्यकों के पास कोई कारण नहीं होगा कि वे संविधान के प्रावधानों का आदर करें। कोई संविधान अन्य लोगों की तुलना में कुछ लोगों को ज़्यादा सुविधाएँ देता है या सुनियोजित ढंग से समाज के छोटे-छोटे समूहों की शक्ति को और मज़बूत करता है तो उसे जनता की निष्ठा मिलनी बंद हो जाएगी। यदि कोई समूह यह महसूस करे कि उसकी 'पहचान' को दबाया जा रहा है तो उसके पास संविधान को मानने का कोई कारण नहीं होगा। कोई भी संविधान खुद से न्याय के आदर्श स्वरूप की स्थापना नहीं करता लेकिन उसे लोगों को विश्वास दिलाना पड़ता है कि वह बुनियादी न्याय को प्राप्त करने के लिए ढाँचा उपलब्ध कराता है।

नेपाल के संविधान निर्माण का विवाद

संविधान बनाना कोई आसान और सुगम काम नहीं है। नेपाल संविधान बनाने की एक जटिल प्रक्रिया का उदाहरण है। 1948 के बाद से नेपाल में पाँच संविधान बनाये जा चुके हैं : 1948, 1951, 1959, 1962 और 1990 में। लेकिन ये सभी संविधान नेपाल-नरेश द्वारा 'प्रदान' किए गए। 1990 में संविधान द्वारा बहु-दलीय लोकतंत्र की शुरुआत की गई पर अनेक क्षेत्रों में नरेश के पास अंतिम शक्तियाँ बनी रहीं। पिछले वर्षों में नेपाल में सरकार और राजनीति की पुनर्संरचना के लिए सशस्त्र राजनीतिक आंदोलन चल रहा था। उसमें प्रमुख मुद्दा यही था कि संविधान में राजा की भूमिका क्या होनी चाहिए। नेपाल के कुछ समूह राजतंत्र नामक संस्था को ही खत्म करने और गणतांत्रिक सरकार की स्थापना के पक्ष में थे। कुछ लोगों का मानना था कि राजा की सीमित भूमिका के साथ संवैधानिक राजतंत्र का बना रहना उपयोगी रहेगा। स्वयं राजा भी शक्तियों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। राजा ने अक्तूबर 2002 में समस्त शक्तियों को अपने हाथ में ले लिया।

बहुत सारे राजनीतिक दल और संगठन एक नई संविधान सभा के गठन की मांग कर रहे थे। नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) जनता द्वारा चुनी गई संविधान सभा के संघर्ष में सबसे आगे थी। अंतत: जन प्रदर्शन के दबाव के सामने झुकते हुए राजा को एक ऐसी सरकार बनवानी पड़ी जो आंदोलनकारी दलों को स्वीकार्य थी। इस सरकार ने राजा की लगभग सभी शक्तियाँ छीन लीं। 2008 में नेपाल ने राजतंत्र को खत्म किया और लोकतांत्रिक गणराज्य बन गया। अंतत: नेपाल ने 2015 में नये संविधान को अपनाया।

आप इस विचार को प्रयोग में लाएँ। स्वयं अपने से यह प्रश्न पूछिये : समाज के कुछ बुनियादी नियमों में ऐसी कौन–सी चीज़ें होनी चाहिए जिनसे सभी लोगों को उन्हें मानने का एक कारण मिल सके?

कोई संविधान अपने सभी नागरिकों की स्वतंत्रता और समानता की जितनी अधिक सुरक्षा करता है उसकी सफलता की संभावना उतनी ही बढ़ जाती है। मोटे तौर पर कहें, तो क्या भारतीय संविधान प्रत्येक नागरिक को एक ना एक ऐसा कारण देता है जिससे वह उसकी सामान्य रूपरेखा का समर्थन कर सके? इस पुस्तक को पढ़ने के बाद आप इस प्रश्न का 'हाँ' में उत्तर देने की स्थिति में होने चाहिए।

संस्थाओं की संतुलित रूपरेखा

संविधान को जनता नहीं प्राय: एक छोटा समूह ही नष्ट कर देता है क्योंकि वह अपनी शक्तियाँ बढ़ाना चाहता है। ढंग से बनाये संविधान में शक्तियों को इस प्रकार बाँट दिया जाता है जिससे कोई एक समूह संविधान को नष्ट न कर सके। संविधान की रूपरेखा बनाने की एक कारगर विधि यह सुनिश्चित करना है कि किसी एक संस्था का सारी शक्तियों पर एकाधिकार न हो। ऐसा करने के लिए शक्तियों को कई संस्थाओं में बाँट दिया जाता है। उदाहरण के लिए भारतीय संविधान शक्ति को एक समान धरातल पर विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसी संस्थाओं और स्वतंत्र संवैधानिक निकाय जैसे निर्वाचन आयोग आदि में बाँट देता है। इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि यदि कोई एक संस्था संविधान को नष्ट करना चाहे तो अन्य दूसरी संस्थाएँ उसके अतिक्रमण को नियंत्रित कर लेंगी। अवरोध और संतुलन के कुशल प्रयोग ने भारतीय संविधान की सफलता सुनिश्चित की है।

संस्थाओं की रूपरेखा बनाने में इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि उसमें बाध्यकारी मूल्य, नियम और प्रक्रियाओं के साथ अपनी कार्यप्रणाली में लचीलापन का संतुलन होना चाहिए जिससे वह बदलती आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल सके। ज़्यादा कठोर संविधान परिवर्तन के दबाव में नष्ट हो जाते हैं और दूसरी ओर, यदि संविधान अत्यधिक लचीला है तो वह समाज को सुरक्षा और पहचान न दे सकेगा। सफल संविधान प्रमुख मूल्यों की रक्षा करने और नई परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ढालने में एक संतुलन रखते हैं। आप भारतीय संविधान निर्माताओं की समझदारी को नवें अध्याय (संविधान : एक जीवंत दस्तावेज़) में महसूस करेंगे जिसमें भारतीय संविधान को एक जीवंत दस्तावेज़ की संज्ञा दी गई है। अपने प्रावधानों में परिवर्तन की संभावना और एक हद तक ठोस रूप में संतुलन बैठा कर संविधान सुनिश्चित करता है कि वह दीर्घायु होगा और जनता का आदर प्राप्त करेगा। इस

व्यवस्था से यह भी सुनिश्चित हो जाता है कि कोई भी वर्ग या समूह अपने बल–बूते संविधान को नष्ट नहीं कर सकेगा।

कार्टून बूझें

'ताश के पत्तों का महल' एरेस सितंबर, 2005 © केगल कार्टून्स

कार्टून बनाने वाले ने नये इराकी संविधान को 'ताश के पत्तों का महल' क्यों कहा? क्या यह वर्णन भारतीय संविधान पर लागू होगा?

अतः यह पता लगाने के लिए कि क्या किसी संविधान की सत्ता मान्य है, आप अपने से तीन प्रश्न पूछ सकते हैं:

- क्या जिन लोगों ने संविधान बनाया वे विश्वसनीय थे? इस प्रश्न का उत्तर इसी अध्याय में आगे मिलेगा।
- दूसरा क्या संविधान ने सुनिश्चित किया था कि सूझबूझ के साथ शक्ति को इस प्रकार संगठित किया जाए कि किसी एक समूह के लिए संविधान नष्ट करना आसान न हो। और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि क्या संविधान सबको कुछ ऐसा कारण देता है कि वे संविधान का पालन करें? इस पुस्तक के अधिकतर हिस्से में इसी प्रश्न का उत्तर दिया गया है।
- क्या संविधान लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं का पिटारा है? संविधान द्वारा लोगों की निष्ठा प्राप्त करने की योग्यता काफी कुछ इस बात पर भी निर्भर करती है कि संविधान न्यायपूर्ण है या नहीं। भारतीय संविधान में न्याय के बुनियादी सिद्धांत क्या हैं? इस पुस्तक का अंतिम अध्याय इस प्रश्न का उत्तर देगा।

भारतीय संविधान कैसे बना ?

आइये देखें कि भारतीय संविधान कैसे बना। औपचारिक रूप से एक संविधान सभा ने संविधान को बनाया जिसे अविभाजित भारत में निर्वाचित किया गया था। इसकी पहली बैठक 9 दिसंबर 1946 को हुई और फिर 14 अगस्त, 1947 को विभाजित भारत के संविधान सभा के रूप में इसकी पुनः बैठक हुई। संविधान सभा के सदस्य 1935 में स्थापित प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष विधि से चुने गए। संविधान सभा की रचना लगभग उसी योजना के अनुसार हुई जिसे ब्रिटिश मंत्रिमंडल की एक समिति – 'कैबिनेट मिशन' ने प्रस्तावित किया था। इस योजना के अनुसार –

- प्रत्येक प्रांत, देशी रियासत या रियासतों के समूह को उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटें दी गईं। मोटे तौर पर दस लाख की जनसंख्या पर एक सीट का अनुपात रखा गया।

परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार के प्रत्यक्ष शासन वाले प्रांतों को 292 सदस्य चुनने थे तथा देशी रियासतों को न्यूनतम 93 सीटें आवंटित की गईं।

- प्रत्येक प्रांत की सीटों को तीन प्रमुख समुदायों – मुसलमान, सिख और सामान्य में उनकी जनसंख्या के अनुपात में बाँट दिया गया।
- प्रांतीय विधान सभाओं में प्रत्येक समुदाय के सदस्यों ने अपने प्रतिनिधियों को चुना और इसके लिए उन्होंने समानुपातिक प्रतिनिधित्व और एकल संक्रमण मत पद्धति का प्रयोग किया।
- देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के चुनाव का तरीका उनके परामर्श से तय किया गया।

अध्याय के पिछले भाग में उन तीनों कारकों पर प्रकाश डाला गया जो संविधान को प्रभावी और सम्मान के योग्य बनाते हैं। भारतीय संविधान इस परीक्षा में किस हद तक कामयाब होता है?

अधिक जानकारी के लिए, देखें

http://164.100.47.194/loksabha/constituent/facts.html

अपने राजनीतिक लोकतंत्र को हमें सामाजिक लोकतंत्र का रूप भी देना चाहिए। राजनीतिक लोकतंत्र तब तक स्थायी नहीं रह सकता है, जब तक कि उसका आधार सामाजिक लोकतंत्र न हो। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? इसका अर्थ जीवन के उस मार्ग से है, जो स्वतंत्रता, समता और बंधुता को जीवन के सिद्धांतों के रूप में स्वीकार करता है। स्वतंत्रता, समता और बंधुता के सिद्धांतों को इन तीनों के एक संयुक्त रूप से पृथक-पृथक रूपों में नहीं समझना चाहिए। ये तीनों मिलकर एक ऐसा संयुक्त रूप बनाते हैं कि इनमें से एक को दूसरे से अलग करना लोकतंत्र के मूल प्रयोजन को ही विफल कर देना है। स्वतंत्रता को समता से अलग नहीं किया जा सकता है, समता को स्वतंत्रता से अलग नहीं किया जा सकता है। और न ही स्वतंत्रता और समता को बंधुता से अलग किया जा सकता है। समताविहीन स्वतंत्रता कुछ व्यक्तियों की अनेक व्यक्तियों पर प्रभुता को जन्म देगी। स्वतंत्रताविहीन समता व्यक्तिगत पहल को नष्ट कर देगी। बंधुता के बिना स्वतंत्रता और समता अपना स्वाभाविक मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर

संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 979, 25 नवंबर 1949

क्या आपकी कक्षा में स्वतंत्रता, समता और बंधुता के सिद्धांतों को व्यवहार में लाया जाता है? इनको एक साथ कैसे व्यवहार में ला सकते हैं? अपने साथियों के साथ चर्चा कीजिए।

© NCERT not to be republished

संविधान सभा का स्वरूप

3 जून 1947 की योजना के अनुसार विभाजन के बाद वे सभी प्रतिनिधि संविधान सभा के सदस्य नहीं रहे जो पाकिस्तान के क्षेत्रों से चुनकर आये थे। संविधान सभा के वास्तविक सदस्यों की संख्या घट कर 299 रह गई। इनमें से 26 नवंबर, 1949 को कुल 284 सदस्य उपस्थित थे। इन्होंने ही अंतिम रूप से पारित संविधान पर अपने हस्ताक्षर किये।

इस प्रकार इस उपमहाद्वीप में विभाजन से उपजी विभीषिका और हिंसा के बीच संविधान निर्माण का काम हुआ। लेकिन संविधान निर्माताओं के धैर्य की प्रशंसा करनी पड़ेगी कि उन्होंने न केवल अत्यधिक दबाव में एक संविधान बनाया बल्कि विभाजन के कारण हुई अकल्पनीय हिंसा से सही सबक भी लिया। भारत के संविधान ने नागरिकता की एक नई अवधारणा प्रस्तुत की। इसके अंतर्गत अल्पसंख्यक न केवल सुरक्षित होंगे बल्कि धार्मिक पहचान का नागरिक अधिकारों पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

लेकिन संविधान सभा के गठन का यह विवरण केवल सतही तौर पर ही हमें बताता है कि संविधान वास्तव में बना कैसे। यद्यपि हमारी संविधान सभा के सदस्य सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं चुने गये थे पर उसे ज़्यादा से ज़्यादा प्रतिनिधिपरक बनाने का गंभीर प्रयास किया गया। सभी धर्मों के सदस्यों को ऊपर बतायी गयी विधि से प्रतिनिधित्त्व दिया गया। इसके अतिरिक्त संविधान सभा में अनुसूचित जातियों के अट्ठाईस सदस्य थे। जहाँ तक राजनीतिक दलों का सवाल है विभाजन के बाद संविधान सभा में काँग्रेस का वर्चस्व था और उसे 82 प्रतिशत सीटें प्राप्त थीं। लेकिन काँग्रेस स्वयं विविधताओं से भरी हुई एक ऐसी पार्टी थी जिसमें लगभग सभी विचारधाराओं की नुमाइंदगी थी।

यदि भारत की संविधान सभा देश के सभी लोगों के द्वारा निर्वाचित होती तो क्या होता? क्या वह उस संविधान सभा से भिन्न होती जो बनाई गई ?

संविधान सभा के कामकाज की शैली

संविधान सभा की सत्ता केवल इस बात पर ही नहीं टिकी थी कि वह मोटे तौर पर (हालांकि पूर्ण रूप से नहीं) सबका प्रतिनिधित्व कर रही थी। संविधान बनाने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया और सदस्यों

© NCERT not to be republished

के विचार–विमर्श की जड़ में छुपे मूल्यों में ही संविधान सभा की लोकप्रिय सत्ता का आधार था। जहाँ प्रतिनिधित्व का दावा करने वाली किसी सभा के लिए वांछनीय है कि उसमें समाज के विभिन्न वर्ग सहभागी हों वहीं यह भी महत्त्वपूर्ण है कि वे केवल अपनी पहचान या समुदाय का ही प्रतिनिधित्व न करें। संविधान सभा के सदस्यों ने पूरे देश के हित को ध्यान में रखकर विचार–विमर्श किया। सदस्यों में प्रायः मतभेद हो जाते थे लेकिन सदस्यों द्वारा अपने हितों को आधार बना कर शायद ही कोई मतभेद हुआ हो।

ये मतभेद वास्तव में वैध सैद्धांतिक आधार पर थे। हालाँकि संविधान सभा में अनेक मतभेद थे : भारत में शासन प्रणाली केंद्रीकृत होनी चाहिए या विकेंद्रीकृत? राज्यों के बीच कैसे संबंध होने चाहिए? न्यायपालिका की क्या शक्तियाँ होनी चाहिए? क्या संविधान को संपत्ति के अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए? लगभग उन सभी विषयों पर गहराई से चर्चा हुई जो आधुनिक राज्य की बुनियाद हैं। संविधान का केवल एक ही प्रावधान ऐसा है जो लगभग बिना किसी वाद–विवाद के पास हो गया। यह प्रावधान सार्वभौमिक मताधिकार का था जिसका अर्थ है कि धर्म, जाति, शिक्षा, लिंग और आय के आधार पर भेदभाव के बिना सभी नागरिकों को एक निश्चित आयु प्राप्त करने पर वोट देने का अधिकार होगा। सदस्यों ने इस पर वाद–विवाद आवश्यक नहीं माना कि किसे वोट देने का अधिकार होना चाहिए, लेकिन इसके अतिरिक्त प्रत्येक विषय पर गंभीर विचार–विमर्श और वाद–विवाद हुए।

इस सभा की लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति निष्ठा का इससे बढ़िया व्यावहारिक रूप कुछ और नहीं हो सकता था।

संविधान सभा को असली ताकत इस बात से मिल रही थी कि वह सार्वजनिक हित का काम कर रही है। इसके सदस्यों ने चर्चा और तर्कपूर्ण बहसों पर काफी जोर दिया। उन्होंने सिर्फ अपने हितों की बात नहीं की बल्कि अपनी सोच और फ़ैसले के पक्ष में अन्य सदस्यों को सैद्धांतिक कारण दिए। अपनी सोच के पक्ष में दूसरों से तर्कपूर्ण संवाद स्वार्थ या संकीर्णता से ऊपर उठा देता है। संविधान सभा में हुई चर्चा कई मोटे–मोटे खंडों में प्रकाशित हुई है और हर अनुच्छेद को लेकर जैसी विस्तृत और बारीकी से बातचीत हुई है वह सार्वजनिक विवेक की भावना को सबसे प्रामाणिक ढंग से सामने लाती है। ये बहसें भी फ्रांसीसी और अमेरिकी क्रांति की तरह संविधान निर्माण के इतिहास के सबसे महत्त्वपूर्ण और यादगार अध्यायों में से हैं।

कार्यविधि

संविधान सभा की सामान्य कार्यविधि में भी सार्वजनिक विवेक का महत्त्व स्पष्ट दिखाई देता था। विभिन्न मुद्दों के लिए संविधान सभा की आठ मुख्य कमेटियाँ थीं। आम तौर पर जवाहरलाल

© NCERT not to be republished

नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल या बी.आर. अंबेडकर इन कमेटियों की अध्यक्षता करते थे। ये ऐसे लोग थे जिनके विचार हर बात पर एक-दूसरे के समान नहीं थे। अंबेडकर तो कांग्रेस और गांधी के कड़े आलोचक थे और उन पर अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिए पर्याप्त काम न करने का आरोप लगाते थे। पटेल और नेहरू बहुत-से मुद्दों पर एक-दूसरे से असहमत थे। फिर भी सबने एक साथ मिलकर काम किया। प्रत्येक कमेटी ने आम तौर पर संविधान के कुछ-कुछ प्रावधानों का प्रारूप तैयार किया जिन पर बाद में पूरी संविधान सभा में चर्चा की गई। आम तौर पर यह प्रयास किया गया कि फ़ैसले आम राय से हों और कोई भी प्रावधान किसी खास हित समूह के पक्ष में न हो। कई प्रावधानों पर निर्णय मत विभाजन करके भी लिए गए। ऐसे अवसरों पर भी हर सरोकार का ध्यान रखा गया और हर तर्क और शंका का समाधान बहुत ही सावधानी से किया गया। लिखित रूप में उनका जवाब दिया गया। दो वर्ष और ग्यारह महीने की अवधि में संविधान सभा की बैठकें 166 दिनों तक चलीं। इसके सत्र अखबारों और आम लोगों के लिए खुले हुए थे।

संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद और प्रारूप समिति के सभापति डॉ. बी.आर. अंबेडकर एक दूसरे का अभिवादन करते हुए

...जैसा मैंने महसूस किया, शायद ही किसी ने किया हो कि प्रारूप समिति के सदस्यों विशेषकर इसके सभापति डॉ. अंबेडकर ने अस्वस्थ होने के बावजूद कितने उत्साह और लगन के साथ कार्य किया। डॉ. अंबेडकर को प्रारूप समिति में शामिल करने और इसके सभापति बनाने के निर्णय से बेहतर और कोई निर्णय नहीं हो सकता था। उन्होंने न केवल अपने चयन को न्यायोचित सिद्ध किया बल्कि उन्होंने जो कार्य किया उसे भी गरिमा प्रदान की। इस संबंध में समिति के अन्य सदस्यों में परस्पर भेद करना पक्षपातपूर्ण होगा। मैं जानता हूँ कि उन सभी ने उतने ही उत्साह और लगन के साथ कार्य किया, जितना कि उसके सभापति ने। वे सभी देश की कृतज्ञता के पात्र हैं।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 994, 26 नवंबर 1949

राष्ट्रीय आंदोलन की विरासत

लेकिन कोई भी संविधान केवल अपनी संविधान सभा के बूते नहीं बनता। भारत की संविधान सभा इतनी विविधतापूर्ण थी कि वह सामान्य ढंग से काम ही नहीं कर सकती थी यदि उसके पीछे उन सिद्धांतों पर आम सहमति न होती जिन्हें संविधान में रखा जाना था। इन सिद्धांतों पर

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सहमति बनी। एक तरह से संविधान सभा केवल उन सिद्धांतों को मूर्त रूप और आकार दे रही थी जो उसने राष्ट्रीय आंदोलन से विरासत में प्राप्त किए थे। संविधान लागू होने के कई दशक पूर्व से ही राष्ट्रीय आंदोलन में उन प्रश्नों पर चर्चा हुई थी जो संविधान बनाने के लिए प्रासंगिक थे, जैसे – भारत में सरकार का स्वरूप और संरचना कैसी होनी चाहिए, हमें किन मूल्यों का समर्थन करना चाहिए, किन असमानताओं को दूर किया जाना चाहिए आदि? उन बहसों से प्राप्त निष्कर्षों को ही संविधान में अंतिम रूप प्रदान किया गया।

राष्ट्रीय आंदोलन से जिन सिद्धांतों को संविधान सभा में लाया गया उसका सर्वोत्तम सारांश हमें नेहरू द्वारा 1946 में प्रस्तुत 'उद्देश्य–प्रस्ताव' में मिलता है। इस प्रस्ताव में संविधान सभा के उद्देश्यों को परिभाषित किया गया था। इस प्रस्ताव में संविधान की सभी आकांक्षाओं और मूल्यों को समाहित किया गया था। पिछले भाग में जिसे संविधान के मौलिक प्रावधान कहा गया था वह वास्तव में उद्देश्य–प्रस्ताव में समाहित मूल्यों से प्रेरित और उनका सारांश है। इसी प्रस्ताव के आधार पर हमारे संविधान में समानता, स्वतंत्रता, लोकतंत्र, संप्रभुता और एक सर्वजनीन पहचान जैसी बुनियादी प्रतिबद्धताओं को संस्थागत स्वरूप दिया गया। अतः हमारा संविधान केवल नियमों और प्रक्रियाओं की भूलभुलैया नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी सरकार बनाने की नैतिक प्रतिबद्धता है जो राष्ट्रीय आंदोलन में लोगों को दिये गये आश्वासनों को पूरा करेगी।

संस्थागत व्यवस्थाएँ

संविधान को प्रभावी बनाने का तीसरा कारक यह है कि सरकार की सभी संस्थाओं को संतुलित ढंग से व्यवस्थित किया जाए। मूल सिद्धांत यह रखा गया कि सरकार लोकतांत्रिक रहे और जन–कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हो। संविधान सभा ने शासन के विभिन्न अंगों – विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका – के बीच समुचित संतुलन स्थापित करने के लिए बहुत विचार–मंथन किया। संविधान सभा ने संसदीय शासन व्यवस्था और संघात्मक

यदि हमें 1937 में स्वतंत्रता मिल जाती तो क्या होता? हमें 1957 तक इंतज़ार करना पड़ता तो क्या होता? क्या तब बनाया गया संविधान हमारे वर्तमान संविधान से भिन्न होता?

उद्देश्य-प्रस्ताव के प्रमुख बिंदु

- भारत एक स्वतंत्र, संप्रभु गणराज्य है;
- भारत ब्रिटेन के अधिकार में आने वाले भारतीय क्षेत्रों, देशी रियासतों और देशी रियासतों के बाहर के ऐसे क्षेत्र जो हमारे संघ का अंग बनना चाहते हैं, का एक संघ होगा।
- संघ की इकाइयाँ स्वायत्त होंगी और उन सभी शक्तियों का प्रयोग और कार्यों का संपादन करेंगी जो संघीय सरकार को नहीं दी गईं।
- संप्रभु और स्वतंत्र भारत तथा इसके संविधान की समस्त शक्तियों और सत्ता का स्रोत जनता है।
- भारत के सभी लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; कानून के समक्ष समानता; प्रतिष्ठा और अवसर की समानता तथा कानून और सार्वजनिक नैतिकता की सीमाओं में रहते हुए भाषण, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, व्यवसाय, संगठन और कार्य करने की मौलिक स्वतंत्रता की गारंटी और सुरक्षा दी जायेगी।
- अल्पसंख्यकों, पिछड़े व जनजातीय क्षेत्र, दलित व अन्य पिछड़े वर्गों को समुचित सुरक्षा दी जायेगी।
- गणराज्य की क्षेत्रीय अखंडता तथा थल, जल और आकाश में इसके संप्रभु अधिकारों की रक्षा सभ्य राष्ट्रों के कानून और न्याय के अनुसार की जायेगी।
- विश्वशांति और मानव कल्याण के विकास के लिए देश स्वेच्छापूर्वक और पूर्ण योगदान करेगा।

व्यवस्था को स्वीकार किया जो एक ओर विधायिका और कार्यपालिका के बीच तथा दूसरी ओर केंद्रीय सरकार और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण करती है।

शासकीय संस्थाओं की सर्वाधिक संतुलित व्यवस्था स्थापित करने में हमारे संविधान निर्माताओं ने दूसरे देशों के प्रयोगों और अनुभवों से कुछ सीखने में कोई संकोच नहीं किया। इसी प्रकार हमारे संविधान निर्माताओं ने अन्य संवैधानिक परंपराओं से कुछ ग्रहण करने से भी कोई परहेज नहीं किया। यह उनके व्यापक ज्ञान का प्रमाण है कि उन्होंने किसी भी ऐसे बौद्धिक तर्क या ऐतिहासिक उदाहरण की अनदेखी नहीं की जो उनके कार्य को संपन्न

© NCERT not to be republished

करने के लिए ज़रूरी था। अत: उन्होंने विभिन्न देशों से अनेक प्रावधानों को भी लिया।

लेकिन उन विचारों को लेना कोई नकलची मानसिकता का परिणाम नहीं था बल्कि बात इससे बिलकुल अलग थी। संविधान के प्रत्येक प्रावधान को इस आधार पर उचित सिद्ध करना था कि वह भारत की समस्याओं और आशाओं के अनुरूप है। यह भारत का सौभाग्य ही था कि हमारी संविधान सभा ने संकुचित दृष्टिकोण छोड़कर संपूर्ण विश्व से सर्वोत्तम चीज़ों को ग्रहण किया और उन्हें अपना बना लिया।

क्या यह संविधान उधार का था? हम ऐसा संविधान क्यों नहीं बना सके जिसमें कहीं से कुछ भी उधार न लिया गया हो?

हम पूछना चाहेंगे कि विश्व–इतिहास के इस पड़ाव पर बनाये गये संविधान में क्या कुछ नया भी हो सकता है।... आज इस समय बनाये संविधान में यदि कुछ नया हो सकता है तो वह यह कि उसमें केवल कुछ ऐसे परिवर्तन किये जाएँ जो कमियों को दूर करें और उसे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप बना सकें।

–डॉ. बी. आर. अंबेडकर
संविधान सभा वाद–विवाद, खंड VII, पृष्ठ 37
4 नवंबर 1948

संविधान सभा में चर्चा की अध्यक्षता करते हुए डॉ. बी.आर. अंबेडकर

विभिन्न देशों के संविधानों से लिए गए प्रावधान

ब्रिटिश संविधान

- सर्वाधिक मत के आधार पर चुनाव में जीत का फ़ैसला
- सरकार का संसदीय स्वरूप
- कानून के शासन का विचार
- विधायिका में अध्यक्ष का पद और उनकी भूमिका
- कानून निर्माण की विधि

आयरलैंड का संविधान

- राज्य के नीति निर्देशक तत्व

फ्रांस का संविधान

- स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्त्व का सिद्धांत

अमेरिका का संविधान

- मौलिक अधिकारों की सूची
- न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति और न्यायपालिका की स्वतंत्रता

कनाडा का संविधान

- एक अर्द्ध-संघात्मक सरकार का स्वरूप (सशक्त केंद्रीय सरकार वाली संघात्मक व्यवस्था)
- अवशिष्ट शक्तियों का सिद्धांत

© NCERT not to be republished

निष्कर्ष

यह संविधान निर्माताओं की बुद्धिमत्ता और दूरदृष्टि का प्रमाण है कि वे देश को एक ऐसा संविधान दे सके जिसमें जनता द्वारा मान्य आधारभूत मूल्यों और सर्वोच्च आकांक्षाओं को स्थान दिया गया था। यही वह कारण है जिसकी वजह से इतनी जटिलता से बनाया संविधान न केवल अस्तित्व में है, बल्कि एक जीवंत सच्चाई भी है जबकि दुनिया के अन्य अनेक संविधान कागज़ी पोथों में ही दब कर रह गए।

भारत का संविधान एक विलक्षण दस्तावेज़ है जो अन्य अनेक देशों, खासतौर से दक्षिण अफ्रीका के लिए एक प्रतिमान हो गया। तीन वर्ष तक संविधान बनाने की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य यह रहा कि एक ऐसा संतुलित संविधान बनाया जाए जिसमें संविधान द्वारा निर्मित संस्थाएँ अस्त–व्यस्त या कामचलाऊ व्यवस्थाएँ मात्र न हों बल्कि लोगों की आकांक्षाओं को एक लंबे समय तक संजोये रख सकें। आप पुस्तक के शेष भाग में इन व्यवस्थाओं के बारे में पढ़ेंगे।

प्रश्नावली

1. इनमें कौन–सा संविधान का कार्य नहीं है?
   (क) यह नागरिकों के अधिकार की गारंटी देता है।
   (ख) यह शासन की विभिन्न शाखाओं की शक्तियों के अलग–अलग क्षेत्र का रेखांकन करता है।
   (ग) यह सुनिश्चित करता है कि सत्ता में अच्छे लोग आयें।
   (घ) यह कुछ साझे मूल्यों की अभिव्यक्ति करता है।

2. निम्नलिखित में कौन–सा कथन इस बात की एक बेहतर दलील है कि संविधान की प्रमाणिकता संसद से ज़्यादा है?
   (क) संसद के अस्तित्व में आने से कहीं पहले संविधान बनाया जा चुका था।
   (ख) संविधान के निर्माता संसद के सदस्यों से कहीं ज्यादा बड़े नेता थे।
   (ग) संविधान ही यह बताता है कि संसद कैसे बनायी जाय और इसे कौन–कौन–सी शक्तियाँ प्राप्त होंगी।
   (घ) संसद, संविधान का संशोधन नहीं कर सकती।

© NCERT not to be republished

3. बतायें कि संविधान के बारे में निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत?
   (क) सरकार के गठन और उसकी शक्तियों के बारे में संविधान एक लिखित दस्तावेज़ है।
   (ख) संविधान सिर्फ लोकतांत्रिक देशों में होता है और उसकी ज़रूरत ऐसे ही देशों में होती है।
   (ग) संविधान एक कानूनी दस्तावेज़ है और आदर्शों तथा मूल्यों से इसका कोई सरोकार नहीं।
   (घ) संविधान एक नागरिक को नई पहचान देता है।

4. बतायें कि भारतीय संविधान के निर्माण के बारे में निम्नलिखित अनुमान सही हैं या नहीं? अपने उत्तर का कारण बतायें।
   (क) संविधान-सभा में भारतीय जनता की नुमाइंदगी नहीं हुई। इसका निर्वाचन सभी नागरिकों द्वारा नहीं हुआ था।
   (ख) संविधान बनाने की प्रक्रिया में कोई बड़ा फ़ैसला नहीं लिया गया क्योंकि उस समय नेताओं के बीच संविधान की बुनियादी रूपरेखा के बारे में आम सहमति थी।
   (ग) संविधान में कोई मौलिकता नहीं है क्योंकि इसका अधिकांश हिस्सा दूसरे देशों से लिया गया है।

5. भारतीय संविधान के बारे में निम्नलिखित प्रत्येक निष्कर्ष की पुष्टि में दो उदाहरण दें।
   (क) संविधान का निर्माण विश्वसनीय नेताओं द्वारा हुआ। उनके लिए जनता के मन में आदर था।
   (ख) संविधान ने शक्तियों का बँटवारा इस तरह किया कि इसमें उलट-फेर मुश्किल है।
   (ग) संविधान जनता की आशा और आकांक्षाओं का केंद्र है।

6. किसी देश के लिए संविधान में शक्तियों और जिम्मेदारियों का साफ-साफ निर्धारण क्यों ज़रूरी है? इस तरह का निर्धारण न हो, तो क्या होगा?

7. शासकों की सीमा का निर्धारण करना संविधान के लिए क्यों ज़रूरी है? क्या कोई ऐसा भी संविधान हो सकता है जो नागरिकों को कोई अधिकार न दे।

8. जब जापान का संविधान बना तब दूसरे विश्वयुद्ध में पराजित होने के बाद जापान अमेरिकी सेना के कब्जे में था। जापान के संविधान में ऐसा कोई प्रावधान होना असंभव था, जो अमेरिकी सेना को पसंद न हो। क्या आपको लगता है कि संविधान को इस तरह बनाने में कोई कठिनाई है? भारत में संविधान बनाने का अनुभव किस तरह इससे अलग है?

© NCERT not to be republished

9. रजत ने अपने शिक्षक से पूछा – 'संविधान एक पचास साल पुराना दस्तावेज़ है और इस कारण पुराना पड़ चुका है। किसी ने इसको लागू करते समय मुझसे राय नहीं माँगी। यह इतनी कठिन भाषा में लिखा हुआ है कि मैं इसे समझ नहीं सकता। आप मुझे बतायें कि मैं इस दस्तावेज़ की बातों का पालन क्यों करूँ?' अगर आप शिक्षक होते तो रजत को क्या उत्तर देते?

10. संविधान के क्रिया-कलाप से जुड़े अनुभवों को लेकर एक चर्चा में तीन वक्ताओं ने तीन अलग-अलग पक्ष लिए –
    (क) हरबंस – भारतीय संविधान एक लोकतांत्रिक ढाँचा प्रदान करने में सफल रहा है।
    (ख) नेहा – संविधान में स्वतंत्रता, समता और भाईचारा सुनिश्चित करने का विधिवत् वादा है। चूँकि ऐसा नहीं हुआ इसलिए संविधान असफल है।
    (ग) नाजिमा – संविधान असफल नहीं हुआ, हमने उसे असफल बनाया।
    क्या आप इनमें से किसी पक्ष से सहमत हैं, यदि हाँ, तो क्यों? यदि नहीं, तो आप अपना पक्ष बतायें।

© NCERT not to be republished

राज्य सभा टीवी शृंखला 'संविधान : भारतीय संविधान के निर्माण की कहानी' तथा 'गांधी', 'सरदार' और 'डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर' जैसी फ़िल्में देखें एवं चर्चा करें। जिस संदर्भ में संविधान बनाया गया, उसको समझने में ये दृश्य-श्रव्य सामग्रियाँ मदद करेंगी। ये हमारे राष्ट्रीय नेताओं के जीवन और समय को जानने में भी आपकी मदद करेंगी।

अध्याय दो

भारतीय संविधान में अधिकार

11103CH02

परिचय

संविधान हमें केवल सरकार के विभिन्न अंगों की संरचना और उनके परस्पर अंतर्संबंधों के बारे में ही नहीं बताता। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में पढ़ा, संविधान वह दस्तावेज़ है जो सरकार की शक्तियों पर अंकुश रख कर एक ऐसी प्रजातांत्रिक व्यवस्था की स्थापना करता है जिसमें सभी व्यक्तियों को कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं। इस अध्याय में हम भारतीय संविधान में निहित मौलिक अधिकारों का अध्ययन करेंगे। संविधान के तीसरे भाग में मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है; उसमें प्रत्येक मौलिक अधिकार के प्रयोग की सीमा का भी उल्लेख है। बीते हुए छह दशकों में अधिकारों का स्वरूप परिवर्तित भी हुआ है और कुछ विस्तृत भी। इस अध्याय में आपको निम्न बातों का ज्ञान होगा:

- *भारतीय संविधान कौन-कौन से मौलिक अधिकार प्रदान करता है;*
- *उन अधिकारों को कैसे सुरक्षित किया जाता है;*
- *उन अधिकारों की व्याख्या व सुरक्षा करने में न्यायपालिका की क्या भूमिका रही है; और*
- *मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में क्या अंतर है।*

© NCERT not to be republished

अधिकारों का महत्त्व

1982 के *एशियाई खेलों से पहले निर्माण कार्य के लिए सरकार ने कुछ ठेकेदारों की सेवाएँ ली। अनेक फ्लाईओवरों और स्टेडियमों का निर्माण करना था और इसके लिए ठेकेदारों ने देश के विभिन्न भागों से बड़ी संख्या में गरीब मिस्त्री और मज़दूरों की भर्ती की। लेकिन मज़दूरों से कामकाज की दयनीय दशा में काम लिया गया। उन्हें सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मज़दूरी से भी कम मज़दूरी दी गई। समाज वैज्ञानिकों की एक टीम ने उनकी स्थिति का अध्ययन कर सर्वोच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की। उन्होंने दलील दी कि तय की गई न्यूनतम मज़दूरी से कम मज़दूरी देना 'बेगार' या 'बंधुआ मज़दूरी' जैसा है और नागरिकों को प्राप्त 'शोषण के विरुद्ध' मौलिक अधिकार का उल्लंघन है। न्यायालय ने इस दलील को स्वीकार कर लिया और सरकार को निर्देश दिया कि वह इन हज़ारों मज़दूरों को उनके काम के लिए तयशुदा मज़दूरी दिलाए।*

मचल लालुँग *को जब गिरफ़्तार किया गया तब वह 23 वर्ष का था। लालुँग असम के मड़िगाँव जिले के चुबुरी गाँव का रहने वाला था। उस पर आरोप था कि उसने किसी को गंभीर चोट पहुँचाई। मुकदमें की सुनवाई के दौरान उसे मानसिक रूप से काफी अस्वस्थ पाया गया और चिकित्सा के लिए तेजपुर के 'लोकप्रिय गोपीनाथ बोरदोलोई अस्पताल' में एक कैदी के रूप में भर्ती करा दिया गया। वहाँ उसका सफलतापूर्वक इलाज किया गया। डॉक्टरों ने जेल अधिकारियों को दो बार (1967, 1996) चिट्ठी भेजी कि लालुँग स्वस्थ है और उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है। लेकिन किसी ने भी उस पर ध्यान नहीं दिया। लालुँग न्यायिक हिरासत में बना रहा। मचल लालुँग को जुलाई, 2005 में जेल से छोड़ा गया। उस समय वह 77 वर्ष का हो चुका था। इस प्रकार वह 54 वर्ष तक हिरासत में रहा और इस दौरान उसके मुकदमे की एक बार भी सुनवाई नहीं हुई। जब राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा नियुक्त एक टीम ने राज्य में बंदियों का निरीक्षण किया तब जाकर लालुँग को स्वतंत्र होने का अवसर मिला।*

मचल का पूरा जीवन ही व्यर्थ बीत गया क्योंकि उसके मुकदमे की सुनवाई ही न हो सकी। हमारा संविधान सभी नागरिकों को 'जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार' देता है। इसका अर्थ है कि हर नागरिक को अपने मुकदमे की निष्पक्ष और त्वरित सुनवाई का अधिकार है। मचल लालुँग का मामला उस स्थिति का संकेत करता है जब संविधान द्वारा दिये गये अधिकार व्यवहार में प्राप्त नहीं होते।

अगर लालुँग धनी और ताकतवर होता तब क्या होता? यदि निर्माण करने वाले ठेकेदार के साथ काम करने वाले लोग इंजीनियर होते तो क्या होता? क्या उनके साथ भी अधिकारों का इसी तरह से हनन होता?

© NCERT not to be republished

इसी प्रकार पहले उदाहरण में भी संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन दिखाई देता है। लेकिन उसे न्यायालय में चुनौती दी गई। इससे मज़दूरों को उचित मज़दूरी मिली जिसके वे हकदार थे। 'शोषण के विरुद्ध संवैधानिक अधिकार' के कारण उन मज़दूरों को न्याय मिल सका।

अधिकारों का घोषणापत्र

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से अधिकारों और उन्हें लागू किये जाने का महत्त्व पता चलता है। इसलिये, अधिकतर लोकतांत्रिक देशों में नागरिकों के अधिकारों को संविधान में सूचीबद्ध कर दिया जाता है। प्रजातंत्र में यह सुनिश्चित होना चाहिए कि व्यक्तियों को कौन-कौन से अधिकार प्राप्त हैं जिन्हें सरकार सदैव मान्यता देगी। संविधान द्वारा प्रदान किये गये और संरक्षित अधिकारों की ऐसी सूची को 'अधिकारों का घोषणापत्र' कहते हैं। अत: अधिकारों का घोषणापत्र सरकार को नागरिकों के अधिकारों के विरुद्ध काम करने से रोकता है और उसका उल्लंघन हो जाने पर उपचार सुनिश्चित करता है।

संविधान नागरिकों के अधिकारों को किससे संरक्षित करता है? नागरिक के अधिकारों को किसी अन्य व्यक्ति या निजी संगठन से खतरा हो सकता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को सरकार द्वारा सुरक्षा प्रदान किये जाने की आवश्यकता होती है। यह ज़रूरी है कि सरकार व्यक्ति के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध हो। इसके अतिरिक्त सरकार के विभिन्न अंग (विधायिका, कार्यपालिका, नौकरशाही या न्यायपालिका) अपने कार्यों के संपादन में व्यक्ति के अधिकारों का हनन कर सकते हैं।

मैं समझ गया! अधिकारों का घोषणापत्र उस 'वारंटी कार्ड' की तरह है जो हमें टी. वी. या पंखा खरीदने पर मिलता है। है न?

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान, स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं ने इन अधिकारों का महत्त्व समझा था और माँग की थी कि अंग्रेज़ शासकों को जनता के अधिकारों का आदर करना चाहिये। 1928 में ही 'मोतीलाल नेहरू समिति' ने 'अधिकारों के एक घोषणापत्र' की माँग उठाई थी। अत: यह स्वाभाविक था कि स्वतंत्रता के बाद संविधान निर्माण के दौरान संविधान में अधिकारों का समावेश करने व उन्हें सुरक्षित करने पर सभी की राय

एक थी। संविधान में उन अधिकारों को सूचीबद्ध किया गया जिन्हें सुरक्षा देनी थी और उन्हें 'मौलिक अधिकारों' की संज्ञा दी गई।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है 'मौलिक अधिकार' अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं और इसीलिए उन्हें संविधान में सूचीबद्ध किया गया है और उनकी सुरक्षा के लिए विशेष प्रावधान बनाये गये हैं। वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि संविधान स्वयं यह सुनिश्चित करता है कि सरकार भी उनका उल्लंघन न कर सके।

मौलिक अधिकार हमारे अन्य अधिकारों से भिन्न हैं। जहाँ साधारण कानूनी अधिकारों को सुरक्षा देने और लागू करने के लिए साधारण कानूनों का सहारा लिया जाता है, वहीं मौलिक अधिकारों की गारंटी और उनकी सुरक्षा स्वयं संविधान करता है। सामान्य अधिकारों को संसद कानून बना कर परिवर्तित कर सकती है लेकिन मौलिक अधिकारों में परिवर्तन के लिए संविधान में संशोधन करना पड़ता है। इसके अलावा सरकार का कोई भी अंग मौलिक अधिकारों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता। इस अध्याय में हम आगे पढ़ेंगे कि सरकार के कार्यों से मौलिक अधिकारों के हनन को

दक्षिण अफ्रीका के संविधान में अधिकारों का घोषणापत्र

दक्षिण अफ्रीका का संविधान दिसंबर 1996 में लागू हुआ। इसे तब बनाया और लागू किया गया जब रंगभेद वाली सरकार के हटने के बाद दक्षिण अफ्रीका गृहयुद्ध के खतरे से जूझ रहा था। दक्षिण अफ्रीका के संविधान के अनुसार "उसके अधिकारों का घोषणापत्र दक्षिण अफ्रीका में प्रजातंत्र की आधारशिला है।" यह नस्ल, लिंग, गर्भधारण, वैवाहिक स्थिति, जातीय या सामाजिक मूल, रंग, आयु, अपंगता, धर्म, अंतरात्मा, आस्था, संस्कृति, भाषा और जन्म के आधार पर भेदभाव वर्जित करता है। यह नागरिकों को संभवत: सबसे ज्यादा व्यापक अधिकार देता है। संवैधानिक अधिकारों को एक विशेष संवैधानिक न्यायालय लागू करता है।

दक्षिण अफ्रीका के संविधान में सम्मिलित कुछ प्रमुख अधिकार निम्न हैं –

- गरिमा का अधिकार
- निजता का अधिकार
- श्रम-संबंधी समुचित व्यवहार का अधिकार
- स्वस्थ पर्यावरण और पर्यावरण संरक्षण का अधिकार
- समुचित आवास का अधिकार
- स्वास्थ्य सुविधाएँ, भोजन, पानी और सामाजिक सुरक्षा का अधिकार
- बाल-अधिकार
- बुनियादी और उच्च शिक्षा का अधिकार
- सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई समुदायों का अधिकार
- सूचना प्राप्त करने का अधिकार

© NCERT not to be republished

रोकने की शक्ति और इसका उत्तरदायित्व न्यायपालिका के पास है। विधायिका या कार्यपालिका के किसी कार्य या निर्णय से यदि मौलिक अधिकारों का हनन होता है या उन पर अनुचित प्रतिबंध लगाया जाता है तो न्यायपालिका उसे अवैध घोषित कर सकती है। लेकिन मौलिक अधिकार निरंकुश या असीमित अधिकार नहीं हैं। सरकार मौलिक अधिकारों के प्रयोग पर 'औचित्यपूर्ण' प्रतिबंध लगा सकती है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की तुलना दक्षिण अफ्रीका के संविधान में दिये गये अधिकारों के घोषणापत्र से करें। उन अधिकारों की एक सूची बनायें जो –

- दोनों संविधानों में पाये जाते हों।
- दक्षिण अफ्रीका में हों पर भारत में नहीं।
- दक्षिण अफ्रीका के संविधान में स्पष्ट रूप से दिये गये हों पर भारतीय संविधान में निहित माने जाते हैं।

समता का अधिकार

निम्न दो स्थितियों पर विचार करें। ये काल्पनिक स्थितियाँ हैं। पर ऐसी बातें होती रहती हैं और आगे भी हो सकती हैं। क्या आपको उनमें मौलिक अधिकारों का उल्लंघन दिखाई देता है?

- *स्वदेश कुमार अपने गाँव गया। उसके साथ उसका एक दोस्त भी था। गाँव के एक होटल में उन्हें चाय पीने की इच्छा हुई। दुकानदार स्वदेश कुमार को जानता था पर उसके मित्र की जाति जानने के लिए उसने उसका नाम पूछा। उसके बाद दुकानदार ने स्वदेश कुमार को तो एक सुंदर कप में चाय दी, लेकिन उसके दोस्त को कुल्हड़ में चाय दी क्योंकि वह दलित था।*
- *टेलीविजन के एक चैनल में समाचार पढ़ने वाले कुल दस सदस्यों में से केवल चार को यह आदेश दिया गया कि आगे वे समाचार न पढ़ें। वे सभी महिलायें थीं। इसका कारण यह बताया गया कि वे सभी 45 वर्ष की उम्र को पार कर चुकी हैं। लेकिन उस अवस्था को पार कर चुके दो पुरुषों पर यह प्रतिबंध नहीं लगाया गया।*

© NCERT not to be republished

भारत का संविधान

भाग III : मौलिक अधिकार

समता का अधिकार

√ कानून के समक्ष समानता
  – कानूनों के समान संरक्षण

√ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध
  – दुकानों, होटलों, कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों आदि में प्रवेश की समानता

√ रोजगार में अवसर की समानता

√ छूआछूत का अंत

√ उपाधियों का अंत

स्वतंत्रता का अधिकार

√ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार
  – भाषण और अभिव्यक्ति का
  – शांतिपूर्ण ढंग से जमा होने और सभा करने का
  – संगठित होने का
  – भारत में कहीं भी आने-जाने का
  – भारत के किसी भी हिस्से में बसने और रहने का
  – कोई भी पेशा चुनने, व्यापार करने का

√ अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण

√ जीवन की रक्षा और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार

√ शिक्षा का अधिकार

√ अभियुक्तों और सजा पाए लोगों के अधिकार

शोषण के विरुद्ध अधिकार

√ मानव के दुर्व्यापार और बंधुआ मज़दूरी पर रोक

√ जोखिम वाले कामों में बच्चों से मज़दूरी कराने पर रोक

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

√ आस्था और प्रार्थना की आज़ादी

√ धार्मिक मामलों के प्रबंधन

√ किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए कर अदायगी की स्वतंत्रता

√ कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या उपासना में उपस्थित होने की स्वतंत्रता

सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार

√ अल्पसंख्यकों की भाषा और संस्कृति के संरक्षण का अधिकार

√ अल्पसंख्यकों को शैक्षिक संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार

संवैधानिक उपचारों का अधिकार

√ मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए न्यायालय में जाने का अधिकार

© NCERT not to be republished

क्या ऐसी बातें हमारे देश में होती हैं? या ये सब केवल काल्पनिक हैं?

ये भेदभाव के स्पष्ट उदाहरण हैं। एक में जाति व दूसरे में लिंग के आधार पर भेदभाव किया गया। आपकी राय में क्या ऐसा भेदभाव उचित है?

'समता का अधिकार' ऐसे और अन्य प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास करता है। यह सार्वजनिक स्थलों – जैसे दुकान, होटल, मनोरंजन-स्थल, कुआँ, स्नान-घाट और पूजा-स्थलों में समानता के आधार पर प्रवेश देता है। केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी के आधार पर प्रवेश में कोई भेदभाव नहीं हो सकता। यह उपर्युक्त आधारों पर लोक सेवाओं में भी कोई भेदभाव वर्जित करता है। यह अधिकार बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पहले हमारे समाज में समानता के आधार पर प्रवेश नहीं दिया जाता था।

छुआछूत की प्रथा असमानता का सबसे भद्दा रूप है। 'समता के अधिकार' के द्वारा इसे समाप्त कर दिया गया। उसी अधिकार के अंतर्गत यह भी व्यवस्था की गई है कि केवल उन लोगों को छोड़कर जिन्होंने सेना या शिक्षा के क्षेत्र में गौरवपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की है राज्य किसी भी व्यक्ति को कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा। इस प्रकार समता का अधिकार भारत को एक सच्चे लोकतंत्र के रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है जिसमें सभी नागरिकों को समान प्रतिष्ठा व गरिमा प्राप्त हो सके।

क्या आपने अपने संविधान की प्रस्तावना पढ़ी है? यह समानता को कैसे परिभाषित करती है? आप पाएँगे कि प्रस्तावना में समानता

अनुच्छेद 16 (4) – ''इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्त्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण का प्रावधान करने से नहीं रोकेगी''

© NCERT not to be republished

के बारे में दो बातों का उल्लेख है: प्रतिष्ठा की समानता और अवसर की समानता। अवसर की समानता का अर्थ है कि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर मिले। लेकिन जब समाज में अनेक सामाजिक विषमताएँ व्याप्त हों, तो वहाँ समान अवसरों का क्या मतलब हो सकता है? संविधान स्पष्ट करता है कि सरकार बच्चों, महिलाओं तथा सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की बेहतरी के लिए विशेष योजनाएँ व निर्णय लागू कर सकती है। आपने नौकरियों और स्कूलों में प्रवेश के लिए 'आरक्षण' के बारे में अवश्य सुना होगा। आपको संभवतया आश्चर्य भी हुआ होगा कि समानता के सिद्धांत का पालन करने के बावजूद यहाँ 'आरक्षण' क्यों है?

वास्तव में संविधान का अनुच्छेद 16 (4) साफ-साफ कहता है कि आरक्षण जैसी नीति को समानता के अधिकार के उल्लंघन के रूप में नहीं देखा जा सकता। यदि आप संविधान की भावना देखें तो आप पाएँगे कि 'अवसर की समानता' के अधिकार को पूरा करने के लिए यह ज़रूरी है।

आप एक न्यायाधीश हैं

आप को ओडिशा के पुरी जिले के 'दलित समुदाय के एक सदस्य' हादिबंधु से एक पोस्टकार्ड मिलता है। उसमें लिखा है कि उसके समुदाय के पुरुषों ने उस प्रथा का पालन करने से इंकार कर दिया जिसके अनुसार उन्हें उच्च जातियों के विवाहोत्सव में दूल्हे और सभी मेहमानों के पैर धोने पड़ते थे। इसके बदले उस समुदाय की चार महिलाओं को पीटा गया और उन्हें निर्वस्त्र करके घुमाया गया। पोस्टकार्ड लिखने वाले के अनुसार, "हमारे बच्चे शिक्षित हैं और वे उच्च जातियों के पुरुषों के पैर धोने, विवाह में भोज के बाद जूठन हटाने और बर्तन माँजने का परंपरागत काम करने को तैयार नहीं हैं।"

यह मानते हुए कि उपर्युक्त तथ्य सही है, आपको निर्णय करना है कि क्या इस घटना में मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है? आप इसमें सरकार को क्या करने का आदेश देंगे?

© NCERT not to be republished

अनुच्छेद 21 – जीवन और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण ''किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा अन्यथा नहीं।''

स्वतंत्रता का अधिकार

किसी भी लोकतंत्र में समता और स्वतंत्रता सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकार है। इनमें से एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। स्वतंत्रता का अर्थ है चिंतन, अभिव्यक्ति और कार्य करने की स्वतंत्रता। लेकिन स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं है कि हम जैसा चाहें वैसा करने लगें। यदि ऐसा करने की इज़ाज़त दे दी जाय तो बहुत सारे लोग अपनी स्वतंत्रता का आनंद उठाने से वंचित हो जाएंगे। अतः स्वतंत्रता को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है कि बिना किसी अन्य की स्वतंत्रता को नुकसान पहुँचाए और बिना कानून–व्यवस्था को ठेस पहुँचाए, प्रत्येक व्यक्ति अपनी–अपनी स्वतंत्रता का आनंद ले सके।

क्या इसका मतलब यह है कि कुछ ऐसे मामले भी हो सकते हैं जिनमें कानून एक आदमी की ज़िदंगी ले सकता है? यह तो अज़ीब बात है। क्या आपको कोई ऐसा मामला याद आता है?

जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार

स्वतंत्रता के सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारों में 'जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार' है। किसी भी नागरिक को कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन किये बिना उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति को बिना कारण बताये गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता। गिरफ़्तार किये जाने पर उस व्यक्ति को अपने पसंदीदा वकील के माध्यम से अपना बचाव करने का अधिकार है। इसके अलावा, पुलिस के लिए यह आवश्यक है कि वह अभियुक्त को 24 घंटे के अंदर निकटतम न्यायाधीश के सामने पेश करे। न्यायाधीश ही इस बात का निर्णय करेगा कि गिरफ़्तार उचित है या नहीं।

इस अधिकार द्वारा किसी व्यक्ति के जीवन को मनमाने ढंग से समाप्त करने के विरुद्ध ही गारंटी नहीं मिलती बल्कि इसका दायरा और भी व्यापक है। सर्वोच्च न्यायालय के पिछले अनेक निर्णयों द्वारा इस अधिकार का दायरा

बढ़ा है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार इसमें शोषण से मुक्त और मानवीय गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार अंतर्निहित है। न्यायालय ने माना कि 'जीवन के अधिकार' का अर्थ है कि व्यक्ति को आश्रय और आजीविका का भी अधिकार हो क्योंकि इसके बिना कोई व्यक्ति ज़िंदा नहीं रह सकता।

निवारक नज़रबंदी

सामान्यत: किसी व्यक्ति को तब गिरफ़्तार करते हैं जब उसने अपराध किया हो। पर इसके अपवाद भी हैं। कभी-कभी किसी व्यक्ति को इस आशंका पर भी गिरफ़्तार किया जा सकता है कि वह कोई गैर-कानूनी कार्य करने वाला है और फिर उसे वर्णित प्रक्रिया का पालन किये बिना ही कुछ समय के लिए जेल भेजा जा सकता है। इसे ही निवारक नज़रबंदी कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि सरकार को लगे कि कोई व्यक्ति देश की कानून-व्यवस्था या शांति और सुरक्षा के लिए खतरा बन सकता है, तो वह उसे बंदी बना सकती है। लेकिन निवारक नज़रबंदी अधिकतम 3 महीने के लिए ही हो सकती है। तीन महीने के बाद ऐसे मामले समीक्षा के लिए एक सलाहकार बोर्ड के समक्ष लाए जाते हैं।

प्रत्यक्ष रूप से निवारक नज़रबंदी सरकार के हाथ में असामाजिक तत्वों और राष्ट्र विद्रोही तत्वों से निपटने का एक हथियार है। लेकिन सरकार ने प्राय: इसका दुरुपयोग किया है। अनेक लोग यह मानते हैं कि इस कानून में कुछ ऐसे सुरक्षात्मक उपाय किए जाने चाहिए जिससे सामान्य नागरिकों के विरुद्ध अन्य किसी कारण से इसके दुरुपयोग को रोका जा सके। वास्तव में जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकारों तथा निवारक नज़रबंदी के प्रावधानों में परस्पर विरोधाभास है।

अन्य स्वतंत्रताएँ

आप देख सकते हैं कि 'स्वतंत्रता के अधिकार' के अंतर्गत कुछ और अधिकार भी हैं। पर इनमें से कोई भी अधिकार निरंकुश नहीं है। इनमें से प्रत्येक के प्रयोग पर सरकार कुछ प्रतिबंध लगा सकती है।

उदाहरण के तौर पर 'भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' पर कानून-व्यवस्था, शांति और नैतिकता के आधार पर प्रतिबंध लगाये जा सकते हैं। सभा और सम्मेलन करने की स्वतंत्रता का प्रयोग करने पर यह शर्त है कि वह शांतिपूर्ण तथा बिना हथियारों के हो। सरकार किसी क्षेत्र में पाँच या पाँच से अधिक लोगों की सभा पर प्रतिबंध लगा सकती है। प्रशासन इस शक्ति का आसानी से दुरुपयोग कर सकता है। वह सरकार के किसी कार्य या नीति के

© NCERT not to be republished

विरुद्ध जनता को न्यायोचित विरोध-प्रदर्शन करने की अनुमति देने से मना कर सकता है। लेकिन जनता अपने अधिकारों के प्रति सजग और सतर्क हो और प्रशासन के ऐसे कार्यों का विरोध करे तो इसके दुरुपयोग की संभावना कम हो जाती है। संविधान सभा में भी कुछ सदस्यों ने अधिकारों को प्रतिबंधित करने पर अपना असंतोष जताया था।

मैं समझता हूँ कि इनमें से अनेक मौलिक अधिकारों को एक सिपाही के दृष्टिकोण से बनाया गया है। ... आप देखेंगे कि काफी कम अधिकार दिए गए हैं और प्रत्येक अधिकार के बाद एक उपबंध जोड़ा गया है। लगभग प्रत्येक अनुच्छेद के बाद एक उपबंध है जो उन अधिकारों को पूरी तरह से वापस ले लेता है। ... मौलिक अधिकारों की हमारी क्या अवधारणा होनी चाहिए? ... हम उस प्रत्येक अधिकार को संविधान में पाना चाहते हैं जो हमारी जनता चाहती है।

सोमनाथ लाहिड़ी
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड III, पृष्ठ 404, 29 अप्रैल 1947

आरोपी या अभियुक्त के अधिकार

हमारा संविधान इसका भी प्रावधान करता है कि उन लोगों को भी पर्याप्त सुरक्षा मिले जिन पर विभिन्न अपराधों के आरोप हों। हम प्राय: ऐसा विश्वास कर लेते हैं कि जिस पर भी किसी अपराध का आरोप लगता है वह दोषी है। लेकिन जब तक न्यायालय किसी व्यक्ति को किसी अपराध का दोषी नहीं ठहराता तब तक उसे दोषी नहीं माना जा सकता। यह भी ज़रूरी है कि किसी अपराध के आरोपी को स्वयं को बचाने का समुचित अवसर मिलना चाहिये। न्यायालय में निष्पक्ष मुकदमे के लिए संविधान तीन अधिकारों की व्यवस्था करता है –

- किसी भी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से ज़्यादा सज़ा नहीं मिलेगी;
- कोई भी कानून किसी भी कार्य को पिछली तारीख से अपराध घोषित नहीं कर सकेगा; और
- किसी भी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए नहीं कहा जा सकेगा।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

क्या आप मानते हैं कि निम्न परिस्थितियाँ स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंधों की माँग करती हैं? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दें-

(क) शहर में सांप्रदायिक दंगों के बाद लोग शांति मार्च के लिए एकत्र हुए हैं।

(ख) दलितों को मंदिर में प्रवेश की मनाही है। मंदिर में जबर्दस्ती प्रवेश के लिए एक जलूस का आयोजन किया जा रहा है।

(ग) सैकड़ों आदिवासियों ने सड़क जाम कर दिया है। वे माँग कर रहे हैं कि कोई कारखाना बनाने के लिए ली गई उनकी जमीन वापस की जाए।

(घ) किसी जाति की पंचायत की बैठक यह तय करने के लिए बुलाई गई कि जाति से बाहर विवाह करने के लिए एक नवदंपति को क्या दंड दिया जाए।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

अपने देश में करोड़ों लोग गरीब, दलित-शोषित और वंचित हैं या लोगों के द्वारा उनका शोषण हो सकता है। ऐसे शोषण को हम अपने देश में 'बेगार' या 'बंधुआ-मज़दूरी' के रूप में जानते हैं। इसी प्रकार के एक शोषण में लोगों को 'दास' के रूप में खरीदा और बेचा जाता था। इन दोनों प्रकार के शोषणों पर संविधान प्रतिबंध लगाता है। पुराने समय में ज़मींदारों, सूदखोरों और अन्य धनी लोग 'बंधुआ मज़दूरी' करवाते थे। देश में अभी भी, खासतौर से भट्ठे के काम में, बंधुआ मज़दूरी करवाई जाती है। अब इसे अपराध घोषित कर दिया गया है और वह कानून द्वारा दंडनीय है।

इस फोटो में आप को किस मौलिक अधिकार का उल्लंघन दिखाई देता है?

© NCERT not to be republished

संविधान के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी कारखाने, खदान या अन्य किसी खतरनाक काम में नियोजित नहीं किया जाएगा। इस प्रकार बाल श्रम को अवैध बना कर और शिक्षा को बच्चों का मौलिक अधिकार बनाकर 'शोषण के विरुद्ध संवैधानिक अधिकार' को और अर्थपूर्ण बनाया गया है।

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

अपने संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पसंद के धर्म का पालन करने का अधिकार है। इस स्वतंत्रता को लोकतंत्र का प्रतीक माना जाता है। इतिहास गवाह है कि दुनिया के अनेक देशों के शासकों और राजाओं ने अपने-अपने देश की जनता को धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार नहीं दिया। शासकों से अलग धर्म को मानने वाले लोगों को या तो मार डाला गया या विवश किया गया कि वे शासकों द्वारा मान्य धर्म को स्वीकार कर लें। अत: लोकतंत्र में अपनी इच्छा के अनुसार धर्म पालन करने की स्वतंत्रता को हमेशा एक बुनियादी सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया है।

आस्था और प्रार्थना की स्वतंत्रता

भारत में प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने और उसका पालन करने का अधिकार है। धार्मिक स्वतंत्रता में अंत:करण की स्वतंत्रता भी समाहित है। इसका अर्थ है कि कोई व्यक्ति किसी भी धर्म को चुन सकता है या यह निर्णय भी ले सकता है कि वह किसी भी धर्म का पालन नहीं करेगा। धार्मिक स्वतंत्रता का यह भी अर्थ है कि सभी व्यक्तियों को अपने धर्म को अबाध रूप से मानने, उसके अनुसार आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा। लेकिन धार्मिक स्वतंत्रता पर कुछ प्रतिबंध भी हैं। लोक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के आधार पर सरकार धार्मिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा सकती है। धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार असीमित नहीं है। कुछ सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए सरकार धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकती है। उदाहरण के तौर पर सरकार ने सती प्रथा, एक से अधिक विवाह और मानव-बलि जैसी कुप्रथाओं पर प्रतिबंध के लिए अनेक कदम उठाए हैं। ऐसे प्रतिबंधों को धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार में हस्तक्षेप नहीं माना जा सकता।

धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार पर नियंत्रण लगाने से विभिन्न धर्म के मानने वालों और सरकार के बीच अक्सर ही तनावपूर्ण स्थितियाँ पैदा होती हैं। जब भी किसी धार्मिक समुदाय के कुछ क्रियाकलापों पर सरकार नियंत्रण लगाती है, तो उस समुदाय के लोग यह महसूस करते हैं कि वह उनके धर्म में एक हस्तक्षेप है।

एक अन्य कारण से भी धार्मिक स्वतंत्रता राजनीतिक विवाद का विषय बन जाती है। संविधान ने सभी को अपने धर्म का प्रचार करने की स्वतंत्रता दी है। इसमें लोगों को एक

धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन के लिए मनाने का अधिकार भी शामिल है। लेकिन कुछ लोग धर्म परिवर्तन का विरोध करते हैं। उनका मानना है कि धर्मांतरण भय या लालच के आधार पर कराए जाते हैं। संविधान भी जबरन धर्म-परिवर्तन की इज़ाज़त नहीं देता। वह हमें केवल अपने धर्म के बारे में सूचनाएँ प्रसारित करने का अधिकार देता है जिससे हम दूसरों को अपने धर्म की ओर आकर्षित कर सकें।

सभी धर्मों की समानता

विभिन्न धर्मावलंबियों का देश होने के कारण यह ज़रूरी है कि सरकार विभिन्न धर्मों के साथ समानता का बर्ताव करे। इसका अर्थ यह भी है कि सरकार किसी विशेष धर्म का पक्ष नहीं लेगी। भारत का कोई राजकीय धर्म नहीं है। भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, न्यायाधीश या अन्य किसी सार्वजनिक पद पर कार्य करने के लिए हमें किसी धर्म-विशेष का सदस्य होना ज़रूरी नहीं है। 'समानता के अधिकार' के अंतर्गत भी हमने देखा कि सभी नागरिकों को इस बात की गारंटी दी गई है कि सरकारी नौकरियों में नियुक्ति के संबंध में सरकार धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करेगी। राज्य द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थाओं में न तो किसी धर्म का प्रचार किया जाएगा, न ही कोई धार्मिक शिक्षा दी जाएगी और न ही उसमें प्रवेश के लिए किसी धर्म को वरीयता दी जाएगी। इन प्रावधानों से धर्म निरपेक्षता को जीवन और बल मिलता है।

खुद करें — खुद सीखें

अपने गाँव या शहर में होने वाले सार्वजनिक धार्मिक गतिविधियों की सूची बनाएँ।

इनमें से कौन-कौन-सी गतिविधियाँ धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग दिखलाती हैं?

इस पर चर्चा करें कि यदि आपके क्षेत्र में लोगों को यह अधिकार नहीं होता, तो क्या होता?

सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार

जब हम भारतीय समाज की बात करते हैं तो हमारे मन में विविधता की छवि उभरती है। भारतीय समाज कोई समरूप समाज नहीं है वरन् उसमें काफी विविधता है। ऐसे विविधता भरे समाज में कुछ समुदाय छोटे और कुछ बड़े हैं। क्या ऐसी स्थिति में अल्पसंख्यक समुदाय को बहुसंख्यक समुदाय की संस्कृति स्वीकार करनी पड़ेगी?

हमारा संविधान मानता है कि 'विविधता' हमारे समाज की मज़बूती है। अत: अल्पसंख्यकों का अपनी संस्कृति को बनाये रखने का अधिकार भी एक मौलिक अधिकार

© NCERT not to be republished

बहुसख्यंकों पर एक गंभीर उत्तरदायित्व है कि वे देखें कि अल्पसंख्यक सुरक्षित महसूस करें। ··· केवल एक धर्मनिरपेक्ष शासन में ही अल्संख्यक सुरक्षित रहेंगे। उनके लिए राष्ट्रवादी होना लाभकारी है। बहुसंख्यकों को अपने राष्ट्रीय दृष्टिकोण का दिखावा नहीं करना चाहिये। ··· उन्हें स्वयं को अल्पसंख्यकों की स्थिति में रखकर उनकी आशंकाओं को समझना चाहिये। सुरक्षा की सभी माँगे उसी आशंका पर आधारित हैं, जो अल्पसंख्यकों के मन में अपनी भाषा, लिपि और नौकरियों के अवसर के संबंध में हैं।

सरदार हुकुम सिंह
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड VIII, पृष्ठ 322, 26 मई 1949

है। किसी समुदाय को केवल धर्म के आधार पर नहीं बल्कि भाषा और संस्कृति के आधार पर भी अल्पसंख्यक माना जाता है। अल्पसंख्यक वह समूह है जिनकी अपनी एक भाषा या धर्म होता है और देश के किसी एक भाग में या पूरे देश में संख्या के आधार पर वे किसी अन्य समूह से छोटा है, ऐसे अल्पसंख्यक समूहों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रखने और उसे विकसित करने का अधिकार है।

भाषाई या धार्मिक अल्पसख्यंक अपने शिक्षण संस्थान खोल सकते हैं। ऐसा करके वे अपनी संस्कृति को सुरक्षित और विकसित कर सकते हैं। शिक्षण संस्थाओं को वित्तीय अनुदान देने के मामले में सरकार इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगी कि उस शिक्षण संस्थान का प्रबंध किसी अल्पसंख्यक समुदाय के हाथ में है।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार

इस बात से हर-कोई सहमत होगा कि हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों की सूची बड़ी आकर्षक है। लेकिन अधिकारों की विस्तृत सूची देना ही काफी नहीं। कोई ऐसा तरीका होना चाहिए जिससे उन्हें व्यवहार में लाया जा सके और उल्लंघन होने पर अधिकारों की रक्षा की जा सके।

© NCERT not to be republished

'संवैधानिक उपचारों का अधिकार' वह साधन है जिसके द्वारा ऐसा किया जा सकता है। डॉ. अंबेडकर ने इस अधिकार को 'संविधान का हृदय और आत्मा' की संज्ञा दी। इसके अंतर्गत हर नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने मौलिक अधिकारों के उल्लंघन किए जाने पर सीधे उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए सरकार को आदेश और निर्देश दे सकते हैं। न्यायालय कई प्रकार के विशेष आदेश जारी करते हैं जिन्हें प्रादेश या रिट कहते हैं।

- **बंदी प्रत्यक्षीकरण** – बंदी प्रत्यक्षीकरण के द्वारा न्यायालय किसी गिरफ़्तार व्यक्ति को न्यायालय के सामने प्रस्तुत करने का आदेश देता है। यदि गिरफ़्तारी का तरीका या कारण गैरकानूनी या असंतोषजनक हो, तो न्यायालय गिरफ़्तार व्यक्ति को छोड़ने का आदेश दे सकता है।
- **परमादेश** – यह आदेश तब ज़ारी किया जाता है जब न्यायालय को लगता है कि कोई सार्वजनिक पदाधिकारी अपने कानूनी और संवैधानिक दायित्वों का पालन नहीं कर रहा है और इससे किसी व्यक्ति का मौलिक अधिकार प्रभावित हो रहा है।
- **निषेध आदेश** – जब कोई निचली अदालत अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करके किसी मुकदमे की सुनवाई करती है तो ऊपर की अदालतें (उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय) उसे ऐसा करने से रोकने के लिए 'निषेध आदेश' ज़ारी करती है।
- **अधिकार पृच्छा** – जब न्यायालय को लगता है कि कोई व्यक्ति ऐसे पद पर नियुक्त हो गया है जिस पर उसका कोई कानूनी हक नहीं है तब न्यायालय 'अधिकार पृच्छा आदेश' के द्वारा उसे उस पद पर कार्य करने से रोक देता है।
- **उत्प्रेषण रिट** – जब कोई निचली अदालत या सरकारी अधिकारी बिना अधिकार के कोई कार्य करता है, तो न्यायालय उसके समक्ष विचाराधीन मामले को उससे लेकर उत्प्रेषण द्वारा उसे ऊपर की अदालत या अधिकारी को हस्तांतरित कर देता है।

बाद में इन अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायपालिका के अलावा कुछ और संरचनाओं का भी निर्माण किया गया। आपने राष्ट्रीय अल्पसंख्यक

मैं अपने मुहल्ले में तो अल्पसंख्यक हूँ पर शहर में बहुसंख्यक। भाषा के हिसाब से तो अल्पसंख्यक हूँ लेकिन धर्म के लिहाज से मैं बहुसंख्यक हूँ। क्या हम सभी अल्पसंख्यक नहीं हैं?

आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग आदि के बारे में सुना होगा। ये संस्थाएँ क्रमशः अल्पसंख्यकों, महिलाओं और दलितों के अधिकारों की रक्षा करती हैं। इसके अतिरिक्त, मौलिक अधिकारों और अन्य अधिकारों की रक्षा करने के लिए कानून द्वारा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का भी गठन किया गया है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

किसी भी संविधान द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों की असली पहचान तब होती है जब उन्हें लागू किया जाता है। समाज के गरीब, अशिक्षित और कमज़ोर तबके के लोगों को अपने अधिकारों को प्रयोग करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़ (पी.यू.सी.एल.) या पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (पी.यू.डी.आर.) जैसी संस्थाएँ अधिकारों के हनन के विरुद्ध चौकसी करती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में वर्ष 1993 में सरकार ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में सर्वोच्च न्यायालय का एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश, किसी उच्च न्यायालय का एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश तथा मानवाधिकारों के संबंध में ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखने वाले दो और सदस्य होते हैं।

मानवाधिकारों के उल्लंघन की शिकायतें मिलने पर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग स्वयं अपनी पहल पर या किसी पीड़ित व्यक्ति की याचिका पर जाँच कर सकता है। जेलों में बंदियों की स्थिति का अध्ययन करने जा सकता है; मानवाधिकार के क्षेत्र में शोध कर सकता है या शोध को प्रोत्साहित कर सकता है।

आयोग को प्रतिवर्ष हजारों शिकायतें मिलती हैं। इनमें से अधिकतर हिरासत में मृत्यु, हिरासत के दौरान बलात्कार, लोगों के गायब होने, पुलिस की ज़्यादतियों, कार्यवाही न किये जाने, महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार आदि से संबंधित होती हैं। मानवाधिकार आयोग का सबसे प्रभावी हस्तक्षेप पंजाब में युवकों के गायब होने तथा गुजरात दंगों के मामले में जाँच के रूप में रहा। आयोग को स्वयं मुकदमा सुनने का अधिकार नहीं है। यह सरकार या न्यायालय को अपनी जाँच के आधार पर मुकदमें चलाने की सिफारिश कर सकता है।

अधिक जानकारी के लिए, देखें www.nhrc.nic.in

© NCERT not to be republished

राज्य के नीति-निर्देशक तत्व

संविधान निर्माताओं को पता था कि स्वतंत्र भारत को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। इसमें सभी नागरिकों में समानता लाना और सबका कल्याण करना सबसे बड़ी चुनौती थी। उन लोगों ने यह भी सोचा कि इन समस्याओं को हल करने के लिए कुछ नीतिगत निर्देश ज़रूरी हैं। लेकिन इसके साथ ही वे इन नीतियों को भावी सरकारों के लिए बाध्यकारी भी नहीं बनाना चाहते थे।

संविधान में कुछ निर्देशक तत्वों का समावेश तो किया गया लेकिन उन्हें न्यायालय के माध्यम से लागू करवाने की व्यवस्था नहीं की गई। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि सरकार किसी निर्देश को लागू नहीं करती तो हम न्यायालय में जाकर यह माँग नहीं कर सकते कि उसे लागू कराने के लिए न्यायालय सरकार को आदेश दे। इसीलिए कहा जाता है कि नीति निर्देशक तत्व 'वाद योग्य नहीं' हैं। अर्थ यह है कि यह संविधान का एक हिस्सा है जिसे न्यायपालिका द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता। संविधान निर्माताओं का मानना था कि इन निर्देशक तत्वों के पीछे जो नैतिक शक्ति है वह सरकार को बाध्य करेगी कि सरकार नीति निर्देशक तत्वों को गंभीरता से ले। इसके अलावा वे ऐसा भी समझते थे कि जनता उन्हें लागू करने की ज़िम्मेदारी भावी सरकारों पर डालेगी। अतः संविधान में ऐसी नीतियों की एक निर्देशक सूची रखी गई है। निर्देशों की उसी सूची को राज्य के नीति-निर्देशक तत्व कहते हैं।

नीति-निर्देशक तत्व क्या हैं?

नीति-निर्देशक तत्वों की सूची में तीन प्रमुख बातें हैं –

- वे लक्ष्य और उद्देश्य जो एक समाज के रूप में हमें स्वीकार करने चाहिए;
- वे अधिकार जो नागरिकों को मौलिक अधिकारों के अलावा मिलने चाहिए, और
- वे नीतियाँ जिन्हें सरकार को स्वीकार करना चाहिए।

नीति-निर्देशक तत्वों को देखने से आपको संविधान निर्माताओं की 'भारत की कल्पना' का आभास होगा।

समय-समय पर सरकार ने कुछ नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने का प्रयास किया। अनेक ज़मींदारी उन्मूलन कानून, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, कई फैक्ट्री-अधिनियम, न्यूनतम मज़दूरी निर्धारण, कुटीर और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के उन्नयन के लिए आरक्षण आदि इन प्रयासों को दर्शाते हैं। नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने के प्रयास में शिक्षा का अधिकार, पूरे देश में पंचायती-राज व्यवस्था लागू

© NCERT not to be republished

करना, रोज़गार गारंटी योजना के अंतर्गत काम का सीमित अधिकार, स्कूली बच्चों के लिए दोपहर के भोजन की योजना आदि समिलित हैं।

नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्य

- वर्ष 1976 में संविधान का 42वाँ संशोधन किया गया। अन्य प्रावधानों के अलावा इस संशोधन से संविधान में नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्यों की एक सूची का समावेश किया गया जिसमें कुल दस कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया। लेकिन इन्हें लागू करने के संबंध में संविधान मौन है।
- नागरिक के रूप में हमें अपने संविधान का पालन करना चाहिए, देश की रक्षा करनी चाहिए, सभी नागरिकों में भाईचारा बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए तथा पर्यावरण की रक्षा करनी चाहिए।
- परंतु यह ध्यान देने की बात है कि संविधान मौलिक कर्त्तव्यों के अनुपालन के आधार पर या उनकी शर्त पर हमें मौलिक अधिकार नहीं देता। इस दृष्टि से संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों के समावेश से हमारे मौलिक अधिकारों पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ा।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

ऐसा अनुमान है कि भारत में लगभग 30 लाख लोग शहरों में बेघर हैं। इनमें से पाँच प्रतिशत लोगों के लिए रात में सोने की जगह भी नहीं है। इनमें सैकड़ों बूढ़े और बीमार बेघर लोगों की जाड़े में शीतलहर से मृत्यु हो जाती है। उन्हें 'निवास का प्रमाण' न दे पाने के कारण राशन कार्ड या मतदाता पहचान पत्र नहीं मिल पाते। इसके अभाव में उन्हें ज़रूरतमंद मरीजों के रूप में सरकारी मदद भी नहीं मिल पाती। इनमें एक बड़ी संख्या में लोग दिहाड़ी मज़दूर हैं जिन्हें बहुत कम मज़दूरी मिलती है। वे मज़दूरी की तलाश में देश के विभिन्न हिस्सों से शहरों में आते हैं।

आप इन तथ्यों के आधार पर 'संवैधानिक उपचारों के अधिकार' के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को एक याचिका भेंजे। आपकी याचिका में निम्न दो बातों का उल्लेख होना चाहिए –

(क) इन बेघर लोगों के कौन-से मौलिक अधिकार का उल्लंघन हो रहा है?

(ख) आप सर्वोच्च न्यायालय से किस प्रकार का आदेश देने की प्रार्थना करेंगे?

© NCERT not to be republished

नीति-निर्देशक तत्वों और मौलिक अधिकारों में संबंध

मौलिक अधिकारों और नीति-निर्देशक तत्वों को एक-दूसरे के पूरक के रूप में देखा जा सकता है। जहाँ मौलिक अधिकार सरकार के कुछ कार्यों पर प्रतिबंध लगाते हैं वहीं नीति-निर्देशक तत्व उसे कुछ कार्यों को करने की प्रेरणा देते हैं। मौलिक अधिकार खास

नीति-निर्देशक तत्व

उद्देश्य

लोगों का कल्याण; सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय

जीवन स्तर ऊँचा उठाना; संसाधनों का समान वितरण

अंतर्राष्ट्रीय शांति को बढ़ावा

ऐसे अधिकार जिनके लिए न्यायालय में दावा नहीं किया जा सकता

पर्याप्त जीवन यापन;

महिलाओं और पुरुषों को समान काम की समान मज़दूरी

आर्थिक शोषण के विरुद्ध अधिकार

काम का अधिकार

छह वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए प्रारंभिक बाल्यावस्था देख-रेख और शिक्षा

नीतियाँ

समान नागरिक संहिता;
मद्यपान निषेध;
घरेलू उद्योगों को बढ़ावा;
उपयोगी पशुओं को मारने पर रोक;
ग्राम पंचायतों को प्रोत्साहन

मुझे बताओ कि संविधान में अच्छी-अच्छी बातें कहने का क्या मतलब यदि उसे किसी न्यायालय में लागू ही नहीं किया जा सकता?

तौर से व्यक्ति के अधिकारों को संरक्षित करते हैं, पर नीति-निर्देशक तत्व पूरे समाज के हित की बात करते हैं। लेकिन कभी-कभी जब सरकार नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने का प्रयास करती है, तो वे नागरिकों के मौलिक अधिकारों से टकरा सकते हैं।

यह समस्या तब पैदा हुई जब सरकार ने ज़मींदारी उन्मूलन कानून बनाने का फ़ैसला किया। इसका विरोध इस आधार पर किया गया कि उससे संपत्ति के मौलिक अधिकार का हनन होता है। लेकिन यह सोचकर कि सामाजिक आवश्यकताएँ वैयक्तिक हित से ऊपर हैं, सरकार ने नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने के लिए संविधान का संशोधन किया।

इससे एक लंबी कानूनी लड़ाई शुरू हुई। कार्यपालिका और न्यायपालिका ने इस पर परस्पर विरोधी दृष्टिकोण अपनाया। सरकार की मान्यता थी कि नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। इसके पीछे यह धारणा थी कि लोक कल्याण के मार्ग में अधिकार बाधक हैं। दूसरी ओर न्यायालय की यह मान्यता थी कि मौलिक अधिकार इतने महत्वपूर्ण और पावन हैं कि नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने के लिए भी उन्हें प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता।

संपत्ति का अधिकार

मौलिक अधिकारों और नीति-निर्देशक तत्वों के मध्य संबंधों पर उठे विवाद के पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण था मूल संविधान में संपत्ति अर्जन, स्वामित्व और संरक्षण का मौलिक अधिकार दिया गया था। लेकिन संविधान में स्पष्ट कहा गया था कि सरकार लोक-कल्याण के लिए संपत्ति का अधिग्रहण कर सकती है। 1950 से ही सरकार ने अनेक ऐसे कानून बनाए जिससे संपत्ति के अधिकार पर प्रतिबंध लगा। मौलिक अधिकारों और नीति-निर्देशक तत्वों के मध्य विवाद के केंद्र में यही अधिकार था। आखिरकार 1973 में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में 'संपत्ति के अधिकार' को 'संविधान के मूल ढाँचे' का तत्व नहीं माना और कहा कि संसद को संविधान का संशोधन करके इसे प्रतिबंधित करने का अधिकार है। 1978 में जनता पार्टी की सरकार ने 44वें संविधान संशोधन के द्वारा संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची से निकाल दिया और संविधान के अनुच्छेद 300 (क) के अंतर्गत उसे एक सामान्य कानूनी अधिकार बना दिया।

आपकी राय में 'संपत्ति के अधिकार' को मौलिक अधिकार से कानूनी अधिकार बनाने से क्या फर्क पड़ता है?

2024-25

© NCERT not to be republished

इसने एक और भी जटिल वाद-विवाद को जन्म दिया। वह संविधान के संशोधन से संबंधित था। सरकार का मत था कि संसद संविधान के किसी भी अंश या प्रावधान में संशोधन कर सकती है। न्यायपालिका का कहना था कि संसद कोई ऐसा संशोधन नहीं कर सकती जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता हो। यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय द्वारा केशवानन्द भारती मुकदमे में दिए गए एक महत्वपूर्ण निर्णय से समाप्त हुआ। इसमें निर्णय देते हुए न्यायालय ने यह कहा कि संविधान की कुछ 'मूल-ढाँचागत' विशेषताएँ हैं और संसद उनमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकती। इसे हम नवें अध्याय 'संविधान : एक जीवंत दस्तावेज़' में विस्तार से पढ़ेंगे।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- दक्षिण अफ्रीका के संविधान में अधिकारों के घोषणापत्र और भारतीय संविधान में दिए नीति-निर्देशक तत्वों को पढ़ें। दोनों सूचियों में आपको कौन-सी बातें एक समान लगती हैं?
- दक्षिण अफ्रीका के संविधान ने इन्हें अधिकारों के घोषणापत्र में क्यों रखा?
- यदि आपको एक नए राष्ट्र के लिए संविधान बनाना हो, तो उसके लिए आप क्या सुझाएँगे?

© NCERT not to be republished

निष्कर्ष

महाराष्ट्र के एक क्रांतिकारी समाज सुधारक ज्योतिबा राव फुले (1827-1890) की रचनाओं में हमें सर्वप्रथम यह विचार प्राप्त होता है कि अधिकारों में स्वतंत्रता और समानता दोनों ही निहित हैं। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान यह विचार और स्पष्ट हुआ तथा इस संवैधानिक अधिकारों के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। हमारे संविधान में इस लंबी परंपरा को मौलिक अधिकारों की सूची के रूप में देखा जा सकता है। 1950 से न्यायपालिका ने अधिकारों के महत्त्वपूर्ण संरक्षक की भूमिका निभाई है।
न्यायिक व्याख्याओं ने अनेक अधिकारों का क्षेत्र विस्तृत कर दिया है। हमारी सरकार और प्रशासन इसी परिप्रेक्ष्य में काम करते हैं। अधिकार सरकार के कार्यों की सीमा तय करते हैं और देश में लोकतांत्रिक शासन सुनिश्चित करते हैं।

प्रश्नावली

1. निम्नलिखित प्रत्येक कथन के बारे में बताएँ कि वह सही है या गलत
   (क) अधिकार-पत्र में किसी देश की जनता को हासिल अधिकारों का वर्णन रहता है।
   (ख) अधिकार-पत्र व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करता है।
   (ग) विश्व के हर देश में अधिकार-पत्र होता है।

2. निम्नलिखित में कौन मौलिक अधिकारों का सबसे सटीक वर्णन है?
   (क) किसी व्यक्ति को प्राप्त समस्त अधिकार
   (ख) कानून द्वारा नागरिक को प्रदत्त समस्त अधिकार
   (ग) संविधान द्वारा प्रदत्त और सुरक्षित समस्त अधिकार
   (घ) संविधान द्वारा प्रदत्त वे अधिकार जिन पर कभी प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता।

3. निम्नलिखित स्थितियों को पढ़ें। प्रत्येक स्थिति के बारे में बताएँ कि किस मौलिक अधिकार का उपयोग या उल्लंघन हो रहा है और कैसे?
   (क) राष्ट्रीय एयरलाइन के चालक-परिचालक दल (Cabin-Crew) के ऐसे पुरुषों को जिनका वजन ज़्यादा है - नौकरी में तरक्की दी गई लेकिन उनकी ऐसी महिला सहकर्मियों को, दंडित किया गया जिनका वजन बढ़ गया था।
   (ख) एक निर्देशक एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म बनाता है जिसमें सरकारी नीतियों की आलोचना है।
   (ग) एक बड़े बाँध के कारण विस्थापित हुए लोग अपने पुनर्वास की माँग करते हुए रैली निकालते हैं।
   (घ) आंध्र-सोसायटी आंध्र प्रदेश के बाहर तेलुगु माध्यम के विद्यालय चलाती है।

4. निम्नलिखित में कौन सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों की सही व्याख्या है?
   (क) शैक्षिक-संस्था खोलने वाले अल्पसंख्यक वर्ग के ही बच्चे इस संस्थान में पढ़ाई कर सकते हैं।
   (ख) सरकारी विद्यालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अल्पसंख्यक-वर्ग के बच्चों को उनकी संस्कृति और धर्म-विश्वासों से परिचित कराया जाए।
   (ग) भाषाई और धार्मिक-अल्पसंख्यक अपने बच्चों के लिए विद्यालय खोल सकते हैं और उनके लिए इन विद्यालयों को आरक्षित कर सकते हैं।
   (घ) भाषाई और धार्मिक-अल्पसंख्यक यह माँग कर सकते हैं कि उनके बच्चे उनके द्वारा संचालित शैक्षणिक-संस्थाओं के अतिरिक्त किसी अन्य संस्थान में नहीं पढ़ेंगे।

5. इनमें कौन-मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है और क्यों?
   (क) न्यूनतम देय मज़दूरी नहीं देना।
   (ख) किसी पुस्तक पर प्रतिबंध लगाना।

© NCERT not to be republished

(ग) 9 बजे रात के बाद लाऊड-स्पीकर बजाने पर रोक लगाना।
(घ) भाषण तैयार करना।

6. गरीबों के बीच काम कर रहे एक कार्यकर्त्ता का कहना है कि गरीबों को मौलिक अधिकारों की ज़रूरत नहीं है। उनके लिए ज़रूरी यह है कि नीति-निर्देशक सिद्धांतों को कानूनी तौर पर बाध्यकारी बना दिया जाए। क्या आप इससे सहमत हैं? अपने उत्तर का कारण बताएँ।

7. अनेक रिपोर्टों से पता चलता है कि जो जातियाँ पहले झाड़ू देने के काम में लगी थीं उन्हें अब भी मज़बूरन यही काम करना पड़ रहा है। जो लोग अधिकार-पद पर बैठे हैं वे इन्हें कोई और काम नहीं देते। इनके बच्चों को पढ़ाई-लिखाई करने पर हतोत्साहित किया जाता है। इस उदाहरण में किस मौलिक-अधिकार का उल्लंघन हो रहा है।

8. एक मानवाधिकार-समूह ने अपनी याचिका में अदालत का ध्यान देश में मौजूद भूखमरी की स्थिति की तरफ खींचा। भारतीय खाद्य-निगम के गोदामों में 5 करोड़ टन से ज़्यादा अनाज भरा हुआ था। शोध से पता चलता है कि अधिकांश राशन-कार्डधारी यह नहीं जानते कि उचित-मूल्य की दुकानों से कितनी मात्रा में वे अनाज खरीद सकते हैं। मानवाधिकार समूह ने अपनी याचिका में अदालत से निवेदन किया कि वह सरकार को सार्वजनिक-वितरण-प्रणाली में सुधार करने का आदेश दे।
(क) इस मामले में कौन-कौन से अधिकार शामिल हैं? ये अधिकार आपस में किस तरह जुड़े हैं?
(ख) क्या ये अधिकार जीवन के अधिकार का एक अंग हैं?

9. इस अध्याय में उद्धृत सोमनाथ लाहिड़ी द्वारा संविधान-सभा में दिए गए वक्तव्य को पढ़ें। क्या आप उनके कथन से सहमत हैं? यदि हाँ तो इसकी पुष्टि में कुछ उदाहरण दें। यदि नहीं तो उनके कथन के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत करें।

10. आपके अनुसार कौन-सा मौलिक अधिकार सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है? इसके प्रावधानों को संक्षेप में लिखें और तर्क देकर बताएँ कि यह क्यों महत्त्वपूर्ण है?

© NCERT not to be republished

अध्याय तीन

चुनाव और प्रतिनिधित्व

11103CH03

परिचय

क्या आपने कभी शतरंज खेला है? यदि उसमें काला घोड़ा ढाई घर चलने के बजाय सीधा चलने लगे तो क्या होगा? या, क्रिकेट के खेल में यदि अंपायर न हो तो क्या होगा? प्रत्येक खेल में हमें कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। उन नियमों को बदल दिया जाय तो खेल का परिणाम भी बदल जायेगा। इसी तरह, प्रत्येक खेल में एक निष्पक्ष अंपायर होना चाहिए जिसके निर्णयों को सभी खिलाड़ी स्वीकार कर लें। खेल शुरू करने से पहले ही हमें नियमों और अंपायर के बारे में सहमति बनानी पड़ेगी। जो खेल के बारे में सत्य है वही चुनाव के बारे में भी सत्य है। चुनाव संपन्न कराने के भिन्न-भिन्न नियम और व्यवस्थाएँ हैं। चुनाव का परिणाम इस पर निर्भर करता है कि हमने कैसे नियम बनाये हैं। हमें चुनावों को निष्पक्ष ढंग से कराने के लिए एक मशीनरी भी चाहिये। चूँकि ये दोनों ही निर्णय चुनावी राजनीति का खेल शुरू होने से पहले ही लिए जाने चाहिये, इसलिए इन्हें सरकार पर नहीं छोड़ा जा सकता। अत: चुनाव के बारे में इन मूलभूत निर्णयों को लोकतांत्रिक देश के संविधान में लिख दिया जाता है।

इस अध्याय में हम चुनाव और प्रतिनिधित्व के बारे में संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययन करेंगे। अपने संविधान में जिस चुनाव पद्धति को स्वीकार किया गया है हम उसके महत्त्व और चुनाव कराने की निष्पक्ष मशीनरी से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों के आशय पर प्रकाश डालेंगे। इस संबंध में संविधान के प्रावधानों को संशोधित करने के लिए जो सुझाव दिये गये हैं हम उन्हें भी देखेंगे। इस अध्याय को पढ़ने से आपको निम्नलिखित बातों का पता चलेगा –

- *चुनाव की विभिन्न विधियाँ;*
- *अपने देश की चुनाव-व्यवस्था की विशेषताएँ;*
- *स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के प्रावधानों का महत्त्व; और*
- *चुनाव सुधार पर होने वाली बहस।*

© NCERT not to be republished

चुनाव और लोकतंत्र

आइये हम अपने से ही चुनाव और प्रजातंत्र के बारे में दो प्रश्न पूछ कर अध्याय की शुरुआत करें।

- क्या बिना चुनाव के लोकतंत्र कायम रह सकता है?
- क्या बिना लोकतंत्र के चुनाव हो सकता है?

पिछली कक्षाओं में हमने जो कुछ भी पढ़ा उसके उदाहरणों का प्रयोग करते हुए हमें इन प्रश्नों पर चर्चा करनी चाहिये।

कार्टून बूझें

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

17 फरवरी 1957

कहा जाता है कि चुनाव लोकतंत्र का त्यौहार है लेकिन इस कार्टून में उसे एक आफत के रूप में दिखाया गया है। क्या यह लोकतंत्र के लिए अच्छा है?

पहला प्रश्न हमें एक बड़े लोकतंत्र में चुनाव की आवश्यकता के बारे में याद दिलाता है। कोई भी निर्णय लेने में सभी नागरिक प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकते। अतः लोग अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं। इसलिए, चुनाव महत्त्वपूर्ण हो जाता है। हम जब भी भारतीय लोकतंत्र के बारे में सोचते हैं तो सहज ही हमारा ध्यान पिछले चुनावों पर चला जाता है। आज चुनाव पूरी लोकतांत्रिक प्रक्रिया के जाने-पहचाने प्रतीक हो गये हैं। हम प्रायः प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में अंतर करते हैं। प्रत्यक्ष लोकतंत्र में नागरिक रोजमर्रा के फ़ैसलों और सरकार चलाने में सीधे भाग लेते हैं। प्राचीन यूनान के नगर-राज्य प्रत्यक्ष लोकतंत्र के उदाहरण माने जाते हैं। अनेक लोगों की स्थानीय सरकारें, खास तौर से ग्राम सभाएँ, प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के निकटतम उदाहरण हैं। लेकिन जब लाखों और करोड़ों लोगों को निर्णय लेना हो, तो इस प्रकार के प्रत्यक्ष लोकतंत्र को व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। इसलिए जनता के शासन का अर्थ सामान्यतः जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा चलने वाले शासन से है।

ऐसी व्यवस्था में नागरिक अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं जो देश के शासन और प्रशासन को चलाने में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। इन प्रतिनिधियों को चुनने की विधि को चुनाव या निर्वाचन कहते हैं। अत: महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने और प्रशासन चलाने में नागरिकों की सीमित भूमिका है। वे इन नीतियों के निर्माण में बहुत सक्रिय रूप से सम्मिलित नहीं होते। नागरिक उसमें अप्रत्यक्ष रूप से, अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से, सम्मिलित होते हैं। जिस व्याख्या में सभी प्रमुख निर्णय निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से लिए जाएँ उसमें प्रतिनिधियों के निर्वाचन का तरीका बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

दूसरा प्रश्न हमें इस बात की याद दिलाता है कि सभी चुनाव लोकतांत्रिक नहीं होते। बहुत सारे गैर-लोकतांत्रिक देशों में भी चुनाव होते हैं। वास्तव में गैर-लोकतांत्रिक शासक स्वयं को लोकतांत्रिक साबित करने के लिए बहुत आतुर रहते हैं। इसके लिए वे चुनावों को ऐसे ढंग से कराते हैं कि उनके शासन को कोई खतरा न हो। क्या आप ऐसे कुछ गैर-लोकतांत्रिक चुनावों के उदाहरण दे सकते हैं? आपकी राय में कौन-सी बात एक लोकतांत्रिक चुनाव को एक गैर-लोकतांत्रिक चुनाव से अलग करती है? किसी देश में चुनावों को लोकतांत्रिक ढंग से संपन्न कराना सुनिश्चित करने के लिए क्या करना चाहिये?

इसी बिंदु पर संविधान की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। एक लोकतांत्रिक देश का संविधान चुनावों के लिए कुछ मूलभूत नियम बनाता है और इस संबंध में विस्तृत नियम-कानून बनाने का काम विधायिका पर छोड़ देता है। ये मूलभूत नियम सामान्यत: हमें बताते हैं कि –

- कौन मत देने के लिए योग्य है?
- कौन चुनाव लड़ने के लिए योग्य है?
- कौन चुनाव की देख-रेख करेगा?
- मतदाता अपना प्रतिनिधि कैसे चुनेंगे?
- मतगणना कैसे होगी और प्रतिनिधियों का चुनाव कैसे होगा?

अन्य लोकतांत्रिक संविधानों की भाँति भारत का संविधान भी इन सभी प्रश्नों का उत्तर देता है। आप देख सकते है कि इसमें पहले तीन प्रश्नों का लक्ष्य एक स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव है, जिसे लोकतांत्रिक चुनाव कहा जा सके। अंतिम दो प्रश्नों का लक्ष्य न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व

इन नियमों को संविधान में लिखने की क्या ज़रूरत है? इन्हें संसद क्यों नहीं तय करती? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि ये नियम चुनाव से पहले सभी दल मिलकर तय करें?

© NCERT not to be republished

है। इस अध्याय में हम चुनाव के बारे में संवैधानिक प्रावधानों के इन दो पहलुओं की चर्चा करेंगे।

भारत में चुनाव व्यवस्था

खुद करें—खुद सीखें

भारत तथा किसी अन्य देश के चुनावों के संबंध में अखबारों की खबरों को काटें। उन कतरनों को निम्न वर्गों में बाँटें –

(क) प्रतिनिधित्व की व्यवस्था।

(ख) मतदाताओं की योग्यता।

(ग) चुनाव आयोग की भूमिका।

यदि आपके पास इंटरनेट है, तो आप भारत निर्वाचन आयोग, की वेबसाइट, https://eci.gov.in और 'ACE प्रोजेक्ट, Electoral Knowledge Network' की वेबसाइट, http://aceproject.org पर जाएँ और इन विषयों पर चार देशों के बारे में सूचनाएँ एकत्र करें।

ऊपर आपने चुनावों की विभिन्न विधियों या व्यवस्थाओं पर गौर किया होगा। आपको आश्चर्य भी हुआ होगा कि यह सब क्या है? आपने, चुनावों के समय चुनाव-प्रचार के लिए अपनाये जाने वाले विभिन्न तरीकों के बारे में पढ़ा होगा। लेकिन चुनाव के विभिन्न तरीके क्या हैं? चुनाव संचालन करने की एक व्यवस्था है। इसके लिए प्राधिकार (authorities) और नियम भी हैं जो बताते हैं कि क्या करें और क्या न करें। क्या चुनाव व्यवस्था का यही अर्थ है? आपको आश्चर्य हो सकता है कि क्यों संविधान में यह लिखने की ज़रूरत पड़ी कि मतगणना कैसे होगी और प्रतिनिधि कैसे चुने जायेंगे। क्या यह स्वयं ही स्पष्ट नहीं? लोग जाते हैं और वोट देते हैं। जिस प्रत्याशी को अधिकतम वोट मिलते हैं, वह चुना जाता है। पूरे विश्व में ऐसे ही चुनाव होता है। हमें इसके बारे में क्यों सोचना चाहिये?

हमें इसलिए सोचना चाहिये क्योंकि यह प्रश्न उतना सरल नहीं जितना हमें लगता है। हम अपनी चुनाव व्यवस्था में ही इतना लीन हैं कि हमें लगता है कि कोई और तरीका हो ही नहीं सकता। लोकतांत्रिक चुनाव में जनता वोट देती है और उसकी इच्छा ही यह तय करती है कि कौन चुनाव जीतेगा। लेकिन लोगों के द्वारा अपनी रुचि को व्यक्त करने के अनेक तरीके हो सकते हैं और उनकी पसंद की गणना करने की भी बहुत सारी विधियाँ हो सकती हैं। खेल के इन अलग-अलग नियमों से इस बात का फ़ैसला बदल सकता है कि जीत किसकी होगी। कुछ नियम ऐसे हैं जिनमें बड़े दलों को लाभ पहुँचता है; कुछ नियमों से छोटे खिलाड़ियों (दलों) को मदद मिलती है। कुछ नियम बहुसंख्यक समुदाय के हित में जाते हैं, तो अन्य अल्पसंख्यकों को संरक्षण देते हैं। आइये हम एक नाटकीय उदाहरण से समझें कि ऐसा कैसे होता है।

© NCERT not to be republished

खुद करें—खुद सीखें

अपनी कक्षा में चुनाव सम्पन्न कर चार कक्षा-प्रतिनिधियों को चुनें। चुनाव निम्न तीन अलग-अलग तरीकों से करें :

- प्रत्येक छात्र एक वोट दे सकता है। जिन चार छात्रों को सबसे अधिक वोट मिले उन्हें चुना जाय।
- प्रत्येक छात्र के पास चार वोट हैं, जिसे वे चाहें तो एक ही प्रत्याशी को दे दें या उसे अन्य प्रत्याशियों में बाँट दें। जिन चार छात्रों को सबसे अधिक वोट मिले उन्हें चुना जाय।
- प्रत्येक छात्र विभिन्न प्रत्याशियों को वरीयता क्रम में वोट दे और गणना की विधि वह हो जो राज्यसभा सदस्यों के निर्वाचन में प्रयोग की जाती है (इस विधि का आगे वर्णन किया गया है)।

क्या इन सभी तरीकों से चुनाव कराने पर वही चार लोग चुनाव जीते ? यदि नहीं, तो क्या फर्क पड़ा ? और क्यों?

'जो सबसे आगे वही जीते'

इस अखबार की कतरन को देखिये।

यह भारतीय लोकतंत्र के एक ऐतिहासिक क्षण के बारे में है। 1984 के लोक सभा चुनाव में काँग्रेस पार्टी ने 543 में से 415 सीटें जीतीं—जो कुल सीटों के 80 प्रतिशत से भी अधिक है। लोक सभा चुनावों में किसी दल को ऐसी सफलता कभी नहीं मिली। इस चुनाव से क्या पता चलता है?

नवभारत टाइम्स

रविवारीय संस्करण

पहली बार कांग्रेस को तीन-चौथाई बहुमत

हेगड़े सरकार का इस्तीफा

50 प्रतिशत से भी कम वोट और 80 प्रतिशत से अधिक सीटें ! क्या यह ठीक है? हमारे संविधान निर्माताओं ने ऐसी गड़बड़ व्यवस्था को कैसे स्वीकार किया?

काँग्रेस पार्टी को तीन-चौथाई सीटें मिलीं। क्या इसका यह अर्थ है कि प्रत्येक पाँच भारतीय नागरिकों में से चार ने काँग्रेस को वोट दिया ? वास्तव में नहीं। नीचे दी गयी तालिका को देखें। काँग्रेस पार्टी को 48 प्रतिशत वोट मिले। इसका अर्थ यह हुआ कि कुल मिलाकर जितने लोगों ने मतदान किया उसमें केवल 48 प्रतिशत लोगों ने काँग्रेस को वोट दिया, लेकिन पार्टी को 80 प्रतिशत से भी अधिक सीटें मिलीं। अन्य दलों के प्रदर्शन को देखें। भाजपा को 7.4 प्रतिशत वोट मिले लेकिन एक प्रतिशत से कम सीटें मिली। ऐसा कैसे हुआ ?

ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि हम अपने देश में चुनाव की एक विशेष विधि का पालन करते हैं। इस व्यवस्था में –

1984 के लोकसभा चुनाव में प्रमुख दलों द्वारा प्राप्त वोट और सीटें

पार्टी	वोट (%)	सीट
काँग्रेस	48.0	415
भाजपा	7.4	2
जनता पार्टी	6.7	10
लोकदल	5.7	3
माकपा	5.7	22
तेलगु देशम	4.1	30
द्रमुक	2.3	2
अन्नाद्रमुक	1.6	12
अकाली दल	1.0	7
असम गण परिषद्	1.0	7

- पूरे देश को 543 निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया गया है;
- प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाता है; और
- उस निर्वाचन क्षेत्र में जिस प्रत्याशी को सबसे अधिक वोट मिलते हैं उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है।

यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि इस व्यवस्था में जिस प्रत्याशी को अन्य सभी प्रत्याशियों से अधिक वोट मिल जाते हैं उसे ही निर्वाचित घोषित कर

© NCERT not to be republished

दिया जाता है। विजयी प्रत्याशी के लिए यह ज़रूरी नहीं कि उसे कुल मतों का बहुमत मिले। इस विधि को 'जो सबसे आगे वही जीते' प्रणाली (फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट सिस्टम) कहते हैं। चुनावी दौड़ में जो प्रत्याशी अन्य प्रत्याशियों के मुकाबले सबसे आगे निकल जाता है वही विजयी होता है। इसे बहुलवादी व्यवस्था भी कहते हैं। संविधान इसी विधि को स्वीकार करता है।

आइये अपने उदाहरण की ओर लौटें। काँग्रेस पार्टी को प्राप्त मतों के अनुपात से ज़्यादा सीटें इसलिए मिलीं क्योंकि अनेक निर्वाचन क्षेत्रों में जहाँ उसके प्रत्याशी जीते उन्हें 50 प्रतिशत से कम वोट मिले। यदि चुनाव मैदान में कई प्रत्याशी हों तो जीतने वाले प्रत्याशी को प्राय: 50 प्रतिशत से कम वोट मिलते हैं। सभी हारने वाले प्रत्याशियों के वोट बेकार चले जाते हैं क्योंकि इन वोटों के आधार पर उन प्रत्याशियों या दलों को कोई सीट नहीं मिलती। मान लीजिये कि किसी पार्टी को प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में 25 प्रतिशत वोट मिलते हैं लेकिन अन्य प्रत्याशियों को उससे भी कम वोट मिलते हैं। उस स्थिति में केवल 25 प्रतिशत या उससे भी कम वोट पा कर कोई दल सभी सीटें जीत सकता है।

समानुपातिक प्रतिनिधित्व

आइये इसकी तुलना इज़राइल में होने वाले चुनावों से करें जहाँ एक बिलकुल भिन्न चुनाव व्यवस्था का पालन किया जाता है। इज़राइल में मतगणना के बाद, प्रत्येक पार्टी को संसद में उसी अनुपात में सीटें दे दी जाती हैं जिस अनुपात में उन्हें वोटों में हिस्सा मिलता है (आगे बॉक्स देखें)। प्रत्येक पार्टी चुनावों से पहले अपने प्रत्याशियों की एक प्राथमिकता सूची जारी कर देती है और अपने उतने ही प्रत्याशियों को उस प्राथमिकता सूची से चुन लेती है जितनी सीटों का कोटा उसे दिया जाता है। चुनावों की इस व्यवस्था को 'समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली' कहते हैं। इस प्रणाली में किसी पार्टी को उतनी ही प्रतिशत सीटें मिलती हैं जितने प्रतिशत उसे वोट मिलते हैं।

समानुपातिक प्रतिनिधित्व के दो प्रकार होते हैं। कुछ देशों जैसे इज़राइल या नीदरलैंड में पूरे देश को एक निर्वाचन क्षेत्र माना जाता है और प्रत्येक पार्टी को राष्ट्रीय चुनावों में प्राप्त वोटों के अनुपात में सीटें दे दी जाती हैं। दूसरा तरीका अर्जेंटीना व पुर्तगाल में देखने को मिलता है जहाँ पूरे देश को बहु-सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक पार्टी प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए अपने प्रत्याशियों की एक सूची जारी करती है

यह तो बड़ा भ्रम पैदा करने वाला है। इस व्यवस्था में हमें कैसे पता चलेगा कि हमारा सांसद या विधायक कौन है? यदि मुझे कोई काम कराना है, तो मैं किसके पास जाऊँगा?

© NCERT not to be republished

जिसमें उतने ही नाम होते हैं जितने प्रत्याशियों को उस निर्वाचन क्षेत्र से चुना जाना होता है। इन दोनों ही रूपों में मतदाता राजनीतिक दलों को वोट देते हैं न कि उनके प्रत्याशियों को। एक पार्टी को किसी निर्वाचन क्षेत्र में जितने मत प्राप्त होते हैं उसी आधार पर उसे उस निर्वाचन क्षेत्र में सीटें दे दी जाती हैं। अत: किसी निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधि वास्तव में राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि होते हैं। भारत में हमने समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को केवल अप्रत्यक्ष चुनावों के लिए ही सीमित रूप में अपनाया है।

इज़राइल में समानुपातिक प्रतिनिधित्व

इज़राइल में चुनावों के लिए समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अपनाई गई है। वहाँ विधायिका (नेसेट) के चुनाव प्रत्येक चार वर्ष पर होते हैं। प्रत्येक पार्टी अपने प्रत्याशियों की एक सूची जारी करती है लेकिन मतदाता प्रत्याशियों को नहीं वरन् पार्टियों को वोट देते हैं। प्रत्येक पार्टी को प्राप्त वोटों के अनुपात में ही विधायिका में सीटें मिलती हैं। इससे सीमित जनाधार वाली छोटी पार्टियों को भी विधायिका में कुछ प्रतिनिधित्व मिल जाता है (शर्त यह है कि विधायिका में सीट पाने के लिए न्यूनतम 3.25 प्रतिशत वोट मिलने चाहिये)। इससे प्राय: बहुदलीय गठबंधन सरकारें बनती हैं।

निम्नलिखित सारणी में 2015 के नेसेट के चुनाव-परिणाम दिये गये हैं। इसके आधार पर आप यह पता लगा सकते हैं कि विभिन्न पार्टियों को कितने प्रतिशत सीट मिलीं ।

पार्टी का नाम	कुल मतों का प्रतिशत	सीट	कुल सीटों का प्रतिशत
लिकुड	23.40	30	
ज़ियोनिस्ट शिविर	18.67	24	
संयुक्त सूची (हदाश, राष्ट्रीय लोकतांत्रिक सभा, नवीनीकरण के लिए अरब आंदोलन, संयुक्त अरब सूची)	10.61	13	
येश ऐटिड	8.82	11	
कुलानु	7.49	10	
हबायित हयेहुदी	6.74	8	
शास	5.74	7	
इज़राइल बीइटेनु	5.10	6	
यु टी जे	4.99	6	
इज़राइल का वामपक्ष	3.93	5	
अन्य दल	4.51	0	
कुल सीटें	100	120	

© NCERT not to be republished

हमारा संविधान राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्य सभा और विधान परिषदों के चुनावों के लिए समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का एक तीसरा और जटिल स्वरूप प्रस्तावित करता है।

भारत में 'सर्वाधिक वोट से जीत की' प्रणाली क्यों स्वीकार की गई?

'सर्वाधिक वोट पाने वाले की जीत' और 'समानुपातिक प्रतिनिधित्व' चुनाव व्यवस्था की तुलना

सर्वाधिक वोट पाने वाले की जीत	समानुपातिक प्रतिनिधित्व
पूरे देश को छोटी-छोटी भौगोलिक इकाइयों में बाँट देते हैं जिसे निर्वाचन क्षेत्र या जिला कहते हैं?	किसी बड़े भौगोलिक क्षेत्र को एक निर्वाचन क्षेत्र मान लिया जाता है। पूरा का पूरा देश एक निर्वाचन क्षेत्र गिना जा सकता है।
हर निर्वाचन क्षेत्र से केवल एक प्रतिनिधि चुना जाता है।	एक निर्वाचन क्षेत्र से कई प्रतिनिधि चुने जा सकते हैं।
मतदाता प्रत्याशी को वोट देता है।	मतदाता पार्टी को वोट देता है।
पार्टी को प्राप्त वोटों के अनुपात से अधिक या कम सीटें विधायिका में मिल सकती हैं।	हर पार्टी को प्राप्त मत के अनुपात में विधायिका में सीटें हासिल होती हैं।
विजयी उम्मीदवार को ज़रूरी नहीं कि वोटों का बहुमत (50%+1) मिले	विजयी उम्मीदवार को वोटों का बहुमत हासिल होता है।
उदाहरण – यूनाइटेड किंगडम और भारत	जैसे कि इज़राइल और नीदरलैंड

© NCERT not to be republished

राज्य सभा के चुनावों में समानुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली

समानुपातिक प्रतिनिधित्व का एक तीसरा स्वरूप हमें भारत में राज्य सभा चुनावों में देखने को मिलता है : इसे 'एकल संक्रमणीय मत प्रणाली' कहते हैं। प्रत्येक राज्य को राज्य सभा में सीटों का निश्चित कोटा प्राप्त है। राज्यों की विधान सभा के सदस्यों द्वारा इन सीटों के लिए चुनाव किया जाता है। इसमें राज्य के विधायक ही मतदाता होते हैं। मतदाता चुनाव में खड़े सभी प्रत्याशियों को अपनी पसंद के अनुसार एक वरीयता क्रम में मत देता है। जीतने के लिए किसी प्रत्याशी को मतों का एक कोटा प्राप्त करना पड़ता है। जो निम्नलिखित फार्मूले के आधार पर निकाला जाता है।

$$\left(\frac{\text{कुल मतदान}}{\text{कुल विजयी उम्मीदवार}+1}\right)+1$$

उदाहरण के लिए यदि राजस्थान के 200 विधायकों को राज्य सभा के लिए चार सदस्य चुनना है तो विजयी उम्मीदवार को $\left(\frac{200}{4+1}\right)+1 \Rightarrow \frac{200}{5}+1 \Rightarrow 40+1 \Rightarrow 41$ वोटों की ज़रूरत पड़ेगी।

जब मतगणना होती है तब उम्मीदवारों को प्राप्त 'प्रथम वरीयता' वोट गिना जाता है। प्रथम वरीयता वोटों की गणना के बाद, यदि प्रत्याशियों की वांछित संख्या वोटों का कोटा नहीं प्राप्त कर पाती तो पुनः मतगणना की जाती है। ऐसे उस प्रत्याशी को मतगणना से निकाल दिया जाता है जिसे प्रथम वरीयता वाले सबसे कम वोट मिले हों। उसके वोटों को अन्य प्रत्याशियों में बाँट दिया जाता है; ऐसा करने में प्रत्येक मत पत्र पर अंकित द्वितीय वरीयता वाले प्रत्याशी को वह मत हस्तांतरित कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया को तब तक जारी रखा जाता है जब तक वांछित संख्या (4) के बराबर प्रत्याशियों को विजयी घोषित नहीं कर दिया जाता।

इस प्रश्न के उत्तर का अनुमान लगाना बहुत कठिन नहीं है। यदि आपने ऊपर बॉक्स में राज्य सभा के चुनाव प्रक्रिया के बारे में पढ़ा होगा, तो आपकी समझ में आ गया होगा कि यह प्रक्रिया काफी जटिल है जो किसी छोटे देश में तो लागू हो सकती है पर उपमहाद्वीप जैसे विशाल देश भारत में नहीं। सर्वाधिक वोट से जीत वाली व्यवस्था की सफलता इसकी लोकप्रियता का कारण है। उन सामान्य मतदाताओं के लिए जिन्हें राजनीति और चुनाव का विशेष ज्ञान नहीं है, इस पूरी चुनाव व्यवस्था को समझना अत्यंत सरल है। इसके अतिरिक्त चुनाव के समय मतदाताओं के पास स्पष्ट विकल्प होते हैं। मतदाताओं को वोट करते समय किसी प्रत्याशी या दल को केवल स्वीकृति

प्रदान करना होता है। राजनीति की वास्तविकता को ध्यान में रखकर मतदाता किसी प्रत्याशी को भी वरीयता दे सकता है और किसी दल को भी। वह चाहे तो इन दोनों में, मतदान के समय, संतुलन बनाने की कोशिश भी कर सकता है। यह प्रणाली मतदाताओं को केवल दलों में ही नहीं वरन् उम्मीदवारों में भी चयन का स्पष्ट विकल्प देती है। अन्य चुनावी व्यवस्थाओं में खासतौर से समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में, मतदाताओं को किसी एक दल को चुनने का विकल्प दिया जाता है लेकिन प्रत्याशियों का चयन पार्टी द्वारा जारी की गयी सूची के अनुसार होता है। इस प्रकार, किसी क्षेत्र विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाला और उसके प्रति उत्तरदायी, कोई एक प्रतिनिधि नहीं होता। लेकिन सर्वाधिक वोट से जीत वाली व्यवस्था पर आधारित निर्वाचन क्षेत्रों में मतदाता जानते हैं कि उनका प्रतिनिधि कौन है और उसे उत्तरदायी ठहरा सकते हैं।

कार्टून बूझें

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

29 मई 1949

इस कार्टून में भीमकाय काँग्रेस के आगे विपक्ष एक बौने के रूप में दिखाया गया है। क्या यह हमारे निर्वाचन प्रणाली का परिणाम था?

लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि संविधान निर्माता समझते थे कि समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली पर आधारित चुनाव संसदीय प्रणाली में सरकार के स्थायित्व के लिए उपयुक्त नहीं होंगे। अगले अध्याय में हम संसदीय प्रणाली की प्रकृति के बारे में पढ़ेंगे। इस व्यवस्था की माँग है कि कार्यपालिका को विधायिका में बहुमत प्राप्त हो। आप देखेंगे कि समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से स्पष्ट बहुमत मिलने में कठिनाई होगी क्योंकि मतों के प्रतिशत के अनुपात में विधायिका में सीटें बँट जायेंगी। सर्वाधिक

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

नीचे 2016 में तमिलनाडु विधान सभा चुनाव के परिणाम दिये गये हैं।

- विधान सभा की संरचना कैसी होती यदि वहाँ इज़राइल की तरह समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली होती?
- किस पार्टी का बहुमत होगा?
- कौन सरकार बनायेगा?
- इस व्यवस्था का राजनीतिक दलों के संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

कुल सीटें 234 (232 पर चुनाव हुए)			
पार्टी	वोट	सीट	समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में सीट
ए आई ए डी एम के	40.77	135	
डी एम के	31.64	88	
आई एन सी	6.42	8	
पी एम के	5.32	0	
बी जे पी	2.84	0	
डी एम डी के	2.39	0	
सी पी आई	0.79	0	
आई यू एम एल	0.73	1	
अन्य दल	6.37	0	
निर्दलीय	1.43	0	
नोटा	1.30	–	

मत से जीत वाली प्रणाली में अमूमन बड़े दलों या गठबंधनों को बोनस के रूप में कुछ अतिरिक्त सीटें मिल जाती हैं। ये सीटें उन्हें प्राप्त मतों के अनुपात से अधिक होती हैं। अतः यह प्रणाली एक स्थायी सरकार बनाने का मार्ग प्रशस्त कर संसदीय सरकार को सुचारू और प्रभावी ढंग से काम करने का अवसर देती है। अंत में, सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली एक निर्वाचन क्षेत्र में विभिन्न सामाजिक वर्गों को एकजुट होकर चुनाव जीतने में मदद करती है। भारत जैसे विविधताओं वाले देश में, समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली प्रत्येक समुदाय को अपनी एक राष्ट्रव्यापी पार्टी बनाने को प्रेरित करेगी। संभवतः यह बात भी हमारे संविधान बनाने वालों के दिमाग में रही होगी।

संविधान का अब तक का कामकाज संविधान-निर्माताओं की अपेक्षाओं को प्रमाणित करता है। संविधान निर्माताओं की उम्मीदों को संविधान की कार्यप्रणाली से प्राप्त

© NCERT not to be republished

अनुभव प्रमाणित करता है। सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली आम मतदाता के लिए सरल और सुपरिचित सिद्ध हुई है। इसने केंद्र और राज्यों में बड़े दलों को स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने में मदद की है। इस प्रणाली ने उन दलों को भी हतोत्साहित किया है जो किसी एक जाति या समुदाय से ही अपने सभी वोट प्राप्त करते हैं। समान्यत: सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली से द्विदलीय व्यवस्था उभरती है। इसका मतलब है कि सत्ता के लिए दो प्रमुख प्रतियोगी हैं और यही दोनों बारी-बारी से सत्ता प्राप्त करते हैं। नये दलों या किसी तीसरी पार्टी को इस प्रतियोगिता में सम्मिलित होने और सत्ता प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इस संदर्भ में भारत में इस प्रणाली का अनुभव कुछ अलग है। स्वतंत्रता के बाद, यद्यपि हमने सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली अपनायी, फिर भी एक दल का वर्चस्व उभर कर सामने आया इसके साथ-साथ अनेक छोटे दल भी अस्तित्व में रहे। 1989 के बाद, भारत में बहुदलीय-गठबंधनों की कार्यप्रणाली को देखा जा सकता है। इसी के साथ, अनेक राज्यों में धीरे-धीरे द्वि-दलीय प्रतियोगिता उभर रही है। लेकिन भारतीय दलीय प्रणाली की प्रमुख विशेषता यह है कि गठबंधन सरकारों के आने से नये और छोटे दलों को सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली के बावजूद चुनावी प्रतियोगिता में प्रवेश करने का मौका मिला है।

निर्वाचन क्षेत्रों का आरक्षण

हमने पहले पढ़ा कि सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली में किसी निर्वाचन क्षेत्र में जिस किसी उम्मीदवार को सबसे अधिक वोट मिल जाता है उसे ही चुना हुआ घोषित कर दिया जाता है। इससे छोटे-छोटे सामाजिक समूहों का अहित हो जाता है। यह भारतीय सामाजिक परिवेश में और अधिक महत्त्वपूर्ण है। हमारे यहाँ जाति आधारित भेदभाव का इतिहास रहा है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में, सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली का परिणाम यह होगा कि दबंग सामाजिक समूह और जातियाँ हर जगह जीत जायेंगी और दलित-उत्पीड़ित सामाजिक समूहों को कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो पायेगा। हमारे संविधान निर्माता इस कठिनाई से वाकिफ़ थे और ऐसे दलित-उत्पीड़ित

> पृथक निर्वाचन मंडल की व्यवस्था भारत के लिए अभिशाप रही है, इसने देश की अपूरणीय क्षति की है। ... पृथक निर्वाचन मंडल ने हमारी प्रगति को रोक दिया है। ... हम (मुसलमान) राष्ट्र में मिल जाना चाहते हैं ... खुदा के वास्ते मुस्लिम समुदाय के लिए किसी प्रकार के आरक्षण पर विचार न करें ...
>
> तजम्मुल हुसैन
> संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड VIII, पृष्ठ 333, 26 मई 1949

© NCERT not to be republished

सामाजिक समूहों के लिए उचित और न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की आवश्यकता समझते थे।

स्वतंत्रता के पूर्व भी इस विषय पर बहस हुई थी और ब्रिटिश सरकार ने 'पृथक-निर्वाचन मंडल' की शुरूआत की थी। इसका अर्थ यह था कि किसी समुदाय के प्रतिनिधि के चुनाव में केवल उसी समुदाय के लोग वोट डाल सकेंगे। संविधान सभा के अनेक सदस्यों को इस पर शंका थी। उनका विचार था कि यह व्यवस्था हमारे उद्देश्यों को पूरा नहीं करेगी। इसलिए, आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था को अपनाया गया। इस व्यवस्था के अंतर्गत, किसी निर्वाचन क्षेत्र में सभी मतदाता वोट तो डालेंगे लेकिन प्रत्याशी केवल उसी समुदाय या सामाजिक वर्ग का होगा जिसके लिए वह सीट आरक्षित है।

अनेक ऐसे सामाजिक समूह हैं जो पूरे देश में फैले हुए हैं। किसी एक निर्वाचन क्षेत्र में उनकी इतनी संख्या नहीं होती कि वे किसी प्रत्याशी की जीत को प्रभावित कर सकें। लेकिन पूरे देश पर नज़र डालने पर वे अच्छे खासे बड़े समूह के रूप में दिखाई देते हैं। उन्हें समुचित प्रतिनिधित्व देने के लिए आरक्षण की व्यवस्था ज़रूरी हो जाती है। संविधान अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए लोक सभा और राज्य की विधान सभाओं में आरक्षण की व्यवस्था करता है। प्रारंभ में यह व्यवस्था 10 वर्ष के लिए की गई थी पर अनेक संवैधानिक संशोधनों द्वारा इसे बढ़ा कर 2030 तक कर दिया गया है। आरक्षण की अवधि खत्म होने पर संसद इसे और आगे बढ़ाने का निर्णय ले सकती है। इन दोनों समूहों की आरक्षित सीटों का वही अनुपात है जो भारत की जनसंख्या में इनका अनुपात है। लोकसभा की 543 निर्वाचित सीटों में 84 अनुसूचित जाति और 47 अनुसूचित

··· लेकिन मैं भारत के आदिवासियों की ओर से कुछ कहना चाहता हूँ। ··· ब्रिटिश सरकार, प्रमुख राजनैतिक दलों और हर प्रबुद्ध भारतीय नागरिक को धन्यवाद कि उनके ही कारण हमें अब तक ऐसे अलग-थलग करके रखा गया था। जैसे किसी को चिड़ियाघर में रखा जाता है। ··· हम आपके साथ घुलने-मिलने को तैयार हैं और इसी कारण ··· हमने व्यवस्थापिकाओं में सीटों के आरक्षण की माँग पर ज़ोर दिया है। ··· हमने पृथक प्रतिनिधित्व की माँग नहीं की है। ··· 1935 के अधिनियम के अंतर्गत, पूरे भारत की सभी विधान सभाओं में 1585 में कुल 24 विधायक आदिवासी थे, ··· और केंद्र में तो एक भी नहीं था।

जयपाल सिंह
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड V, पृष्ठ 226, 27 अगस्त 1947

© NCERT not to be republished

जनजाति (26 जनवरी 2019 की स्थिति) के लिए आरक्षित हैं।

कौन से निर्वाचन क्षेत्र आरक्षित होंगे, यह कौन तय करता है? किस आधार पर यह निर्णय लिया जाता है? यह निर्णय एक स्वतंत्र संस्था द्वारा लिया जाता है जिसे परिसीमन आयोग कहते हैं। राष्ट्रपति परिसीमन आयोग का गठन करते हैं। यह चुनाव आयोग के साथ मिल कर काम करता है। इसका गठन पूरे देश में निर्वाचन क्षेत्रों की सीमा खींचने के उद्देश्य से किया जाता है। प्रत्येक राज्य में आरक्षण के लिए निर्वाचन क्षेत्रों का एक कोटा होता है जो उस राज्य में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की संख्या के अनुपात में होता है। परिसीमन के बाद, परिसीमन आयोग प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में जनसंख्या की संरचना देखता है। जिन निर्वाचन क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या सबसे ज़्यादा होती है उसे उनके लिए आरक्षित कर दिया जाता है। अनुसूचित जातियों के मामले में, परिसीमन आयोग दो बातों पर ध्यान देता है। आयोग उन निर्वाचन क्षेत्रों को चुनता है जिसमें अनुसूचित जातियों का अनुपात ज़्यादा होता है। लेकिन वह इन निर्वाचन क्षेत्रों को राज्य के विभिन्न भागों में फैला भी देता है। ऐसा इसलिए कि अनुसूचित जातियों का पूरे देश में विखराव समरूप है। जब कभी भी परिसीमन का काम होता है, इन आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों में कुछ परिवर्तन कर दिया जाता है। संविधान अन्य उपेक्षित या कमज़ोर वर्गों के लिए इस प्रकार के आरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं करता। इधर, लोकसभा और राज्यों की विधान सभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण की ज़ोरदार माँग उठी है। यह देखते हुए कि प्रतिनिधि संस्थाओं के लिए बहुत कम महिलाएँ चुनी जाती हैं, महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटें आरक्षित करने की मांग कई वर्षों से की जा रही थी। ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों के लिए महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण पहले ही प्रदान किया जा चुका है। इसे हम स्थानीय सरकार वाले अध्याय में पढ़ेंगे। लोकसभा और विधानसभा के लिये इसी तरह का प्रावधान नारी शक्ति वंदन अधिनियम (महिला आरक्षण अधिनियम, 2023) के माध्यम से किया गया है।

स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव

किसी भी चुनाव प्रणाली की कसौटी यह है कि वह एक स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव प्रक्रिया सुनिश्चित कर सके। यदि हम लोकतंत्र को एक जमीनी हकीकत बनाना चाहते हैं, तो यह ज़रूरी है कि चुनाव प्रणाली निष्पक्ष और पारदर्शी हो। चुनाव प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिससे मतदाताओं की आकांक्षाएँ चुनाव परिणामों में न्यायपूर्ण ढंग से व्यक्त हो सकें।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

भारत की आबादी में मुसलमान 14.2 प्रतिशत हैं। लेकिन लोक सभा में मुसलमान सांसदों की संख्या सामान्यतः 6 प्रतिशत से थोड़ा कम रही है जो जनसंख्या में उनके अनुपात के आधे से भी कम है। यही स्थिति अधिकतर राज्य विधान सभाओं में भी है।

तीन छात्रों ने इन तथ्यों से तीन अलग-अलग निष्कर्ष निकाले। आप बतायें कि आप उनसे सहमत हैं या असहमत और क्यों?

हिलाल – यह सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली के अन्याय होने को दिखाता है। हमें समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अपनानी चाहिये थी।

आरिफ – यह अनुसूचित जातियों और जनजातियों को आरक्षण देने के औचित्य को बताता है। आवश्यकता इस बात की है कि मुसलमानों को भी उसी तरह का आरक्षण दिया जाय, जैसा अनुसूचित जातियों और जनजातियों को दिया गया।

सबा – सभी मुसलमानों को एक जैसा मानकर बात करने का कोई मतलब नहीं है। मुसलमान महिलाओं को इसमें कुछ भी नहीं मिलेगा। हमें मुसलमान महिलाओं के लिए अलग आरक्षण चाहिये।

मैं इतनी समझ रखती हूँ कि भविष्य में अपने करियर को चुन सकूँ और इतनी उम्रदराज़ हूँ कि ड्राइविंग लाइसेंस बना सकूँ, तो क्या मैं इतनी बड़ी नहीं कि वोट डाल सकूँ? यदि ये कानून मुझपर लागू होते हैं, तो मैं इन कानूनों को बनाने वाले के बारे में फ़ैसला क्यों नहीं ले सकती?

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और चुनाव लड़ने का अधिकार

चुनाव का तरीका निर्धारित करने के अतिरिक्त संविधान चुनावों के बारे में दो अन्य मूल प्रश्नों के उत्तर देता है – मतदाता कौन है और कौन चुनाव लड़ सकता है? इन दोनों बिंदुओं पर हमारा संविधान पूर्ण रूप से स्थापित लोकतांत्रिक परंपराओं का पालन करता है।

आप जानते हैं कि लोकतांत्रिक चुनावों में देश के सभी वयस्क नागरिकों को चुनाव में वोट देने का अधिकार होना ज़रूरी है। इसी को सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के नाम से जानते हैं। अनेक देशों में नागरिकों को इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए अपने शासकों से बहुत लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी। बहुत से देशों में तो महिलाओं को यह अधिकार काफी देर से और बड़े संघर्ष के बाद मिला। भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक महत्वपूर्ण निर्णय के द्वारा प्रत्येक वयस्क भारतीय नागरिक को वोट देने का अधिकार प्रदान किया।

1989 तक, 21 वर्ष से ऊपर के भारतीय नागरिकों को वयस्क भारतीय माना जाता था। 1989 में संविधान के एक संशोधन के द्वारा इसे घटा कर 18 वर्ष कर दिया गया। वयस्क मताधिकार सभी नागरिकों को अपने प्रतिनिधियों की चयन प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्रदान करता है। यह समानता और गैर-भेदभाव के सिद्धांत के अनुरूप है, जिसका अध्ययन हमने अधिकारों वाले अध्याय में किया है। अनेक लोग पहले और आज भी ऐसा मानते हैं कि बिना शैक्षणिक योग्यता के सभी को वोट देने का अधिकार देना सही निर्णय नहीं था। लेकिन हमारे संविधान निर्माताओं को सभी नागरिकों की योग्यता और महत्त्व में समान रूप से विश्वास था कि वे समाज, देश और अपने निर्वाचन क्षेत्र के हित में निर्णय ले सकते हैं।

जो वोट देने के अधिकार के बारे में सच है, वही चुनाव लड़ने के अधिकार के बारे में भी सच है। सभी नागरिकों को चुनाव में खड़े होने और जनता का प्रतिनिधि होने का अधिकार है। लेकिन विभिन्न पदों पर चुनाव लड़ने की न्यूनतम आयु अर्हता भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरण के लिए लोक सभा या विधान सभा चुनाव में खड़े होने के लिए उम्मीदवार को कम से कम 25 वर्ष का होना चाहिए। कुछ और भी प्रतिबंध हैं। जैसे एक कानूनी प्रतिबंध यह है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए दो या दो से अधिक वर्षों के लिए जेल हुई हो, तो वह चुनाव लड़ने के योग्य नहीं है। लेकिन चुनाव लड़ने के लिए आय, शिक्षा, वर्ग या लिंग के आधार पर कोई प्रतिबंध नहीं है। इस रूप में, हमारी चुनाव व्यवस्था सभी नागरिकों के लिए खुली हुई है।

कार्टून बूझें

21 अक्तूबर 1951

शंकर, ©, चिल्ड्रेंस बुक ट्रस्ट

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार को हाथी के रूप में क्यों दिखाया गया है। क्या यह संभालने योग्य नहीं है? या यह उस कहानी की तरह है जिसमें कई अंधे हाथी के अलग-अलग अंगों के आधार पर उसे बताने की कोशिश करते हैं?

© NCERT not to be republished

स्वतंत्र निर्वाचन आयोग

भारत में चुनाव प्रक्रिया को स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाने के लिए कई प्रयास किए गए हैं। एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कदम है, जो चुनावों के संचालन और देख-रेख के लिए बनाया गया है। क्या आप जानते हैं कि अनेक देशों में चुनाव कराने के लिए किसी स्वतंत्र मशीनरी का अभाव है।

अनुच्छेद 324(1) – ''इस संविधान के अधीन संसद और प्रत्येक राज्य के विधान मंडल के लिए कराये जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार कराने का और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण एक आयोग में निहित होगा (जिसे इस संविधान में निर्वाचन आयोग कहा गया है)।''

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 324 'निर्वाचनों के लिए मतदाता सूची तैयार कराने और चुनाव के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण' का अधिकार एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग को देता है। संविधान के ये शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि ये निर्वाचन आयोग को चुनावों से संबंधित हर बात पर अंतिम निर्णय करने की भूमिका सौंपते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने भी संविधान की इस व्याख्या से सहमति व्यक्त की है।

भारत के निर्वाचन आयोग की सहायता करने के लिए प्रत्येक राज्य में एक मुख्य निर्वाचन अधिकारी होता है। निर्वाचन आयोग स्थानीय निकायों के चुनाव के लिए ज़िम्मेदार नहीं होता। जैसा कि हम स्थानीय सरकारों वाले अध्याय में पढ़ेंगे, इसके लिए राज्यों में राज्य निर्वाचन आयुक्त होते हैं, जो निर्वाचन आयोग से अलग कार्य करते हैं और इनमें से प्रत्येक का काम करने का अपना अलग दायरा है।

भारत का निर्वाचन आयोग एक सदस्यीय या बहु-सदस्यीय भी हो सकता है। 1989 तक, निर्वाचन आयोग एक-सदस्यीय था। 1989 के आम चुनावों के ठीक पहले, दो अन्य निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त कर इसे बहु-सदस्यीय बना दिया गया। चुनावों के बाद उसे फिर एक सदस्यीय बना दिया गया। 1993 में पुनः दो निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति हुई और निर्वाचन आयोग बहु-सदस्यीय हो गया; तब से यह बहु-सदस्यीय बना हुआ है। शुरू में बहु-सदस्यीय निर्वाचन आयोग को लेकर तरह-तरह की शंकाएँ थीं। मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य आयुक्तों के बीच इस बात पर घोर मतभेद था कि किसको कितनी शक्ति प्राप्त है। इसका समाधान सर्वोच्च न्यायालय को करना पड़ा। अब इस बात पर सामान्य सहमति है कि बहु-सदस्यीय

© NCERT not to be republished

निर्वाचन आयोग ज़्यादा उपयुक्त है क्योंकि इससे आयोग की शक्तियों में साझेदारी हो गई है और आयोग पहले से कहीं ज़्यादा जवाबदेह बन गया है।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग की अध्यक्षता करता है, लेकिन अन्य दोनों निर्वाचन आयुक्तों की तुलना में उसे ज़्यादा शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। एक सामूहिक संस्था के रूप में चुनाव संबंधी सभी निर्णय में मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य दोनों निर्वाचन आयुक्तों की शक्तियाँ समान हैं। उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर की जाती है। ऐसे में संभव है कि सरकार के द्वारा किसी ऐसे हितैषी की नियुक्ति निर्वाचन आयोग में कर दी जाए जो चुनावों में सरकार का समर्थन करे। इस शंका के चलते अनेक लोगों ने इस प्रक्रिया को बदलने का सुझाव दिया है। उनका सुझाव है कि इसके लिए एक भिन्न प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिये, जिसमें मुख्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति में विपक्ष के नेता और भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करना ज़रूरी होना चाहिए।

संविधान मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्तों के कार्यकाल की सुरक्षा देता है। उन्हें 6 वर्षों के लिए अथवा 65 वर्ष की आयु तक (जो पहले खत्म हो) के लिए नियुक्त किया जाता है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को कार्यकाल समाप्त होने के पूर्व राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है; पर इसके लिए संसद के दोनों सदनों को विशेष बहुमत से

क्या अब यह व्यवस्था स्थायी हो गई है या सरकार एक सदस्यीय निर्वाचन आयोग को दुबारा कायम कर सकती है? क्या संविधान इस खेल की आज्ञा देता है?

विशेष बहुमत

विशेष बहुमत का अर्थ है –

- उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत; और
- सदन की कुल सदस्य संख्या का साधारण बहुमत

मान लीजिए कि आपको अपनी कक्षा में विशेष बहुमत से एक प्रस्ताव पास करना है। कल्पना करें कि आप की कक्षा में 75 विद्यार्थी हैं। लेकिन मतदान के दिन केवल 51 विद्यार्थी उपस्थित हैं और उनमें केवल 50 ने ही मतदान में भाग लिया। इस परिस्थिति में आप कब कह सकेंगे कि प्रस्ताव 'विशेष बहुमत' से पास हो गया है?

इस पुस्तक के कम से कम तीन अध्यायों में आपको 'विशेष बहुमत' का उल्लेख मिलेगा। एक तो कार्यपालिका से संबंधित अगले ही अध्याय में है जहाँ राष्ट्रपति पर महाभियोग का उल्लेख किया गया है। अन्य उन दो स्थानों को ढूँढ़ें जहाँ पर विशेष बहुमत की चर्चा की गई है।

© NCERT not to be republished

पारित कर इस आशय का एक प्रतिवेदन राष्ट्रपति को भेजना होगा। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया है कि कोई भी सरकार उस मुख्य निर्वाचन आयुक्त को न हटा सके जो चुनावों में उसकी तरफदारी करने से मना करे। निर्वाचन आयुक्तों को भारत का राष्ट्रपति हटा सकता है।

भारत के निर्वाचन आयोग के पास काफी सारे काम हैं।

- वह मतदाता सूचियों को नया करने के काम की देख-रेख करता है। पूरा प्रयास करता है कि मतदाता सूचियों में गलतियाँ न हो अर्थात् पंजीकृत मतदाताओं के नाम न छूट जाएँ और न ही उसमें ऐसे लागों के नाम हों जो मतदान के अयोग्य हों या जीवित ही न हों।
- वह चुनाव का समय और चुनावों का पूरा कार्यक्रम तय करता है। इस कार्यक्रम में निम्न बातों का उल्लेख होता है – चुनाव की अधिघोषणा, नामांकन प्रक्रिया शुरू करने की तिथि, मतदान की तिथि, मतगणना की तिथि और चुनाव परिणामों की घोषणा।
- इस पूरी प्रक्रिया में, निर्वाचन आयोग को स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए निर्णय लेने का अधिकार है। वह पूरे देश, किसी राज्य या किसी निर्वाचन क्षेत्र में चुनावों को इस आधार पर स्थगित या रद्द कर सकता है कि वहाँ माकूल माहौल नहीं है तथा स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराना संभव नहीं है। निर्वाचन आयोग राजनीतिक दलों और उनके उम्मीदवारों के लिए एक आदर्श आचार संहिता लागू करता है। वह किसी भी निर्वाचन क्षेत्र में दोबारा चुनाव कराने की आज्ञा दे सकता है। यदि उसे लगे कि मतगणना प्रक्रिया पूरी तरह से उचित और न्यायपूर्ण नहीं थी तो वह दोबारा मतगणना कराने की भी आज्ञा दे सकता है।
- निर्वाचन आयोग राजनीतिक दलों को मान्यता देता है और उन्हें चुनाव चिह्न आबंटित करता है।

निर्वाचन आयोग के पास बहुत ही सीमित कर्मचारी होते हैं। वह प्रशासनिक मशीनरी की मदद से चुनाव कराता है। लेकिन एक बार चुनाव प्रक्रिया शुरू हो जाने पर चुनाव संबंधी कार्यों के संबंध में आयोग का पूरी प्रशासनिक मशीनरी पर नियंत्रण हो जाता है। चुनाव प्रक्रिया के दौरान राज्य और केंद्र सरकार के प्रशासनिक अधिकारियों को चुनाव संबंधी कार्य दिये जाते हैं; और इस संबंध में निर्वाचन आयोग का उन पर पूरा नियंत्रण होता है। निर्वाचन आयोग इन अधिकारियों का तबादला कर सकता है या उनके तबादले को रोक सकता है; अधिकारी निष्पक्ष ढंग से काम करने में विफल रहे तो आयोग उसके विरुद्ध कार्रवाई भी कर सकता है।

विगत वर्षों में, निर्वाचन आयोग एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में उभरा है जिसने चुनाव प्रक्रिया की निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग किया है। उसने चुनाव प्रक्रिया की गरिमा बनाये रखने के लिए निष्पक्ष और न्यायपूर्ण ढंग से काम किया है।

not to be republished © NCERT

निर्वाचन आयोग का इतिहास इस बात का गवाह है कि संस्थाओं की कार्यप्रणाली में प्रत्येक सुधार के लिए कानूनी या संवैधानिक परिवर्तन आवश्यक नहीं। यह आम धारणा है कि 25 वर्ष पहले के मुकाबले आज निर्वाचन आयोग ज़्यादा स्वतंत्र और प्रभावी है। ऐसा इसलिए नहीं कि निर्वाचन आयोग की शक्तियाँ या उसकी संवैधानिक सुरक्षा बढ़ा दी गई है। दरअसल निर्वाचन आयोग ने केवल उन शक्तियों का और प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करना शुरू कर दिया है जो उसे संविधान में पहले से ही प्राप्त थीं।

1951–52 से लोकसभा के 17 चुनाव हो चुके हैं। निर्वाचन आयोग के द्वारा विधान सभाओं के अनेक चुनाव और उप-चुनाव कराये गये। निर्वाचन आयोग को असम, पंजाब तथा जम्मू और कश्मीर जैसे हिंसाग्रस्त क्षेत्रों में चुनाव कराने में अनेक कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। उसे 1991 में पूरी चुनाव प्रक्रिया को बीच में ही रोकना पड़ा क्योंकि चुनाव प्रचार के दौरान पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या कर दी गई। निर्वाचन आयोग को 2002 में एक अन्य गंभीर समस्या का सामना करना पड़ा जब गुजरात विधान सभा भंग कर दी गई और चुनाव कराना पड़ा। लेकिन निर्वाचन आयोग ने पाया कि राज्य में अप्रत्याशित हिंसा के कारण स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराना तुरंत संभव न था। निर्वाचन आयोग ने राज्य में विधान सभा चुनावों को कुछ महीनों के लिए स्थगित करने का निर्णय लिया। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्वाचन आयोग के इस निर्णय को वैध ठहराया।

कार्टून बूझें

सावधान! चुनाव जितना अब मुश्किल काम होने वाला है। अब नई आचार संहिता, सही और स्वच्छ मतदान तथा कड़े अनुशासन जैसी नई मुसीबतों को झेलना पड़ेगा।

आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

नेताजी चुनाव आयोग से डर गये हैं, वे कह रहे हैं कि हमें 'निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव' की चुनौती झेलनी है। नेता चुनाव आयोग से डरते क्यों हैं? क्या यह स्थिति लोकतंत्र के लिए अच्छी है?

चुनाव सुधार

चुनाव की कोई प्रणाली कभी आदर्श नहीं हो सकती। उसमें अनेक कमियाँ और सीमाएँ होती हैं। लोकतांत्रिक समाज को अपने चुनावों को और अधिक स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाने के तरीकों को बराबर खोजते

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

निर्वाचन आयोग को इन शक्तियों और विशेषाधिकारों को देने के बारे में आप क्या सोचते हैं?

यदि ऐसा नहीं किया जाता तो क्या होता?

- निर्वाचन आयोग चुनाव संबंधी कार्यों में लगाये गये सरकारी कर्मचारियों को आदेश दे सकता है।
- सरकार मुख्य निर्वाचन आयुक्त को नहीं हटा सकती।
- आयोग उस चुनाव को रद्द कर सकता है जो उसे निष्पक्ष न लगे।

क्या कानून में परिवर्तन करके चुनावों में धन और बल के प्रयोग को रोका जा सकता है? क्या केवल कानून बदलने से कोई चीज़ वास्तव में बदलती है?

रहना पड़ता है। वयस्क मताधिकार, चुनाव लड़ने की स्वतंत्रता और एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना को स्वीकार कर भारत में चुनावों को स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाने की कोशिश की गई है। लेकिन पिछले 72 वर्षों के अनुभवों के बाद हमारी चुनाव प्रणाली में सुधार के लिए अनेक सुझाव दिये गये हैं। चुनाव सुधारों के सुझाव निर्वाचन आयोग, विभिन्न राजनीतिक दलों, स्वतंत्र समूहों और अनेक विद्वानों द्वारा दिये गये हैं। इनमें से कुछ सुझाव इस अध्याय में उल्लिखित संवैधानिक प्रावधानों को संशोधित करने के बारे में हैं।

- हमारी चुनाव व्यवस्था को सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली के स्थान पर किसी प्रकार की समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली लागू करना चाहिये। इससे राजनीतिक दलों को उसी अनुपात में सीटें मिलेंगी जिस अनुपात में उन्हें वोट मिलेंगे।
- संसद और विधान सभाओं में एक तिहाई सीटों पर महिलाओं को चुनने के लिए विशेष प्रावधान बनाये जाएँ।
- चुनावी राजनीति में धन के प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए और अधिक कठोर प्रावधान होने चाहिये। सरकार को एक विशेष निधि से चुनावी खर्चों का भुगतान करना चाहिये।

- जिस उम्मीदवार के विरुद्ध फौज़दारी का मुकदमा हो उसे चुनाव लड़ने से रोक दिया जाना चाहिये, भले ही उसने इसके विरुद्ध न्यायालय में अपील कर रखी हो।
- चुनाव–प्रचार में जाति और धर्म के आधार पर की जाने वाली किसी भी अपील को पूरी तरह से प्रतिबंधित कर देना चाहिये।
- राजनीतिक दलों की कार्य प्रणाली को नियंत्रित करने के लिए तथा उनकी कार्यविधि को और अधिक पारदर्शी तथा लोकतांत्रिक बनाने के लिए एक कानून होना चाहिये।

ये कुछ सीमित सुझाव हैं। इन सुझावों पर कोई आम राय नहीं है। लेकिन यदि उन पर आम राय बन भी जाये तो भी कानून और औपचारिक प्रावधान एक सीमा तक ही कारगर हो सकते हैं। वास्तव में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव तभी हो सकते हैं जब सभी उम्मीदवार, राजनीतिक दल और वे सभी लोग जो चुनाव प्रक्रिया में भाग लेते हैं– लोकतांत्रिक प्रतिस्पर्धा की भावना का सम्मान करें।

कानूनी सुधारों के अतिरिक्त, दो और तरीके हैं जिनसे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि चुनाव जनता की अपेक्षाओं और लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को व्यक्त करे। पहला तो यह कि जनता को स्वयं ही और अधिक सतर्क रहना चाहिये तथा राजनीतिक कार्यों में और सक्रियता से भाग लेना चाहिये। लेकिन आम आदमी के लिए नियमित रूप से राजनीति में भाग लेने की अपनी सीमाएँ हैं। इसलिए, यह ज़रूरी है कि अनेक राजनीतिक संस्थाओं और राजनीतिक संगठनों का विकास किया जाय जो स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित कराने के लिए पहरेदारी करें।

कार्टून बूझें

पुरानी आदत छोड़ो और कैमरे के सामने आओ। अब तो तुम्हें टिकट मिल गया है और चुनाव लड़ना है।

© आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

क्या गंभीर अपराध में संलिप्त अपराधी के चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध होना चाहिए?

© NCERT not to be republished

निष्कर्ष

जिन देशों में प्रतिनिधित्व वाला लोकतंत्र है वहाँ चुनाव और चुनाव का प्रतिनिधित्व वाला स्वरूप लोकतंत्र को प्रभावी और विश्वसनीय बनाने में निर्णायक भूमिका निभाता है। भारत में चुनाव व्यवस्था की सफलता अनेक आधारों पर मापी जा सकती है।

- एक, हमारी चुनाव व्यवस्था ने मतदाताओं को न केवल अपने प्रतिनिधियों को चुनने की स्वतंत्रता दी है, बल्कि उन्हें केंद्र और राज्यों में शांतिपूर्ण ढंग से सरकारों को बदलने का अवसर भी दिया है।
- दो, मतदाताओं ने चुनाव प्रक्रिया में लगातार रुचि ली है और उसमें भाग लिया है। चुनावों में भाग लेने वाले उम्मीदवारों और दलों की संख्या लगातार बढ़ रही है।
- तीन, चुनाव व्यवस्था में सभी को स्थान मिला है और यह सभी को साथ लेकर चली है। हमारे प्रतिनिधियों की सामाजिक पृष्ठभूमि भी धीरे-धीरे बदली है। अब हमारे प्रतिनिधि विभिन्न सामाजिक वर्गों से आते हैं, यद्यपि इनमें अभी महिलाओं की संख्या में संतोषजनक वृद्धि नहीं हुई है।
- चार, देश के अधिकतर भागों में चुनाव परिणाम चुनावी अनियमितताओं और धाँधली से प्रभावित नहीं होते यद्यपि चुनाव में धाँधली करने के अनेक प्रयास किये जाते हैं। आपने चुनावों में हिंसा, मतदाता सूचियों से वोटरों के नाम गायब होने की शिकायतें, डराये-धमकाए जाने आदि की शिकायतें अकसर सुनी होंगी। फिर भी, ऐसी घटनाओं से शायद ही कोई चुनाव परिणाम प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता हो।
- अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि चुनाव हमारे लोकतांत्रिक जीवन के अभिन्न अंग हो गये हैं। कोई इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता कि कभी कोई सरकार चुनावों में जनादेश का उल्लंघन भी करेगी। इसी तरह, कोई यह भी कल्पना नहीं कर सकता कि बिना चुनावों के कोई सरकार बन सकेगी। वास्तव में, भारत में निश्चित अंतराल पर होने वाले नियमित चुनावों को एक महान लोकतांत्रिक प्रयोग के रूप में ख्याति मिली है।
- इन सभी बातों से हमारी चुनाव व्यवस्था को देश-विदेश में आदर से देखा जाता है। भारत में मतदाता के अंदर आत्मविश्वास बढ़ा है। मतदाताओं की निगाह में निर्वाचन आयोग का कद बढ़ा है। यह हमारे संविधान निर्माताओं के मूल निर्णयों को उचित ठहराता है। यदि चुनाव प्रक्रिया

© NCERT not to be republished

को कुछ और दोषरहित बनाया जा सके तो हम मतदाता और नागरिक के रूप में लोकतंत्र के इस महोत्सव का और अच्छी तरह आनंद उठा सकेंगे तथा इसे और अर्थपूर्ण बना सकेंगे।

प्रश्नावली

1. निम्नलिखित में कौन प्रत्यक्ष लोकतंत्र के सबसे नजदीक बैठता है?
   (क) परिवार की बैठक में होने वाली चर्चा
   (ख) कक्षा-संचालक (क्लास-मॉनीटर) का चुनाव
   (ग) किसी राजनीतिक दल द्वारा अपने उम्मीदवार का चयन
   (घ) मीडिया द्वारा करवाये गये जनमत-संग्रह

2. इनमें कौन-सा कार्य चुनाव आयोग नहीं करता?
   (क) मतदाता-सूची तैयार करना
   (ख) उम्मीदवारों का नामांकन
   (ग) मतदान-केंद्रों की स्थापना
   (घ) आचार-संहिता लागू करना
   (ड) पंचायत के चुनावों का पर्यवेक्षण

3. निम्नलिखित में कौन-सी राज्य सभा और लोक सभा के सदस्यों के चुनाव की प्रणाली में समान है?
   (क) 18 वर्ष से ज़्यादा की उम्र का हर नागरिक मतदान करने के योग्य है।
   (ख) विभिन्न प्रत्याशियों के बारे में मतदाता अपनी पसंद को वरीयता क्रम में रख सकता है।
   (ग) प्रत्येक मत का समान मूल्य होता है
   (घ) विजयी उम्मीदवार को आधे से अधिक मत प्राप्त होने चाहिए।

4. फर्स्ट पास्ट द पोस्ट प्रणाली में वही प्रत्याशी विजेता घोषित किया जाता है जो –
   (क) सर्वाधिक संख्या में मत अर्जित करता है।
   (ख) देश में सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले दल का सदस्य हो।
   (ग) चुनाव-क्षेत्र के अन्य उम्मीदवारों से ज़्यादा मत हासिल करता है।
   (घ) 50 प्रतिशत से अधिक मत हासिल करके प्रथम स्थान पर आता है।

5. पृथक निर्वाचन-मंडल और आरक्षित चुनाव-क्षेत्र के बीच क्या अंतर है? संविधान

© NCERT not to be republished

निर्माताओं ने पृथक निर्वाचन-मंडल को क्यों स्वीकार नहीं किया?

6. निम्नलिखित में कौन-सा कथन गलत है? इसकी पहचान करें और किसी एक शब्द अथवा पद को बदलकर, जोड़कर अथवा नये क्रम में सजाकर इसे सही करें।
   (क) एक फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट (सर्वाधिक मत से जीत वाली) प्रणाली का पालन भारत के हर चुनाव में होता है।
   (ख) चुनाव आयोग पंचायत और नगरपालिका के चुनावों का पर्यवेक्षण नहीं करता।
   (ग) भारत का राष्ट्रपति किसी चुनाव आयुक्त को नहीं हटा सकता।
   (घ) चुनाव आयोग में एक से ज़्यादा चुनाव आयुक्त की नियुक्ति अनिवार्य है।

7. भारत की चुनाव-प्रणाली का लक्ष्य समाज के कमज़ोर तबके की नुमाइंदगी को सुनिश्चित करना है। लेकिन हमारी विधायिका में महिला सदस्यों की संख्या केवल 12 प्रतिशत तक पहुँची है। इस स्थिति में सुधार के लिए आप क्या उपाय सुझायेंगे?

8. एक नये देश के संविधान के बारे में आयोजित किसी संगोष्ठी में वक्ताओं ने निम्नलिखित आशाएँ जतायीं। प्रत्येक कथन के बारे में बतायें कि उनके लिए फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट (सर्वाधिक मत से जीत वाली) प्रणाली उचित होगी या समानुपातिक प्रतिनिधित्व वाली प्रणाली?
   (क) लोगों को इस बात की साफ-साफ जानकारी होनी चाहिए कि उनका प्रतिनिधि कौन है ताकि वे उसे निजी तौर पर जिम्मेदार ठहरा सकें।
   (ख) हमारे देश में भाषाई रूप से अल्पसंख्यक छोटे-छोटे समुदाय हैं और देश भर में फैले हैं, हमें इनकी ठीक-ठीक नुमाइंदगी को सुनिश्चित करना चाहिए।
   (ग) विभिन्न दलों के बीच सीट और वोट को लेकर कोई विसंगति नहीं रखनी चाहिए।
   (घ) लोग किसी अच्छे प्रत्याशी को चुनने में समर्थ होने चाहिए भले ही वे उसके राजनीतिक दल को पसंद न करते हों।

9. एक भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त ने एक राजनीतिक दल का सदस्य बनकर चुनाव लड़ा। इस मसले पर कई विचार सामने आये। एक विचार यह था कि भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एक स्वतंत्र नागरिक है। उसे किसी राजनीतिक दल में होने और चुनाव लड़ने का अधिकार है। दूसरे विचार के अनुसार, ऐसे विकल्प की संभावना कायम रखने से चुनाव आयोग की निष्पक्षता प्रभावित होगी। इस कारण, भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त को चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। आप इसमें किस पक्ष से सहमत हैं और क्यों?

© NCERT not to be republished

10. भारत का लोकतंत्र अब अनगढ़ 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' प्रणाली को छोड़कर समानुपातिक प्रतिनिध्यात्मक प्रणाली को अपनाने के लिए तैयार हो चुका है' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? इस कथन के पक्ष अथवा विपक्ष में तर्क दें।

राष्ट्रीय मतदाता दिवस (National Voters' Day – NVD) प्रतिज्ञा

हम, भारत के नागरिक, लोकतंत्र में अपनी पूर्ण आस्था रखते हुए यह शपथ लेते हैं कि हम अपने देश की लोकतांत्रिक परम्पराओं की मर्यादा को बनाए रखेंगे तथा स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं शांतिपूर्ण निर्वाचन की गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए, निर्भीक होकर, धर्म, वर्ग, जाति, समुदाय, भाषा अथवा अन्य किसी भी प्रलोभन से प्रभावित हुए बिना सभी निर्वाचनों में अपने मताधिकार का प्रयोग करेंगे।

भारत निर्वाचन आयोग के सुव्यवस्थित मतदाता शिक्षा एवं निर्वाचक सहभागिता (Systematic Voters' Education and Electoral Participation — SVEEP) कार्यक्रम और निर्वाचन साक्षरता क्लब (Electoral Literacy Club — ELC) के बारे में जानकारी के लिए देखें http://ecisveep.nic.in

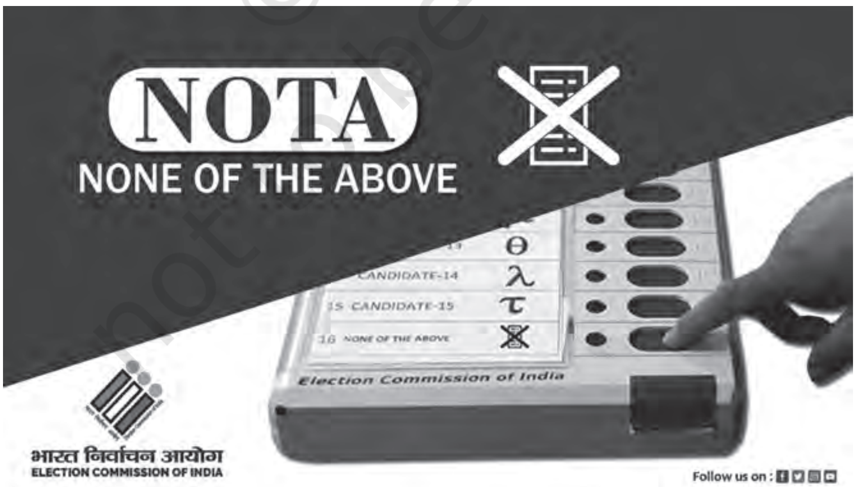

Source: Election Commission of India,

© NCERT not to be republished

अध्याय चार

कार्यपालिका

11103CH04

परिचय

विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सरकार के तीन अंग हैं। ये तीनों मिलकर शासन का कार्य करते हैं तथा कानून-व्यवस्था बनाए रखने और जनता का कल्याण करने में योगदान देते हैं। संविधान यह सुनिश्चित करता है कि ये सभी एक-दूसरे से तालमेल बना कर काम करें और आपस में संतुलन बनाए रखें। संसदीय व्यवस्था में कार्यपालिका और विधायिका एक-दूसरे पर आश्रित है; विधायिका कार्यपालिका को न केवल नियंत्रित करती है बल्कि उससे नियंत्रित भी होती है। इस अध्याय में हम सरकार की कार्यपालिका के संगठन, संरचना और कार्यों का अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में हमें यह भी पता चलेगा कि पिछले कुछ समय के राजनीतिक व्यवहार के कारण इसमें क्या परिवर्तन हुए हैं। इस अध्याय को पढ़ने से आप –

- *संसदीय और राष्ट्रपति प्रणाली की कार्यपालिका में अंतर कर सकेंगे;*
- *भारत के राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति को समझेंगे;*
- *मंत्रिपरिषद् की संरचना और कार्यों के बारे में जान सकेंगे; और*
- *प्रशासनिक मशीनरी के महत्त्व और कार्यों के बारे में जानेंगे।*

© NCERT not to be republished

कार्यपालिका क्या है?

आपके स्कूल के प्रशासन का प्रमुख कौन है? किसी स्कूल या विश्वविद्यालय में महत्त्वपूर्ण निर्णय कौन लेता है? किसी भी संगठन में किसी पदाधिकारी को निर्णय लेना पड़ता है और उसे लागू करना पड़ता है। हम इस क्रिया को प्रशासन या प्रबंधन कहते हैं। लेकिन प्रशासन के लिए संगठन के शीर्ष पर एक ऐसा समूह होना चाहिए जो बड़े या नीतिगत निर्णय ले सके और दैनिक प्रशासनिक कार्यों की देख-रेख तथा उनमें तालमेल कर सके। ऐसे हर संगठन में कुछ लोगों का एक समूह होता है। ये लोग उस संगठन के मुख्य प्रशासनिक या कार्यपालिका अधिकारी के रूप में काम करते हैं। आपने शायद बड़ी कंपनियों, बैंकों और औद्योगिक इकाईयों के प्रशासनिक अधिकारियों के बारे में सुना होगा। उनमें से कुछ पदाधिकारी नीतियों, नियमों और कायदों के बारे में निर्णय लेते हैं, तो कुछ उसे संगठन में लागू करते हैं। कार्यपालिका का अर्थ व्यक्तियों के उस समूह से है जो कायदे-कानूनों को संगठन में रोज़ाना लागू करते हैं।

सरकार के मामले में भी, एक संस्था नीतिगत निर्णय लेती है और नियमों और कायदों के बारे में तय करती है; दूसरी उसे लागू करने की जिम्मेदारी निभाती है। सरकार का वह अंग जो इन नियमों-कायदों को लागू करता है और प्रशासन का काम करता है, कार्यपालिका कहलाता है।

कार्यपालिका के प्रमुख कार्य क्या हैं? कार्यपालिका सरकार का वह अंग है जो विधायिका द्वारा स्वीकृत नीतियों और कानूनों को लागू करने के लिए ज़िम्मेदार है। कार्यपालिका प्रायः नीति-निर्माण में भी भाग लेती है। कार्यपालिका का औपचारिक नाम अलग-अलग राज्यों में भिन्न-भिन्न होता है। कुछ देशों में राष्ट्रपति होता है, तो कहीं चांसलर। कार्यपालिका में केवल राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री या मंत्री ही नहीं होते बल्कि इसके अंदर पूरा प्रशासनिक ढाँचा (सिविल सेवा के सदस्य) भी आते हैं। सरकार के प्रधान और उनके मंत्रियों को राजनीतिक कार्यपालिका कहते हैं और वे सरकार की सभी नीतियों के लिए उत्तरदायी होते हैं; लेकिन जो लोग रोज़-रोज़ के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होते हैं, उन्हें स्थायी कार्यपालिका कहते हैं।

मुझे याद है कोई कह रहा था कि लोकतंत्र में कार्यपालिका जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। क्या यह बड़ी कंपनियों के बड़े अधिकारियों के लिए भी सही है? क्या उन्हें हम मुख्य कार्यपालिका अधिकारी नहीं कहते? वे किसके प्रति उत्तरदायी हैं?

© NCERT not to be republished

कार्यपालिका कितने प्रकार की होती है?

सभी देशों में एक ही तरह की कार्यपालिका नहीं होती। आपने अमेरिका के राष्ट्रपति और इंग्लैंड की महारानी के बारे में सुना होगा। लेकिन अमेरिका के राष्ट्रपति की शक्तियाँ और कार्य भारत के राष्ट्रपति की शक्तियों से बहुत अलग है। इसी प्रकार, इंग्लैंड की महारानी की शक्तियाँ भूटान के राजा से भिन्न है। भारत और फ्रांस दोनों ही देशों में प्रधानमंत्री है, पर उनकी भूमिकाएँ अलग-अलग हैं। ऐसा क्यों है?

खुद करें — खुद सीखें

सार्क सम्मेलन या जी-7 देशों की बैठक की एक फोटो प्राप्त करें और उन लोगों की सूची बनाएँ जिन्होंने उसमें भाग लिया। क्या आप सोच सकते हैं कि क्यों उन्हीं लोगों ने भाग लिया, अन्य लोगों ने क्यों नहीं?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हम इनमें से कुछ देशों की कार्यपालिकाओं की प्रकृति पर प्रकाश डालेंगे। अमेरिका में अध्यक्षात्मक व्यवस्था है और कार्यकारी शक्तियाँ राष्ट्रपति के पास हैं। कनाडा में संसदीय लोकतंत्र और संवैधानिक राजतंत्र है जिसमें महारानी एलिज़ाबेथ द्वितीय राज्य की प्रधान और प्रधानमंत्री सरकार का प्रधान है। फ्रांस में राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री अर्द्ध-अध्यक्षात्मक व्यवस्था के हिस्से हैं। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है पर उन्हें पद से हटा नहीं सकता क्योंकि वे संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। जापान में संसदीय व्यवस्था है जिसमें राजा देश का और प्रधानमंत्री सरकार का प्रधान है। इटली में एक संसदीय व्यवस्था है जिसमें राष्ट्रपति देश का और प्रधानमंत्री सरकार का प्रधान है। रूस में एक अर्द्ध-अध्यक्षात्मक व्यवस्था है जिसमें राष्ट्रपति देश का प्रधान और राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त प्रधानमंत्री सरकार का प्रधान है। जर्मनी में एक संसदीय व्यवस्था है जिसमें राष्ट्रपति देश का नाममात्र का प्रधान और चांसलर सरकार का प्रधान है।

अध्यक्षात्मक व्यवस्था में राष्ट्रपति राज्य और सरकार दोनों का ही प्रधान होता है। इस व्यवस्था में सिद्धांत और व्यवहार दोनों में राष्ट्रपति का पद बहुत शक्तिशाली होता है। ऐसी व्यवस्था अमेरिका, ब्राज़ील और लैटिन अमेरिका के अनेक देशों में पाई जाती है। संसदीय व्यवस्था में प्रधानमंत्री सरकार का प्रधान होता है। अधिकतर

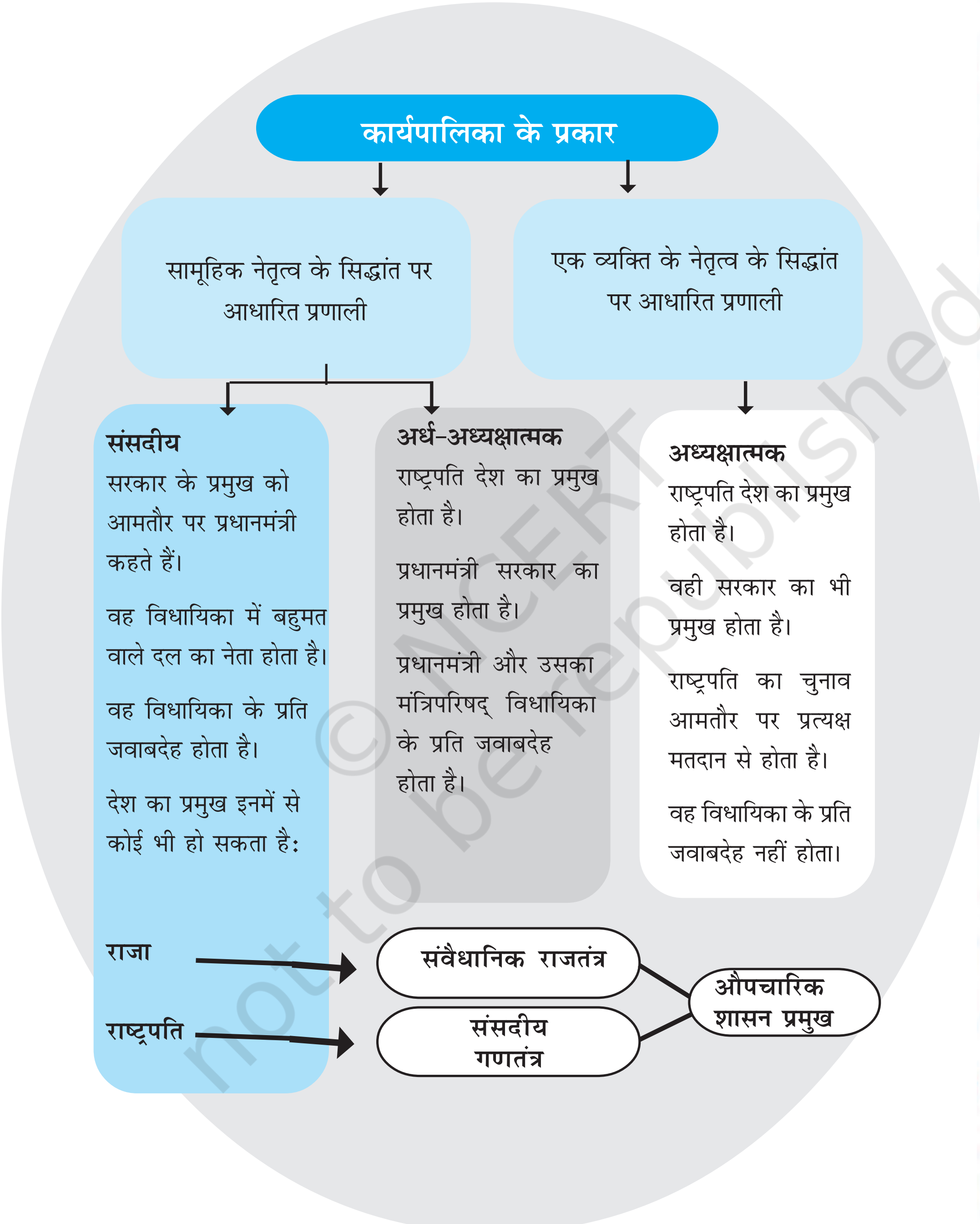

© NCERT not to be republished

श्रीलंका की अर्द्ध-अध्यक्षात्मक कार्यपालिका

1978 में श्रीलंका के संविधान का संशोधन करके अध्यक्षात्मक कार्यपालिका लागू की गई। इस प्रणाली में जनता प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रपति को चुनती है। यह संभव है कि राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री एक ही दल या अलग-अलग दलों के हों।

संविधान राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियाँ देता है। राष्ट्रपति संसद में बहुमत वाले दल के सदस्यों में से प्रधानमंत्री चुनता है। यद्यपि मंत्रियों के लिए संसद का सदस्य होना अनिवार्य है, लेकिन राष्ट्रपति प्रधानमंत्री और दूसरे मंत्रियों को हटा सकता है। राज्य का निर्वाचित प्रधान और सशस्त्र सेनाओं का प्रधान सेनापति होने के अतिरिक्त, राष्ट्रपति सरकार का भी प्रधान होता है। राष्ट्रपति छः वर्ष के लिए चुना जाता है और उसे संसद की कुल सदस्य संख्या के दो तिहाई बहुमत से पारित प्रस्ताव के द्वारा ही हटाया जा सकता है। यदि वह प्रस्ताव संसद के कम से कम आधे सदस्यों द्वारा पास किया जाय और संसद का अध्यक्ष भी संतुष्ट हो कि आरोपों में दम है, तो संसद का अध्यक्ष उसे सर्वोच्च न्यायालय को भेज सकता है।

श्रीलंका के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री की स्थिति भारत से कैसे भिन्न है? भारत और श्रीलंका के राष्ट्रपति के महाभियोग में सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका की तुलना करें।

संसदीय व्यवस्थाओं में एक राष्ट्रपति या राजा होता है जो देश का औपचारिक या नाम मात्र का प्रधान होता है। इस व्यवस्था में राष्ट्रपति या राजा की भूमिका मुख्यतः अलंकारिक होती है और प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमंडल के पास वास्तविक शक्ति होती है। जर्मनी, इटली, जापान, इंग्लैंड और पुर्तगाल आदि देशों में यह व्यवस्था है। अर्द्ध-अध्यक्षात्मक व्यवस्था में राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों होते हैं लेकिन संसदीय व्यवस्था के विपरीत उसमें राष्ट्रपति को दैनिक कार्यों के संपादन में महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं। इस व्यवस्था में, कभी-कभी राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों ही एक दल के हो सकते हैं, लेकिन जब कभी वे दो अलग-अलग दलों के होते हैं तो उनमें आपस में विरोध हो सकता है। फ्रांस, रूस और श्रीलंका में ऐसी ही व्यवस्था है।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

नेहा– यह तो बहुत सरल है। जिस देश में राष्ट्रपति है वहाँ अध्यक्षात्मक कार्यपालिका और जिस देश में प्रधानमंत्री है वहाँ संसदीय कार्यपालिका है।

आप नेहा को कैसे समझाएँगे कि ऐसा हमेशा सच नहीं होता।

भारत में संसदीय कार्यपालिका

जब भारत का संविधान लिखा जा रहा था तब तक भारत को 1919 और 1935 के अधिनियमों के अंतर्गत संसदीय व्यवस्था के संचालन का कुछ अनुभव हो चुका था। इस अनुभव ने हमें दिखाया कि संसदीय व्यवस्था के अंतर्गत कार्यपालिका को जन-प्रतिनिधियों के द्वारा प्रभावपूर्ण तरीके से नियंत्रित किया जा सकता है। भारतीय संविधान के निर्माता एक ऐसी सरकार सुनिश्चित करना चाहते थे जो जनता की अपेक्षाओं के प्रति संवेदनशील और उत्तरदायी हो। संसदीय कार्यपालिका की जगह दूसरा विकल्प अध्यक्षात्मक सरकार का था। लेकिन अध्यक्षात्मक कार्यपालिका मुख्य कार्यकारी के रूप में राष्ट्रपति पर बहुत बल देती है और उसे सभी शक्तियों का स्रोत मानती है। अध्यक्षात्मक कार्यपालिका में व्यक्ति पूजा का खतरा बना रहता है। संविधान निर्माता एक ऐसी सरकार चाहते थे जिसमें एक शक्तिशाली कार्यपालिका तो हो, लेकिन साथ-साथ उसमें व्यक्ति पूजा पर पर्याप्त अंकुश लगे हों। संसदीय व्यवस्था में ऐसी अनेक प्रक्रियाएँ हैं जो यह सुनिश्चित करती हैं कि कार्यपालिका, विधायिका या जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होगी और उनसे नियंत्रित भी। इसलिए, संविधान में राष्ट्रीय और प्रांतीय दोनों ही स्तरों पर संसदीय कार्यपालिका की व्यवस्था को स्वीकार किया गया।

इस व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रपति, भारत में राज्य का औपचारिक प्रधान होते हैं तथा प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् राष्ट्रीय स्तर पर सरकार

क्या हमारे देश में बहुत मजबूत प्रधानमंत्री नहीं हुए? क्या इसका मतलब यह है कि संसदीय व्यवस्था में भी किसी एक व्यक्ति की प्रधानता जारी रह सकती है? तब तो जनता और विधायिका को लगातार सचेत रहने की ज़रूरत है।

© NCERT not to be republished

चलाते हैं। राज्यों के स्तर पर राज्यपाल, मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद् मिलकर कार्यपालिका बनाते हैं।

भारत के संविधान में औपचारिक रूप से संघ की कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति को दी गई हैं। पर वास्तव में प्रधानमंत्री के नेतृत्व में बनी मंत्रिपरिषद् के माध्यम से राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग करता है। राष्ट्रपति 5 वर्ष के लिए चुना जाता है। राष्ट्रपति पद के लिए सीधे जनता के द्वारा निर्वाचन नहीं होता। राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष तरीके से होता है। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन आम नागरिक नहीं बल्कि निर्वाचित विधायक और सांसद करते हैं। यह निर्वाचन समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली और एकल संक्रमणीय मत के सिद्धांत के अनुसार होता है।

केवल संसद ही राष्ट्रपति को महाभियोग की प्रक्रिया के द्वारा उसके पद से हटा सकती है। पिछले अध्याय में हमने पढ़ा कि इस प्रक्रिया के लिए संसद में विशेष बहुमत की ज़रूरत पड़ती है। महाभियोग केवल संविधान के उल्लंघन के आधार पर लगाया जा सकता है।

अनुच्छेद 74 (1) – ''राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान, प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।

परंतु राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् से ऐसी सलाह ... पर पुनर्विचार करने को कह सकता है और राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के पश्चात दी गई सलाह के अनुसार ही कार्य करेगा।''

इस कथन में जिस शब्द 'ही' का प्रयोग किया गया है, क्या आप उसका अर्थ जानते हैं? उसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने को बाध्य है। राष्ट्रपति की शक्ति पर उठे विवाद के कारण संविधान का संशोधन करके यह स्पष्ट कर दिया गया कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने को बाध्य है। बाद में एक और संशोधन के द्वारा यह निर्णय किया गया कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् को अपनी सलाह पर एक बार पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है, लेकिन उसे मंत्रिपरिषद् के द्वारा पुनर्विचार के बाद दी गई सलाह को मानना ही पड़ेगा।

© NCERT not to be republished

राष्ट्रपति की शक्ति और स्थिति

आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि राष्ट्रपति सरकार का औपचारिक प्रधान है। उसे औपचारिक रूप से बहुत–सी कार्यकारी, विधायी, कानूनी और आपात् शक्तियाँ प्राप्त हैं। संसदीय व्यवस्था में राष्ट्रपति वास्तव में इन शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सलाह पर ही करता है। प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् को लोकसभा में बहुमत प्राप्त होता है और वे ही वास्तविक कार्यकारी हैं। अधिकतर मामलों में राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद् की सलाह माननी पड़ती है।

"हमने राष्ट्रपति को कोई वास्तविक शक्ति नहीं दी लेकिन उसके पद को प्रभुतापूर्ण और गरिमामय बनाया है। संविधान उसे न तो वास्तविक कार्यकारी बनाना चाहता है और न ही एकदम नाममात्र का प्रधान। संविधान उसे एक ऐसा प्रधान बनाना चाहता है जो न शासक होता है और न शासन करता है; यह उसे एक महान संवैधानिक प्रधान बनाना चाहता है ..."

जवाहर लाल नेहरू, संविधान सभा वाद–विवाद, खंड छः, पृ. 734

मैं यहाँ कहने भर का बैठा दिया गया हूँ या मैं सचमुच के सवाल भी पूछ रहा हूँ? क्या इस पुस्तक के लेखकों ने मुझे अपने मनचाहे सवाल पूछने की शक्ति दी है या मैं वही सवाल पूछ रहा हूँ जो उनके मन में उठ रहे हैं?

राष्ट्रपति के विशेषाधिकार

इन बातों की चर्चा के बाद क्या हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि किसी भी परिस्थिति में राष्ट्रपति को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है? यह एक गलत मूल्यांकन होगा। संवैधानिक रूप से राष्ट्रपति को सभी महत्त्वपूर्ण मुद्दों और मंत्रिपरिषद् की कार्यवाही के बारे में सूचना प्राप्त करने का अधिकार है। प्रधानमंत्री का यह कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रपति द्वारा माँगी गई सभी सूचनाएँ उसे दे। राष्ट्रपति प्राय: प्रधानमंत्री को पत्र लिखता है और देश की समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त करता है।

© NCERT not to be republished

राष्ट्रपति के लिए किताबों में स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनों का प्रयोग किया जाता है। क्या कभी कोई महिला भी राष्ट्रपति हुई है?

इसके अतिरिक्त, कम से कम तीन अन्य अवसरों पर राष्ट्रपति अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करता है। प्रथम, जैसा कि आप पहले ही देख चुके हैं कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह को लौटा सकता है और उसे अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है। ऐसा करने में राष्ट्रपति अपने विवेक का प्रयोग करता है। जब राष्ट्रपति को ऐसा लगता है कि सलाह में कुछ गलती है या कानूनी रूप से कुछ कमियाँ हैं या फ़ैसला देश के हित में नहीं है, तो वह मंत्रिपरिषद् से अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है। यद्यपि मंत्रिपरिषद् पुनर्विचार के बाद भी उसे वही सलाह दुबारा दे सकती है और तब राष्ट्रपति उसे मानने के लिए बाध्य भी होगा, तथापि राष्ट्रपति के द्वारा पुनर्विचार का आग्रह अपने आप में काफी मायने रखता है। अत: यह एक तरीका है जिसमें राष्ट्रपति अपने विवेक के आधार पर अपनी शक्ति का प्रयोग करता है।

दूसरे, राष्ट्रपति के पास वीटो की शक्ति (निषेधाधिकार) होती है जिससे वह संसद द्वारा पारित विधेयकों (धन विधेयकों को छोड़ कर) पर स्वीकृति देने में विलंब कर सकता है या स्वीकृति देने से मना कर सकता है। संसद द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक को कानून बनने से पूर्व राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। राष्ट्रपति उसे संसद को लौटा सकता है

हमने देखा कि विधेयकों को स्वीकृति देने के संबंध में राष्ट्रपति पर कोई समय सीमा नहीं है। क्या आपको पता है कि इस सिलसिले में एक घटना घट चुकी है? 1986 में संसद ने 'भारतीय पोस्ट ऑफिस (संशोधन) विधेयक' पारित किया। अनेक लोगों ने इसकी आलोचना की क्योंकि विधेयक प्रेस की स्वतंत्रता को बाधित करता था। तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने उस पर कोई निर्णय नहीं लिया। उनका कार्यकाल समाप्त होने के बाद अगले राष्ट्रपति वेंकटरमण ने उसे पुनर्विचार के लिए संसद को लौटा दिया। तब तक, वह सरकार बदल गई जिसने विधेयक पेश किया था और 1989 में एक नई सरकार चुन कर आ गई थी। यह दूसरे दलों की गठबंधन सरकार थी और उसने इस विधेयक को दोबारा संसद में पेश ही नहीं किया। इस प्रकार, जैल सिंह के द्वारा विधेयक को स्वीकृति देने के निर्णय में विलंब करने का वास्तविक परिणाम यह हुआ कि यह विधेयक कानून न बन सका।

और उसे उस पर पुनर्विचार के लिए कह सकता है। वीटो की यह शक्ति सीमित है क्योंकि संसद उसी विधेयक को दुबारा पारित कर दे और राष्ट्रपति के पास भेजे, तो राष्ट्रपति को उस पर अपनी स्वीकृति देनी पड़ेगी। लेकिन संविधान में राष्ट्रपति के लिए ऐसी कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है जिसके अंदर ही उस विधेयक को पुनर्विचार के लिए लौटाना पड़े। इसका अर्थ यह हुआ कि राष्ट्रपति किसी भी विधेयक को बिना किसी समय सीमा के अपने पास लंबित रख सकता है। इससे राष्ट्रपति को अनौपचारिक रूप से, अपने वीटो को प्रभावी ढंग से प्रयोग करने का अवसर मिल जाता है। इसे कई बार 'पॉकेट वीटो' भी कहा जाता है।

तीसरे प्रकार का विशेषाधिकार राजनीतिक परिस्थितियों के कारण पैदा होता है। औपचारिक रूप से राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है। सामान्यतः अपनी संसदीय व्यवस्था में लोकसभा के बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया जाता है, इसलिए उसकी नियुक्ति में राष्ट्रपति के विशेषाधिकार का कोई प्रश्न ही नहीं। लेकिन उस परिस्थिति की कल्पना करें जिसमें चुनाव के बाद किसी भी नेता को लोकसभा में बहुमत प्राप्त न हो। इसके अतिरिक्त यह भी सोचें कि यदि गठबंधन बनाने के प्रयासों के बाद भी दो या तीन नेता यह दावा करें कि उन्हें लोकसभा में बहुमत प्राप्त है, तो क्या होगा? तब राष्ट्रपति को यह निर्णय करना है कि वह किसे प्रधानमंत्री नियुक्त करे। इस परिस्थिति में राष्ट्रपति को अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर यह निर्णय लेना होता है कि किसे बहुमत का समर्थन प्राप्त है या कौन सरकार बना सकता है और सरकार चला सकता है। 1989 के बाद से प्रमुख राजनीतिक परिवर्तनों के कारण राष्ट्रपति के पद का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। 1989 से 1998

प्रधानमंत्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति की भूमिका

1977 के बाद भारत की दलीय राजनीति में प्रतिस्पर्धा काफी बढ़ गई है। और ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब लोकसभा में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला। इन परिस्थितियों में राष्ट्रपति ने क्या किया? मार्च 1998 के चुनाव में किसी भी दल या दलीय गठबंधन को बहुमत नहीं मिला। भाजपा और उसके सहयोगी दलों को कुल 251 सीटें मिलीं जो बहुमत से 21 कम थी। राष्ट्रपति नारायणन ने एक लंबी प्रक्रिया अपनाई। उन्होंने गठबंधन के नेता अटल बिहारी बाजपेयी से "अपने दावे के समर्थन में संबंधित राजनीतिक दलों के दस्तावेज़ प्रस्तुत करने" को कहा। इससे भी आगे जाकर राष्ट्रपति ने वाजपेयी को पदग्रहण करने के मात्र दस दिनों के भीतर विश्वास मत प्राप्त करने को कहा।

तक हुए चार संसदीय चुनावों में किसी भी एक दल या दलीय गठबंधन को लोकसभा में स्पष्ट बहुमत नहीं मिल सका। इन परिस्थितियों की माँग थी कि राष्ट्रपति हस्तक्षेप करके या तो सरकार का गठन कराए या फिर प्रधानमंत्री द्वारा लोकसभा में बहुमत सिद्ध न कर पाने के बाद उसकी सलाह पर लोक सभा भंग कर दे।

अत: यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति का विशेषाधिकार राजनीतिक परिस्थितियों पर आधारित होता है। जब सरकार स्थायी न हो और गठबंधन सरकार सत्ता में हों तब राष्ट्रपति के हस्तक्षेप की संभावनाएँ बढ़ जाती है।

राष्ट्रपति मुख्यत: एक औपचारिक शक्ति वाला पद है और वह राष्ट्र का अलंकारिक प्रधान है। ऐसे में आप पूछ सकते हैं कि तब हमें राष्ट्रपति की क्या आवश्यकता है? संसदीय व्यवस्था में मंत्रिपरिषद् विधायिका में बहुमत के समर्थन पर निर्भर होती है। इसका अर्थ यह है कि मंत्रिपरिषद् को कभी भी हटाया जा सकता है और तब उसकी जगह एक नई मंत्रिपरिषद् की नियुक्ति करनी पड़ेगी। ऐसी परिस्थिति में एक ऐसे राष्ट्र–प्रमुख की ज़रूरत पड़ती है जिसका कार्यकाल स्थायी हो, जिसके पास प्रधानमंत्री को नियुक्त करने की शक्ति हो और जो सांकेतिक रूप से पूरे देश का प्रतिनिधित्व कर सके। सामान्य परिस्थितियों में राष्ट्रपति की यही भूमिका है। लेकिन जब किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता तब राष्ट्रपति पर निर्णय लेने और देश की सरकार को चलाने के लिए प्रधानमंत्री को नियुक्त करने की अतिरिक्त ज़िम्मेदारी होती है।

भारत का उपराष्ट्रपति

उपराष्ट्रपति पाँच वर्ष के लिए चुना जाता है। उसको भी उसी तरह चुनते हैं जैसे राष्ट्रपति को। केवल इतना अंतर है कि उसके निर्वाचक मंडल में राज्य विधान सभा के सदस्य नहीं होते। उपराष्ट्रपति को हटाने के लिए राज्य सभा को अपने बहुमत से इस आशय का प्रस्ताव पास करना पड़ता है और उस प्रस्ताव पर लोकसभा की सहमति लेनी पड़ती है। उपराष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन अध्यक्ष होता है और राष्ट्रपति की मृत्यु, त्यागपत्र, महाभियोग द्वारा हटाए जाने या अन्य किसी कारण से रिक्त होने पर वह कार्यवाहक राष्ट्रपति का काम करता है। उपराष्ट्रपति तभी तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में काम करता है जब तक कोई नया राष्ट्रपति नहीं चुन लिया जाता। फखरुद्दीन अली अहमद की मृत्यु के बाद बीडी जत्ती तब तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में काम करते रहे जब तक नए राष्ट्रपति का चुनाव नहीं हो गया।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

कल्पना करें कि प्रधानमंत्री जिस राज्य में इस आधार पर राष्ट्रपति शासन लगाना चाहता है कि वहाँ की सरकार दलितों पर अत्याचार रोकने में विफल रही है। राष्ट्रपति की सोच कुछ अलग है। उसका कहना है कि राष्ट्रपति शासन का अपवाद स्वरूप ही प्रयोग करना चाहिए। इस स्थिति में राष्ट्रपति के पास निम्नलिखित में से कौन विकल्प है?

(क) वह प्रधानमंत्री को बताए कि राष्ट्रपति शासन की घोषणा करने वाले आदेश पर वह हस्ताक्षर नहीं करेगा।

(ख) प्रधानमंत्री को बर्खास्त कर दे।

(ग) वह प्रधानमंत्री से वहाँ केंद्रीय रिज़र्व पुलिस बल भेजने को कहे।

(घ) एक प्रेस वक्तव्य दे कि क्यों प्रधानमंत्री गलत है।

(ङ) इस संबंध में प्रधानमंत्री से बातचीत करे और उसे ऐसा करने से रोके परंतु यदि प्रधानमंत्री दृढ़ रहे तब उस पर हस्ताक्षर कर दे।

© NCERT not to be republished

कार्टून बूझें

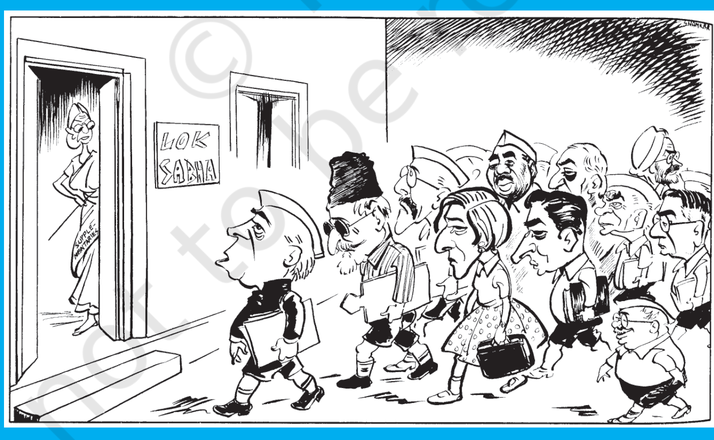

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

22 अगस्त 1954

प्रधानमंत्री के बिना कोई मंत्रिपरिषद् नहीं होती। यह कार्टून बताता है कि किस तरह प्रधानमंत्री सरकार की 'अगुआइ' करता है।

प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद्

भारत के प्रधानमंत्री पद का उल्लेख किए बिना भारतीय सरकार या राजनीति की कोई चर्चा नहीं हो सकती। क्या आप सोच सकते हैं कि ऐसा क्यों?

इस अध्याय में आप पहले पढ़ चुके हैं कि राष्ट्रपति केवल मंत्रिपरिषद् की सलाह पर ही अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है। प्रधानमंत्री इस मंत्रिपरिषद् का प्रधान है। अतः मंत्रिपरिषद् के प्रधान के रूप में प्रधानमंत्री अपने देश की सरकार का सबसे महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी हो जाता है।

संसदीय शासन में यह ज़रूरी है कि प्रधानमंत्री को लोकसभा में बहुमत प्राप्त हो। बहुमत का यह समर्थन भी प्रधानमंत्री को बहुत शक्तिशाली बना देता है। जैसे ही प्रधानमंत्री बहुमत का समर्थन खो देता है, वह अपना पद भी खो देता है। स्वतंत्रता के बाद कई वर्षों तक काँग्रेस पार्टी का लोकसभा में बहुमत बना रहा, जिससे उसी का नेता प्रधानमंत्री बनता रहा। 1989 से अनेक ऐसे अवसर आए जब लोकसभा में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला। अनेक राजनीतिक दलों को तालमेल कर गठबंधन बनाना पड़ा जिसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त हो। इस परिस्थिति में जो नेता सहयोगी दलों को अधिकतर स्वीकार होता है वह प्रधानमंत्री बनता है। औपचारिक रूप से, जिस नेता को लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है, राष्ट्रपति उसे प्रधानमंत्री नियुक्त करता है।

कार्टून बूझें

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

क्या सिर्फ मंत्री-पद ही मायने रखता है? कार, बंगला, नौकर, यात्रा, विदेश-भ्रमण, सुरक्षा और सचिव वगैरह आपके लिए कोई मायने नहीं रखते?

लोग मंत्री बनना क्यों चाहते हैं? इस कार्टून में शायद यह बताया गया है कि लोग सुख-सुविधा उठाने के लिए मंत्री बनना चाहते हैं। लेकिन तब किन्हीं खास मंत्रालयों को पाने के लिए होड़ क्यों मची रहती है?

प्रधानमंत्री तय करता है कि उसकी मंत्रिपरिषद् में कौन लोग मंत्री होंगे। प्रधानमंत्री विभिन्न मंत्रियों में पद-स्तर और मंत्रालयों का आबंटन करता है। मंत्रियों को उनकी वरिष्ठता और राजनीतिक महत्त्व के अनुसार मंत्रिमंडल का मंत्री, राज्यमंत्री या उपमंत्री बनाया जाता है। इसी प्रकार, राज्यों में मुख्यमंत्री अपने दल या सहयोगी दलों से मंत्री चुनते हैं। प्रधानमंत्री और सभी मंत्रियों के लिए संसद का सदस्य

होना अनिवार्य है। संसद का सदस्य हुए बिना यदि कोई व्यक्ति मंत्री या प्रधानमंत्री बन जाता है तो उसे छः महीने के भीतर ही संसद के सदस्य के रूप में निर्वाचित होना पड़ता है।

संविधान सभा में अनेक सदस्यों का विचार था कि मंत्रियों का चयन विधायिका को करना चाहिए न कि प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री को –
मेरे दृष्टिकोण से प्रांतों के लिए वह स्विस प्रणाली सर्वोत्तम व्यवस्था है जिसमें विधायिका कार्यपालिका को एक निश्चित समय ... के लिए चुनती है। ... एकल संक्रमणीय मत प्रणाली वह सर्वोत्तम व्यवस्था है जो कार्यपालिका की नियुक्ति के लिए प्रयोग की जा सकती है क्योंकि उसमें सभी हितों का प्रतिनिधित्व होगा और विधायिका का कोई भी दल यह महसूस न कर सकेगा कि उसका प्रतिनिधित्व नहीं है।

बेगम ऐज़ाज़ रसूल

संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड IV, पृष्ठ 631, 17 जुलाई 1947

मंत्रिपरिषद् का आकार

संविधान के 91वें संशोधन अधिनियम (2003) के पहले, मंत्रिपरिषद् का आकार समय की माँग और परिस्थितियों के अनुरूप तय किया जाता था। लेकिन ऐसे में मंत्रिपरिषद् का आकार बहुत बड़ा हो जाता था। इसके अतिरिक्त, जब किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता था, तब वह संसद के अन्य सदस्यों को मंत्री पद का लालच देकर समर्थन हासिल करने की कोशिश करता था क्योंकि तब मंत्रिपरिषद् की सदस्य संख्या पर कोई प्रतिबंध न था। यह अनेक राज्यों में भी हो रहा था। अतः संविधान का संशोधन करके यह व्यवस्था की गई कि मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या लोक सभा (या राज्यों में विधान सभा) की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक न होगी।

विधायिका वाले अध्याय में आप विस्तार से उन तरीकों के बारे में पढ़ेंगे जिनसे संसद कार्यपालिका को नियंत्रित करती है। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि संसदीय शासन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कार्यपालिका सतत रूप से विधायिका के नियंत्रण और देख-रेख में रहती है।

मंत्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। इस प्रावधान का अर्थ है कि जो सरकार लोकसभा में विश्वास खो देती है उसे त्यागपत्र देना पड़ता है।

© NCERT not to be republished

इस सिद्धांत के अनुसार मंत्रिपरिषद् संसद की एक कार्यकारी समिति है और वह संसद के प्रतिनिधि के रूप में सामूहिक रूप से शासन करती है। सामूहिक उत्तरदायित्व मंत्रिमंडल की एकजुटता के सिद्धांत पर आधारित है। इसकी भावना यह है कि यदि किसी एक मंत्री के विरुद्ध भी अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाए तो संपूर्ण मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है। इसका अर्थ यह भी है कि यदि कोई मंत्री मंत्रिमंडल की नीति या निर्णय से सहमत नहीं, तो उसे उस निर्णय को स्वीकार कर लेना चाहिए या त्यागपत्र दे देना चाहिए। जिस नीति के बारे में सामूहिक उत्तरदायित्व हो उसे मानना या उसे लागू करना सभी मंत्रियों के लिए ज़रूरी है।

भारत में, प्रधानमंत्री का सरकार में स्थान सर्वोपरि है। बिना प्रधानमंत्री के मंत्रिपरिषद् का कोई अस्तित्व नहीं है। मंत्रिपरिषद् तभी अस्तित्व में आती है जब प्रधानमंत्री अपने पद का शपथ ग्रहण कर लेता है। प्रधानमंत्री की मृत्यु या त्यागपत्र से पूरी मंत्रिपरिषद् ही भंग हो जाती है जबकि किसी मंत्री की मृत्यु, हटाए जाने या त्यागपत्र के कारण मंत्रिपरिषद् में केवल एक स्थान खाली होता है। प्रधानमंत्री एक तरफ मंत्रिपरिषद् तथा दूसरी ओर राष्ट्रपति और संसद के बीच एक सेतु का काम करता है। इसी भूमिका के कारण पंडित नेहरू ने प्रधानमंत्री को सरकार की केंद्रीय धुरी की संज्ञा दी। प्रधानमंत्री का यह संवैधानिक दायित्व भी है कि वह सभी संघीय मामलों के प्रशासन और प्रस्तावित कानूनों के बारे में राष्ट्रपति को सूचित करे। प्रधानमंत्री सरकार के सभी महत्त्वपूर्ण निर्णयों में सम्मिलित होता है और सरकार की नीतियों के बारे में निर्णय लेता है। इस प्रकार, प्रधानमंत्री की शक्तियों के अनेक स्रोत हैं, जैसे – मंत्रिपरिषद् पर नियंत्रण, लोकसभा का नेतृत्व, अधिकारी जमात पर आधिपत्य, मीडिया तक पहुँच, चुनाव के दौरान उसके व्यक्तित्व का उभार, तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और विदेश यात्राओं के दौरान राष्ट्रीय नेता की छवि आदि।

क्या कोई आदमी ताकतवर होने के चलते प्रधानमंत्री बनता है या प्रधानमंत्री बनने के बाद वह ताकतवर हो जाता है?

लेकिन, प्रधानमंत्री की शक्तियाँ और उनका प्रयोग तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जब भी किसी एक

© NCERT not to be republished

राजनीतिक दल को लोकसभा में बहुमत मिला, तब प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल की शक्तियाँ निर्विवाद रहीं। परंतु जब राजनीतिक दलों के गठबंधन की सरकारें बनीं तब ऐसा नहीं रहा। 1989 से हमने भारत में अनेक गठबंधन सरकारों को देखा है। इनमें से कई सरकारें लोकसभा की पूरी अवधि के लिए सत्ता में न रह सकीं। बहुमत समाप्त होने के कारण उन्होंने त्यागपत्र दे दिया या वे हटा दी गईं। इन घटनाओं से संसदीय शासन का काम-काज प्रभावित हुआ है।

इस सिलसिले में पहली बात तो यह है कि इन घटनाओं से प्रधानमंत्री के चयन में राष्ट्रपति के विशेषाधिकारों की भूमिका बढ़ी है। दूसरे, इस अवधि में गठबंधन राजनीति के कारण राजनीतिक सहयोगियों में परामर्श की प्रवृत्ति बढ़ी है जिससे प्रधानमंत्री की सत्ता में कुछ सेंध लगी है। तीसरे, इससे प्रधानमंत्री के अनेक विशेषाधिकारों जैसे मंत्रियों का चयन और उनके पद-स्तर तथा मंत्रालय के चयन पर भी कुछ अंकुश लगा है। चौथे, प्रधानमंत्री सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों को भी अकेले तय नहीं कर सकता। चुनाव के पूर्व और चुनाव के बाद विभिन्न विचारधारा वाले अनेक राजनीतिक दल सहयोग करके सरकार बनाते हैं। सहयोगी दलों के बीच काफी बातचीत और समझौते के बाद ही नीतियाँ बन पाती हैं। इस पूरी प्रक्रिया में प्रधानमंत्री को एक नेता से अधिक एक मध्यस्थ की भूमिका निभानी पड़ती है।

कुछेक बदलावों के साथ राज्यों में भी ठीक इसी तरह की लोकतांत्रिक कार्यपालिका होती है। सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि राज्य में एक राज्यपाल होता है जो, (केंद्रीय सरकार की सलाह पर) राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्त किया जाता है। यद्यपि प्रधानमंत्री की ही तरह मुख्यमंत्री भी विधान सभा में बहुमत दल

कार्टून बूझें

मेरी परेशानियाँ खत्म नहीं हुईं, मैंने विश्वास मत जीत लिया है।

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

मुख्यमंत्री विश्वासमत जीतकर भी खुश नहीं हैं। वे कह रहे हैं कि विश्वासमत जीतने के बावजूद उनकी परेशानियां बरकरार है। क्या आप सोच सकते हैं, वे ऐसा क्यों कह रहे हैं?

© NCERT not to be republished

का नेता होता है, पर राज्यपाल के पास ज़्यादा विवेकाधीन शक्तियाँ होती हैं। बहरहाल, राज्य के स्तर पर भी संसदनात्मक व्यवस्था के प्रमुख सिद्धांत लागू होते हैं।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

मान लीजिए कि प्रधानमंत्री को मंत्रिपरिषद् का गठन करना है। वह क्या करेगा/करेगी –

(क) विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों का चयन।

(ख) केवल अपनी पार्टी के लोगों का चयन ।

(ग) केवल व्यक्तिगत रूप से निष्ठावान और विश्वसनीय लोगों का चयन।

(घ) केवल सरकार के समर्थकों का चयन।

(ङ) मंत्री बनने की होड़ में शामिल व्यक्तियों राजनीतिक ताकत का अंदाज़ा लगाकर ही उनका चयन।

स्थायी कार्यपालिका – नौकरशाही

मंत्रियों के निर्णय को कौन लागू करता है?

शासन के कार्यकारी अंग में प्रधानमंत्री, मंत्रिगण और नौकरशाही या प्रशासनिक मशीनरी का एक विशाल संगठन सम्मिलित होता है। इस ढाँचे और सैन्य सेवाओं में अंतर करने के लिए इसे नागरिक सेवा कहते हैं। सरकार के स्थाई कर्मचारी के रूप में कार्य करने वाले प्रशिक्षित और प्रवीण अधिकारी नीतियों को बनाने तथा उसे लागू करने में मंत्रियों का सहयोग करते हैं। लोकतंत्र में निर्वाचित प्रतिनिधि और मंत्रिगण सरकार के प्रभारी होते हैं और प्रशासन उनके नियंत्रण और देख-रेख में होता है। संसदीय शासन में, विधायिका प्रशासन को नियंत्रित करती है। यह मंत्री की ज़िम्मेदारी है कि वह प्रशासन पर राजनीतिक नियंत्रण बनाए रखे। भारत में एक दक्ष प्रशासनिक मशीनरी मौजूद है। लेकिन यह मशीनरी राजनीतिक रूप से उत्तरदायी है। नौकरशाही से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह राजनीतिक रूप से तटस्थ हो। इसका अर्थ यह है कि

© NCERT not to be republished

नौकरशाही नीतियों पर विचार करते समय किसी राजनीतिक दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करेगी। प्रजातंत्र में यह संभव है कि कोई पार्टी चुनाव में हार जाए और नई सरकार पिछली सरकार की नीतियों की जगह नई नीतियाँ अपनाना चाहे। ऐसी स्थिति में, प्रशासनिक मशीनरी की ज़िम्मेदारी है कि वह नई सरकार को अपनी नीति बनाने और उसे लागू करने में मदद करे।

आज भारतीय नौकरशाही का स्वरूप बहुत जटिल हो गया है। इसमें अखिल भारतीय सेवाएँ, प्रांतीय सेवाएँ, स्थानीय सरकार के कर्मचारी और लोक उपक्रमों के तकनीकी तथा प्रबंधकीय अधिकारी सम्मिलित हैं। हमारे संविधान निर्माता गैर-राजनीतिक और व्यावसायिक रूप से दक्ष प्रशासनिक मशीनरी के महत्त्व को जानते थे। वे सिविल सेवा या नौकरशाही के सदस्यों को बिना किसी भेदभाव के योग्यता के आधार पर चयनित करना चाहते थे। अतः भारत सरकार के लिए सिविल सेवा के सदस्यों की भर्ती की प्रक्रिया का कार्य संघ लोक सेवा आयोग को सौंपा गया है। ऐसे ही लोक सेवा आयोग राज्यों में भी बनाए गए हैं। लोक सेवा आयोग के सदस्यों को एक निश्चित कार्यकाल के लिए नियुक्त किया जाता है। उनको सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की जाँच के आधार पर ही निलंबित या अपदस्थ किया जा सकता है। दक्षता और योग्यता को आधार बनाकर भर्ती की जाती है, लेकिन संविधान यह भी सुनिश्चित करता है कि पिछड़े वर्गों के साथ-साथ समाज के सभी वर्गों को सरकारी नौकरशाही का हिस्सा बनने का मौका मिले। इस उद्देश्य के लिए, संविधान ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए नौकरियों में आरक्षण प्रदान किया है। इसके बाद महिलाओं, अन्य पिछड़े वर्ग (ओबीसी) और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (ईडब्ल्यूएस) के लिए भी आरक्षण प्रदान किया गया है। इन प्रावधानों से यह सुनिश्चित होता है कि नौकरशाही में सभी समूहों का प्रतिनिधित्व होगा तथा सामाजिक असमानताएँ सिविल सेवाओं में भर्ती के मार्ग में रोड़ा नहीं बनेंगी।

भारतीय प्रशासनिक सेवा (आईएएस) तथा भारतीय पुलिस सेवा (आईपीएस) के लिए उम्मीदवारों का चयन संघ लोक सेवा आयोग करता है। ये अधिकारी प्रांतीय स्तर पर शीर्षस्थ

हाँ, मुझे मालूम है कि अधिकारी लोगों की मदद के लिए हैं, लेकिन लोग सदा इन अधिकारियों से डरे रहते हैं और अधिकारियों का व्यवहार भी शासकों जैसा होता है।

© NCERT not to be republished

सिविल सेवाओं का वर्गीकरण

अखिल भारतीय सेवाएँ –
भारतीय प्रशासनिक सेवा
भारतीय पुलिस सेवा

केंद्रीय सेवाएँ –
भारतीय विदेश सेवा
भारतीय राजस्व सेवा

प्रांतीय सेवाएँ –
प्रांतीय सिविल सेवा

नौकरशाही की रीढ़ होते हैं। आपको शायद पता हो कि एक जिले का जिलाधिकारी (कलेक्टर) उस जिले में सरकार का सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है। क्या आप जानते हैं कि जिलाधिकारी सामान्यतः आईएएस स्तर का अधिकारी होता है और वह केंद्र सरकार द्वारा बनाई गई सेवा शर्तों से नियंत्रित होता है। एक आईएएस अथवा आईपीएस अधिकारी किसी एक राज्य के संबद्ध कर दिया जाता है, जहाँ वह राज्य सरकार की देख-रेख में काम करता है। लेकिन आईएएस और आईपीएस अधिकारी केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त होते हैं और वे केंद्र सरकार की सेवा में वापस जा सकते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि केवल केंद्रीय सरकार ही उनके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई कर सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि राज्यों के प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी केंद्रीय सरकार की देख-रेख और नियंत्रण में रहते हैं। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा नियुक्त आईएएस और आईपीएस अधिकारियों के अतिरिक्त राज्य के प्रशासन में राज्य लोक सेवा आयोगों द्वारा नियुक्त अधिकारियों का भी योगदान होता है। जैसा कि हम आगे संघवाद वाले अध्याय में पढ़ेंगे, नौकरशाही की यह विशेषता राज्यों के प्रशासन पर केंद्रीय सरकार के नियंत्रण को मजबूत कर देती है।

नौकरशाही वह माध्यम है जिसके द्वारा सरकार की लोकहितकारी नीतियाँ जनता तक पहुँचती है। पर नौकरशाही इतनी शक्तिशाली होती है कि आम आदमी सरकारी अधिकारियों तक पहुँचने से डरता है। यह लोगों का आम अनुभव है कि नौकरशाही सामान्य नागरिकों की माँगों और आशाओं के प्रति संवेदनशील नहीं होती। लेकिन जब लोकतांत्रिक ढंग से चुनी हुई सरकार नौकरशाही को नियंत्रित करती है, तब इनमें से कुछ समस्याओं को प्रभावी तरीके से हल किया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर, ज़्यादा राजनीतिक हस्तक्षेप से नौकरशाही राजनीतिज्ञों के हाथ का खिलौना बन जाती है। हालाँकि संविधान ने भर्ती के लिए एक स्वतंत्र मशीनरी बनायी लेकिन अनेक लोगों का मानना है कि सरकारी कर्मचारियों को अपने कार्यों के संपादन में राजनीतिक हस्तक्षेप से बचाने की कोई व्यवस्था नहीं है। यह भी महसूस किया जाता है कि जनता के प्रति नौकरशाही का उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त प्रावधान नहीं है। पर, यह

© NCERT not to be republished

आशा की जाती है कि सूचना का अधिकार जैसे कदम नौकरशाही को और अधिक उत्तरदायी और संवेदनशील बना सकेंगे।

निष्कर्ष

आधुनिक कार्यपालिका सरकार की एक अत्यंत शक्तिशाली संस्था है। सभी प्रकार की सरकारों में, सरकार के अन्य अंगों की अपेक्षा कार्यपालिका ज़्यादा शक्तिशाली होती है। इससे कार्यपालिका पर लोकतांत्रिक नियंत्रण की आवश्यकता बढ़ जाती है। हमारे संविधान निर्माताओं की यह दूर-दृष्टि ही थी कि उन्होंने कार्यपालिका को विधायिका के नियमित नियंत्रण और देख-रेख में रखा। इस प्रकार, एक संसदीय कार्यपालिका का चयन किया गया। समय-समय पर होने वाले चुनाव, व्यक्तियों के प्रयोग पर संवैधानिक अंकुशों और लोकतांत्रिक राजनीति ने यह सुनिश्चित किया है कि भारत में कार्यपालिका अनुत्तरदायी न होगी।

प्रश्नावली

1. संसदीय कार्यपालिका का अर्थ होता है –
   (क) जहाँ संसद हो वहाँ कार्यपालिका का होना
   (ख) संसद द्वारा निर्वाचित कार्यपालिका
   (ग) जहाँ संसद कार्यपालिका के रूप में काम करती है
   (घ) ऐसी कार्यपालिका जो संसद के बहुमत के समर्थन पर निर्भर हो

2. निम्नलिखित संवाद पढ़ें। आप किस तर्क से सहमत हैं और क्यों?

   अमित – संविधान के प्रावधानों को देखने से लगता है कि राष्ट्रपति का काम सिर्फ ठप्पा मारना है।

   शमा – राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है। इस कारण उसे प्रधानमंत्री को हटाने का भी अधिकार होना चाहिए।

   राजेश – हमें राष्ट्रपति की ज़रूरत नहीं। चुनाव के बाद, संसद बैठक बुलाकर एक नेता चुन सकती है जो प्रधानमंत्री बने।

© NCERT not to be republished

3. निम्नलिखित को सुमेलित करें –

(क) भारतीय विदेश सेवा	जिसमें बहाली हो उसी प्रदेश में काम करती है।
(ख) प्रादेशिक लोक सेवा	केंद्रीय सरकार के दफ़्तरों में काम करती है जो या तो देश की राजधानी में होते हैं या देश में कहीं और।
(ग) अखिल भारतीय सेवाएँ	जिस प्रदेश में भेजा जाए उसमें काम करती है, इसमें प्रतिनियुक्ति पर केंद्र में भी भेजा जा सकता है।
(घ) केंद्रीय सेवाएँ	भारत के लिए विदेशों में कार्यरत।

4. उस मंत्रालय की पहचान करें जिसने निम्नलिखित समाचार को जारी किया होगा। यह मंत्रालय प्रदेश की सरकार का है या केंद्र सरकार का और क्यों?

(क) आधिकारिक तौर पर कहा गया है कि सन् 2004-05 में तमिलनाडु पाठ्यपुस्तक निगम कक्षा 7, 10 और 11 की नई पुस्तकें जारी करेगा।

(ख) भीड़ भरे तिरूवल्लुर-चेन्नई खंड में लौह-अयस्क निर्यातकों की सुविधा के लिए एक नई रेल लूप लाइन बिछाई जाएगी। नई लाइन लगभग 80 कि.मी. की होगी। यह लाइन पुट्टुर से शुरु होगी और बंदरगाह के निकट अतिपट्टू तक जाएगी।

(ग) रमयमपेट मंडल में किसानों की आत्महत्या की घटनाओं की पुष्टि के लिए गठित तीन सदस्यीय उप-विभागीय समिति ने पाया कि इस माह आत्महत्या करने वाले दो किसान फ़सल के मारे जाने से आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहे थे।

5. प्रधानमंत्री की नियुक्ति करने में राष्ट्रपति –

(क) लोकसभा के सबसे बड़े दल के नेता को चुनता है।

(ख) लोकसभा में बहुमत अर्जित करने वाले गठबंधन-दलों में सबसे बड़े दल के नेता को चुनता है।

(ग) राज्यसभा के सबसे बड़े दल के नेता को चुनता है।

(घ) गठबंधन अथवा उस दल के नेता को चुनाता है जिसे लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो।

© NCERT not to be republished

6. इस चर्चा को पढ़कर बताएँ कि कौन-सा कथन भारत पर सबसे ज़्यादा लागू होता है –

आलोक – प्रधानमंत्री राजा के समान है। वह हमारे देश में हर बात का फ़ैसला करता है।

शेखर – प्रधानमंत्री सिर्फ 'बराबरी के सदस्यों में प्रथम' है। उसे कोई विशेष अधिकार प्राप्त नहीं। सभी मंत्रियों और प्रधानमंत्री के अधिकार बराबर हैं।

बॉबी – प्रधानमंत्री को दल के सदस्यों तथा सरकार को समर्थन देने वाले सदस्यों का ध्यान रखना पड़ता है। लेकिन कुल मिलाकर देखें तो नीति-निर्माण तथा मंत्रियों के चयन में प्रधानमंत्री की बहुत ज़्यादा चलती है।

7. क्या मंत्रिमंडल की सलाह राष्ट्रपति को हर हाल में माननी पड़ती है? आप क्या सोचते हैं? अपना उत्तर अधिकतम 100 शब्दों में लिखें।

8. संसदीय-व्यवस्था ने कार्यपालिका को नियंत्रण में रखने के लिए विधायिका को बहुत-से अधिकार दिए हैं। कार्यपालिका को नियंत्रित करना इतना ज़रूरी क्यों है? आप क्या सोचते हैं?

9. कहा जाता है कि प्रशासनिक-तंत्र के कामकाज में बहुत ज़्यादा राजनीतिक हस्तक्षेप होता है। सुझाव के तौर पर कहा जाता है कि ज़्यादा से ज़्यादा स्वायत्त एजेंसियाँ बननी चाहिए जिन्हें मंत्रियों को जवाब न देना पड़े।

(क) क्या आप मानते हैं कि इससे प्रशासन ज़्यादा जन-हितैषी होगा?

(ख) क्या आप मानते हैं कि इससे प्रशासन की कार्य कुशलता बढ़ेगी?

(ग) क्या लोकतंत्र का अर्थ यह होता है कि निर्वाचित प्रतिनिधियों का प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण हो?

10. नियुक्ति आधारित प्रशासन की जगह निर्वाचन आधारित प्रशासन होना चाहिए - इस विषय पर 200 शब्दों में एक लेख लिखो।

© NCERT not to be republished

अध्याय पाँच

विधायिका

11103CH05

परिचय

हम भारत में चुनावों का महत्त्व और चुनावों के लिए अपनाई गई प्रक्रिया का अध्ययन पिछले अध्यायों में कर चुके हैं। विधायिकाएँ जनता द्वारा निर्वाचित होती हैं और जनता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती हैं। इस अध्याय में आप पढ़ेंगे कि निर्वाचित विधायिकाएँ कैसे काम करती हैं और लोकतांत्रिक सरकार को बनाए रखने में कैसे मदद करती हैं। आप भारत में संसद और राज्यों की विधायिकाओं की संरचना और कार्यों तथा लोकतांत्रिक शासन में उनके महत्त्व का अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में आपको निम्नलिखित बातों की जानकारी होगी:

- *विधायिका का क्या महत्त्व है?*
- *संसद के कार्य और शक्तियाँ क्या हैं?*
- *कानून कैसे बनता है?*
- *संसद कार्यपालिका को कैसे नियंत्रित करती है?*
- *संसद अपने ऊपर कैसे नियंत्रण रखती है?*

© NCERT not to be republished

हमें संसद क्यों चाहिए?

विधायिका केवल कानून बनाने वाली संस्था नहीं है। इसके अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों में से कानून बनाना भी एक कार्य है। यह सभी लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रियाओं का केंद्र है। संसद में बहुत-से दृश्य देखने को मिलते हैं। सदन में बहस, बहिर्गमन, विरोध, प्रदर्शन, सर्वसम्मति, सरोकार और सहयोग आदि इसे अत्यंत जीवंत रखते हैं। ये सभी बहुत ही महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों को पूरा करते हैं। दरअसल वास्तविक प्रतिनिधित्व वाली कुशल और प्रभावी विधायिका के बिना सच्चे लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती। विधायिका जन-प्रतिनिधियों का जनता के प्रति उत्तरदायित्व सुनिश्चित करती है। यह वास्तव में प्रतिनिधिक लोकतंत्र का आधार है।

इसके बावजूद अधिकांश लोकतंत्रों में कार्यपालिका के मुकाबले विधायिकाएँ अपना महत्त्व खोती जा रही हैं। भारत में भी मंत्रिमंडल नीति निर्माण की पहल करता है, शासन का एजेंडा तय करता है और उसे लागू करता है। इससे कुछ आलोचकों को यह कहने का मौका मिल गया कि संसद का ह्रास हो गया है। लेकिन अत्यंत शक्तिशाली मंत्रिमंडल को भी विधायिका में बहुमत की आवश्यकता होती है। एक सशक्त नेता को भी संसद का सामना करना पड़ता है और संसद को अपने जवाबों से संतुष्ट करना पड़ता है। यह हमें संसद की लोकतांत्रिक क्षमता का एहसास कराता है। यह वाद-विवाद का सबसे लोकतांत्रिक और खुला मंच है। अपनी संरचनात्मक विशेषता के कारण यह सरकार के अन्य सभी अंगों में सबसे ज़्यादा प्रतिनिधिक है। और फिर, इसके पास सरकार (कार्यपालिका) का चयन करने और उसे बर्खास्त करने की शक्ति भी है।

खुद करें—खुद सीखें

इन समाचारों पर विचार करें और यह सोचें कि यदि विधायिकाएँ न होतीं, तो क्या होता? प्रत्येक रिपोर्ट को पढ़ने के बाद बताएँ कि कैसे कार्यपालिका को नियंत्रित करने में विधायिका सफल या असफल रही –

- **28 फरवरी 2002:** केंद्रीय वित्त मंत्री जसवंत सिंह ने केंद्रीय बजट प्रस्तावों में 50 किलोग्राम यूरिया खाद की बोरी की कीमत 12 रुपए बढ़ाने तथा दो अन्य खादों के दामों में भी कुछ वृद्धि करने के प्रस्ताव की घोषणा की। इससे खाद के दामों में 5 प्रतिशत वृद्धि हुई। यूरिया खाद के वर्तमान मूल्य 4830 रु. प्रति टन पर 80 प्रतिशत सब्सिडी है।
- **11 मार्च 2002:** विपक्ष के जबर्दस्त विरोध के कारण वित्तमंत्री को खाद के दामों में वृद्धि के प्रस्ताव को वापस लेना पड़ा।

(द *हिन्दू*, 12 मार्च 2002)

© NCERT not to be republished

- **4 जून 1998:** को लोक सभा में यूरिया खाद और पेट्रोलियम पदार्थों के दामों में वृद्धि को लेकर विवादास्पद स्थिति बन गई। पूरे विपक्ष ने सदन से बहिर्गमन किया। इस मुद्दे पर सदन में दो दिनों तक गर्मा–गर्मी रही। वित्त मंत्री ने अपने बजट प्रस्तावों में यूरिया खाद के दामों में मात्र 50 पैसे प्रति किलोग्राम की वृद्धि का प्रस्ताव किया था जिससे उस पर सब्सिडी कम की जा सके। इस विरोध के परिणामस्वरूप, वित्त मंत्री यशवन्त सिन्हा को मूल्य वृद्धि के प्रस्तावों को वापस लेना पड़ा।

  (*हिन्दुस्तान टाइम्स*, 4–5 जून 1998)

- **22 फरवरी 1983:** एक ऐतिहासिक कदम उठाते हुए आज लोक सभा ने सर्वसम्मति से सरकारी काम–काज को स्थगित करने तथा असम पर बहस को प्राथमिकता देने का निर्णय लिया। गृहमंत्री पी सी सेठी ने बयान दिया "असम में रहने वाले सभी समुदायों और समूहों के बीच सद्भाव कायम करने के लिए मैं अलग–अलग विचार और नीतियों से प्रतिबद्धता रखने वाले आप सभी सदस्यों का सहयोग चाहता हूँ। यह समय विवाद का नहीं वरन घाव पर मरहम लगाने का है।"

  (*हिन्दुस्तान टाइम्स*, 22 फरवरी 1983)

- लोक सभा में काँग्रेस सदस्यों ने आंध्र प्रदेश में हरिजनों के उत्पीड़न के प्रति विरोध जताया।

  (द *हिन्दू*, 3 मार्च 1985)

संसद में दो सदनों की क्या आवश्यकता है?

हमारी राष्ट्रीय विधायिका का नाम संसद है। राज्यों की विधायिकाओं को विधान मंडल कहते हैं। भारतीय संसद में दो सदन हैं। जब किसी विधायिका में दो सदन होते हैं, तो उसे द्वि–सदनात्मक विधायिका कहते हैं। भारतीय संसद के एक सदन को राज्य सभा तथा दूसरे को लोक सभा कहते हैं। संविधान ने राज्यों को एक–सदनात्मक या द्वि–सदनात्मक विधायिका स्थापित करने का विकल्प दिया है। अब केवल छह राज्यों में ही द्वि–सदनात्मक विधायिका है।

विविधताओं से परिपूर्ण बड़े देश प्रायः द्वि–सदनात्मक राष्ट्रीय विधायिका चाहते हैं, ताकि वे अपने समाज के सभी वर्गों और देश के सभी क्षेत्रों या भागों को समुचित प्रतिनिधित्व दे सकें। द्वि–सदनात्मक विधायिका का एक और लाभ यह है कि संसद के प्रत्येक निर्णय पर दूसरे सदन में पुनर्विचार हो जाता है। एक सदन द्वारा लिया गया

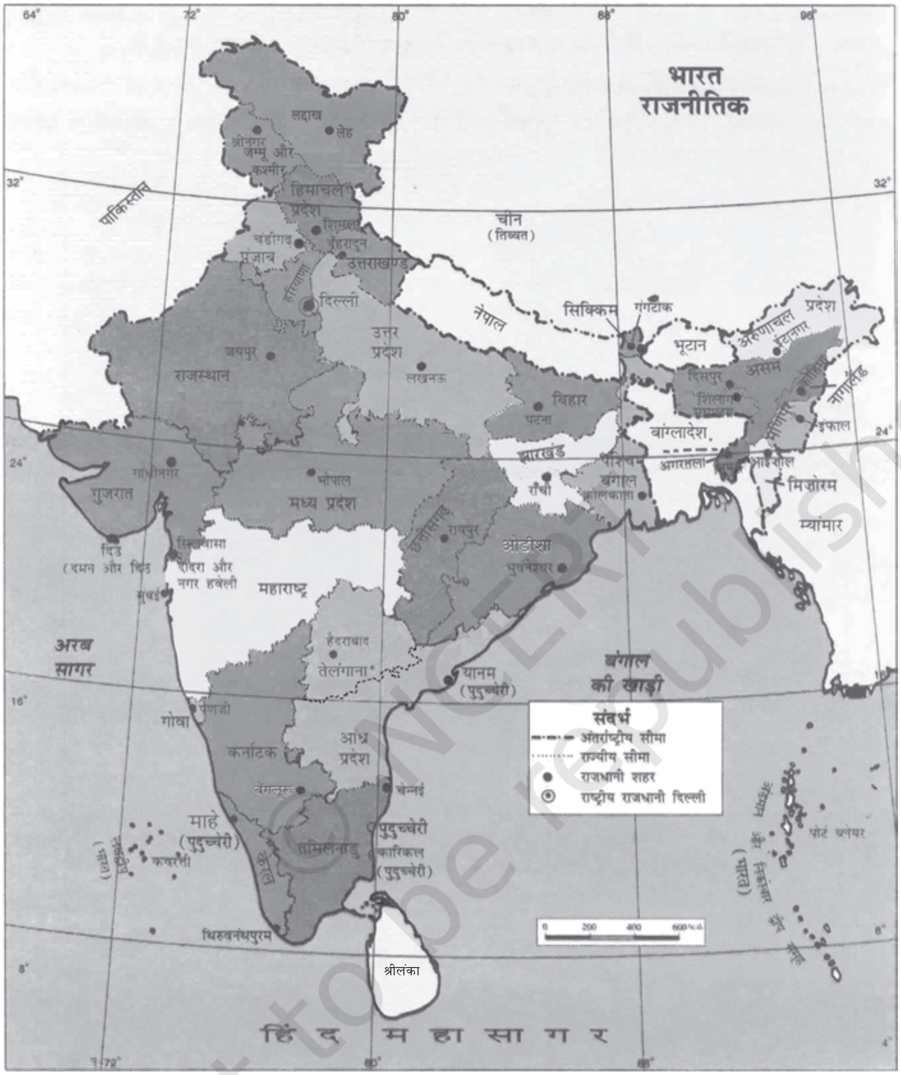

द्वि-सदनात्मक विधायिका वाले प्रांत निम्नलिखित हैं—

(i) आंध्र प्रदेश
(ii) बिहार
(iii) कर्नाटक
(iv) महाराष्ट्र
(v) तेलंगाना
(vi) उत्तर प्रदेश

© NCERT not to be republished

प्रत्येक निर्णय दूसरे सदन के निर्णय के लिए भेजा जाता है। इसका मतलब यह कि प्रत्येक विधेयक और नीति पर दो बार विचार होता है। इससे हर मुद्दे को दो बार जाँचने का मौका मिलता है। यदि एक सदन जल्दबाज़ी में कोई निर्णय ले लेता है तो दूसरे सदन में बहस के दौरान उस पर पुनर्विचार संभव हो पाता है।

"' उच्च सदन पुनर्विचार करने के उपयोगी काम को अंजाम दे सकता है। और "' इसके विचारों का तो महत्त्व हो सकता है पर मतों का नहीं "' जो लोग सक्रिय राजनीति की उठा-पटक से दूर हैं वे "' निचले सदन को सलाह दे सकते हैं।

पूर्णिमा बनर्जी
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड IX, पृष्ठ 33, 30 जुलाई 1949

राज्य सभा

संसद के प्रत्येक सदन में प्रतिनिधित्व का आधार अलग-अलग है। राज्य सभा राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। इसका निर्वाचन अप्रत्यक्ष विधि से होता है। किसी राज्य के लोग राज्य की विधान सभा के सदस्यों को चुनते हैं। फिर, राज्य विधान सभा के निर्वाचित सदस्य, राज्य सभा के सदस्यों को चुनते हैं।

द्वितीय सदन (राज्य सभा) में प्रतिनिधित्व के लिए दो सिद्धांतों का प्रयोग किया जा सकता है। एक तरीका यह हो सकता है कि देश के सभी क्षेत्रों को असमान आकार और जनसंख्या के बावजूद द्वितीय सदन में समान प्रतिनिधित्व दिया जाय। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि देश के विभिन्न क्षेत्रों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में असमान प्रतिनिधित्व दिया जाय। अर्थात्, द्वितीय सदन में ज़्यादा जनसंख्या वाले क्षेत्रों को ज़्यादा और कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों को कम प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

अमेरिका के द्वितीय सदन (सीनेट) में प्रत्येक राज्य को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। यह सभी राज्यों में समानता स्थापित करता है। लेकिन इसका अर्थ यह भी है कि छोटे राज्यों को बड़े राज्यों के बराबर ही प्रतिनिधित्व मिलेगा। हमारी राज्य सभा के

© NCERT not to be republished

लिए इस अमेरिकी प्रतिनिधित्व प्रणाली से अलग तरीका अपनाया गया है। संविधान की चौथी अनुसूची में प्रत्येक राज्य से निर्वाचित होने वाले सदस्यों की संख्या निर्धारित कर दी गई है।

यदि हम राज्य सभा में प्रतिनिधित्व के लिए 'अमेरिका की समान-प्रतिनिधित्व प्रणाली' का प्रयोग करें तो क्या होगा? 1998.12 लाख (लगभग 19.98 करोड़) जनसंख्या वाले उत्तर प्रदेश को 6.10 लाख जनसंख्या वाले सिक्किम के बराबर ही प्रतिनिधित्व मिलेगा। संविधान निर्माता ऐसी विसंगति से बचना चाहते थे। यहाँ ज़्यादा जनसंख्या वाले राज्यों को अधिक और कम जनसंख्या वाले राज्यों को कम प्रतिनिधित्व दिया गया है। इस प्रकार, ज़्यादा जनसंख्या वाले उत्तर प्रदेश को 31 तथा छोटे और कम जनसंख्या वाले सिक्किम को राज्य सभा में एक सीट दी गयी है।

राज्य सभा के सदस्यों को 6 वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है। उन्हें दुबारा निर्वाचित किया जा सकता है। राज्य सभा के सभी सदस्य अपना कार्यकाल एक साथ पूरा नहीं करते। प्रत्येक दो वर्ष पर राज्य सभा के एक तिहाई सदस्य अपना कार्यकाल पूरा करते हैं और इन एक तिहाई सीटों के लिए चुनाव होते हैं। इस तरह राज्य सभा कभी भी पूरी तरह भंग नहीं होती। अत: इसे संसद के स्थायी सदन के रूप में जानते

जर्मनी में द्वि-सदनात्मकता

जर्मनी में विधायिका द्वि-सदनात्मक है। दोनों सदनों को बुंदेस्टैग (फेडरल एसेंबली) और बुंदेसरैट (फेडरल कौंसिल) कहते हैं। एसेंबली का चुनाव प्रत्यक्ष और समानुपातिक प्रतिनिधित्व की एक मिली-जुली जटिल प्रक्रिया से चार वर्ष के लिए होता है।

जर्मनी के 16 संघीय राज्यों को फेडरल कौंसिल में प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। बुंदेसरैट की 69 सीटें राज्यों में जनसंख्या के अनुपात में बाँट दी जाती हैं। ये सभी सदस्य सामान्य रूप से राज्य सरकार में मंत्री होते हैं और उनका चुनाव नहीं होता वरन् वे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। जर्मनी के कानून के अनुसार इन सभी सदस्यों को एक टीम की भाँति अपने राज्य सरकार के निर्देशों के अनुसार वोट देना होता है। कभी-कभी, राज्यों में गठबंधन सरकार होने पर इन सदस्यों में सहमति नहीं बन पाती तब वे मतदान में भाग नहीं ले पाते।

बुंदेसरैट सभी कानूनी प्रस्तावों पर मतदान नहीं करती, लेकिन वे सभी नीतिगत मुद्दे जिन पर संघीय राज्यों को समवर्ती-शक्तियाँ प्राप्त हैं और जिन विषयों में संघीय निर्देशों को लागू कराने की ज़िम्मेदारी राज्य सरकारों पर हो, वे सभी मुद्दे बूंदेसरैट द्वारा पारित होने चाहिए। बूंदेसरैट ऐसे विधेयकों को 'वीटो' भी कर सकती है।

© NCERT not to be republished

हैं। इस व्यवस्था का लाभ यह है कि जब लोक सभा भंग होती है और चुनाव होने बाकी होते हैं, तब राज्य सभा की बैठक बुलाई जा सकती है और ज़रूरी मामलों को निपटाया जा सकता है।

निर्वाचित सदस्यों के अतिरिक्त राज्य सभा में 12 मनोनीत सदस्य होते हैं। जिन्होंने साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा के क्षेत्र में विशेष उपलब्धि हासिल की हो उन्हें राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाता है।

खुद करें — खुद सीखें

विभिन्न राज्यों के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या का पता लगाएँ। एक चार्ट बनाकर 2011 की जनगणना के अनुसार प्रत्येक राज्य की जनसंख्या तथा उस राज्य से निर्वाचित राज्य सभा के सदस्यों की संख्या दिखाएँ।

मुझे समझ में नहीं आता कि खिलाड़ी, कलाकार और वैज्ञानिकों को मनोनीत करने का प्रावधान क्यों है? वे किसका प्रतिनिधित्व करते हैं? और क्या वे वास्तव में राज्य सभा की कार्यवाही में कुछ खास योगदान दे पाते हैं?

लोक सभा

लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिए जनता सीधे सदस्यों को चुनती है। इसे प्रत्यक्ष निर्वाचन कहते हैं। लोक सभा चुनावों के लिए पूरे देश को और विधान सभा चुनावों के लिए किसी राज्य को लगभग समान जनसंख्या वाले निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाता है; चुनाव 'सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार' के आधार पर होता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के मत का मूल्य दूसरे व्यक्ति के मत के मूल्य के बराबर होता है। इस समय लोक सभा के 543 निर्वाचन क्षेत्र हैं। यह संख्या 1971 की जनगणना से चली आ रही है।

लोक सभा के लिए सदस्यों को 5 वर्ष के लिए चुना जाता है। लेकिन यदि कोई दल या दलों का गठबंधन सरकार न बना सके अथवा प्रधान मंत्री राष्ट्रपति को लोक सभा भंग कर नए चुनाव कराने की सलाह दे, तो लोक सभा को 5 वर्ष के पहले भी भंग किया जा सकता है।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- क्या आप मानते हैं कि राज्य सभा की संरचना ने भारत में राज्यों की स्थिति को संरक्षित किया है?
- क्या राज्य सभा के चुनाव अप्रत्यक्ष न होकर प्रत्यक्ष होने चाहिए? इससे क्या फायदा या नुकसान होगा?
- 1971 की जनगणना से लोक सभा में सीटों की संख्या नहीं बढ़ी है। क्या आप मानते हैं कि इसे बढ़ाना चाहिए? इसके लिए क्या आधार होना चाहिए?

संसद क्या करती है?

विधायिकाओं के क्या कार्य हैं? क्या संसद के दोनों सदनों के कार्य समान हैं? क्या दोनों सदनों की शक्तियों में कोई फर्क है?

कानून बनाने के अतिरिक्त, संसद के अन्य अनेक कार्य हैं। आइए इन कार्यों की सूची बनाएँ–

- **विधायी कामकाज**–संसद पूरे देश या देश के किसी भाग के लिए कानून बनाती है। कानून बनाने वाली सर्वोच्च संस्था होने के बावजूद संसद प्रायः कानूनों को केवल स्वीकृति देने मात्र का काम करती है।
  विधेयकों को तैयार करने का वास्तविक काम तो किसी मंत्री के निर्देशन में नौकरशाही करती है। विधेयक का उद्देश्य और संसद में उसे प्रस्तुत करने का समय मंत्रिमंडल तय करता है। कोई भी महत्त्वपूर्ण विधेयक बिना मंत्रिमंडल की स्वीकृति के संसद में पेश नहीं किया जाता। संसद के अन्य निजी सदस्य भी कोई विधेयक प्रस्तुत कर सकते हैं, पर बिना सरकार के समर्थन के ऐसे विधेयकों का पास होना संभव नहीं।
- **कार्यपालिका पर नियंत्रण तथा उसका उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना**–संसद का सबसे महत्त्वपूर्ण काम कार्यपालिका को उसके अधिकार क्षेत्र में सीमित रखने तथा जनता (जिसने उसे चुना है) के प्रति उसका उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना है। इस अध्याय में आगे हम इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे।
- **वित्तीय कार्य**–सरकार को बहुत-से काम करने पड़ते हैं। इन कामों पर धन

© NCERT not to be republished

खर्च होता है। यह धन कहाँ से आता है? प्रत्येक सरकार कर-वसूली के द्वारा अपने संसाधनों को बढ़ाती है। लेकिन, लोकतंत्र में संसद कराधान तथा सरकार द्वारा धन के प्रयोग पर नियंत्रण रखती है। यदि भारत सरकार कोई नया कर प्रस्ताव लाए तो उसे संसद की स्वीकृति लेनी पड़ती है। संसद की वित्तीय शक्तियाँ उसे सरकार के कार्यों के लिए धन उपलब्ध कराने का अधिकार देती हैं। सरकार को अपने द्वारा खर्च किए गए धन का हिसाब तथा प्रस्तावित आय का विवरण संसद को देना पड़ता है। संसद यह भी सुनिश्चित करती है कि सरकार न तो गलत खर्च करे और न ही ज़्यादा खर्च करे। संसद यह सब बजट और वार्षिक वित्तीय वक्तव्य के माध्यम से करती है।

कार्टून बूझें

3 अप्रैल 1955

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

संसद एक हाकिम है और यहाँ मंत्रिगण बड़े दीन-हीन लग रहे हैं। विभिन्न मंत्रालयों को धन आबंटित करने की संसद की शक्ति का यह परिणाम है।

- **प्रतिनिधित्व–**संसद देश के विभिन्न क्षेत्रीय, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक समूहों के अलग-अलग विचारों का प्रतिनिधित्व करती है।
- **बहस का मंच–**संसद देश में वाद-विवाद का सर्वोच्च मंच है। विचार-विमर्श करने की उसकी शक्ति पर कोई अंकुश नहीं है। सदस्यों को किसी भी विषय पर निर्भीकता से बोलने की स्वतंत्रता है। इससे संसद राष्ट्र के समक्ष आने वाले किसी एक या हर मुद्दे का विश्लेषण कर पाती है। यह विचार-विमर्श हमारी लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया की आत्मा है।

© NCERT not to be republished

- **संवैधानिक कार्य**—संसद के पास संविधान में संशोधन करने की शक्ति है। संसद के दोनों सदनों की संवैधानिक शक्तियाँ एक समान हैं। प्रत्येक संविधान संशोधन का संसद के दोनों सदनों के द्वारा एक विशेष बहुमत से पारित होना ज़रूरी है।
- **निर्वाचन संबंधी कार्य**—संसद चुनाव संबंधी भी कुछ कार्य करती है। यह भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव करती है।
- **न्यायिक कार्य**—भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाए जाने के प्रस्तावों पर विचार करने के कार्य संसद के न्यायिक कार्य के अंतर्गत आते हैं।

राज्य सभा की शक्तियाँ

ऊपर हमने संसद द्वारा किए जाने वाले कार्यों का अध्ययन किया। लेकिन, द्विसदनात्मक विधायिका में दोनों सदनों की शक्तियों में कुछ अंतर होता है। नीचे के दोनों चार्टों को ध्यान से देखें। एक में लोक सभा और दूसरे में राज्य सभा की शक्तियों की सूची दी गई है।

लोक सभा की शक्तियाँ–

- संघ सूची और समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाती है। धन विधेयकों और सामान्य विधेयकों को प्रस्तुत और पारित करती है।
- कर-प्रस्तावों, बजट और वार्षिक वित्तीय वक्तव्यों को स्वीकृति देती है।
- प्रश्न पूछ कर, पूरक प्रश्न पूछ कर, प्रस्ताव लाकर और अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से कार्यपालिका को नियंत्रित करती है।
- संविधान में संशोधन करती है।
- आपात्काल की घोषणा को स्वीकृति देती है।
- राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव करती है तथा उन्हें और सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटा सकती है।
- समिति और आयोगों का गठन करती है और उनके प्रतिवेदनों पर विचार करती है।

राज्य सभा की शक्तियाँ–

- सामान्य विधेयकों पर विचार कर उन्हें पारित करती है और धन विधेयकों में संशोधन प्रस्तावित करती है।
- संवैधानिक संशोधनों को पारित करती है।
- प्रश्न पूछ कर तथा संकल्प और प्रस्ताव प्रस्तुत करके कार्यपालिका पर नियंत्रण करती है।
- राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव में भागीदारी करती है तथा उन्हें और सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटा सकती है। उपराष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव केवल राज्य सभा में ही लाया जा सकता है।
- यह संसद को राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दे सकती है।

© NCERT not to be republished

राज्य सभा की विशेष शक्तियाँ

आप जानते हैं कि राज्य सभा राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था है। इसका उद्देश्य राज्य के हितों (शक्तियों) का संरक्षण करना है। इसलिए, राज्य के हितों को प्रभावित करने वाला प्रत्येक मुद्दा इसकी सहमति और स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि केंद्र सरकार राज्य सूची के किसी विषय (जिस पर केवल राज्य की विधान सभा कानून बना सकती है) को, राष्ट्र हित में, संघीय सूची या समवर्ती सूची में हस्तांतरित करना चाहे, तो उसमें राज्य सभा की स्वीकृति आवश्यक है। इस प्रावधान से राज्य सभा की शक्ति बढ़ती है। लेकिन अनुभव के आधार पर तो यही लगता है कि राज्य सभा के सदस्य अपने राज्यों से अधिक अपने-अपने दलों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

लोक सभा की विशेष शक्तियाँ–कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं जिनका प्रयोग केवल लोक सभा ही कर सकती है। केवल लोक सभा में ही धन विधेयक प्रस्तुत किए जा सकते हैं और वही उसे संशोधित या अस्वीकृत कर सकती है। मंत्रिपरिषद् केवल लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है, राज्य सभा के प्रति नहीं। अतः राज्य सभा सरकार की आलोचना तो कर सकती है पर उसे हटा नहीं सकती।

तो लोकसभा का खजाने पर नियंत्रण है! इसलिए वह ज़्यादा शक्तिशाली है।

क्या आप बता सकते हैं कि ऐसा क्यों? राज्य सभा को जनता नहीं बल्कि विधायक चुनते हैं। अतः संविधान ने राज्य सभा को लोक सभा के बराबर शक्तियाँ नहीं दीं। संविधान द्वारा अपनायी गई लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता के पास अंतिम शक्ति होती है। इस तर्क के अनुसार जनता के द्वारा प्रत्यक्ष विधि से निर्वाचित प्रतिनिधियों के पास ही सरकार को हटाने और वित्त पर नियंत्रण रखने की शक्ति होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त, सामान्य और संवैधानिक विधेयकों को पारित करने, राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने तथा उपराष्ट्रपति हो हटाने आदि के संबंध में लोक सभा और राज्य सभा की शक्तियाँ समान हैं।

संसद कानून कैसे बनाती है?

संसद का प्रमुख कार्य अपनी जनता के लिए कानून बनाना है। कानून बनाने के लिए एक निश्चित प्रक्रिया अपनाई जाती है। कानून बनाने की विधियों में से कुछ का उल्लेख संविधान में किया गया है, लेकिन कानून बनाने की कुछ विधियाँ कालक्रम में लगातार पालन किए जाने के कारण स्वीकार कर

ली गई हैं। कानून बनने की प्रक्रिया में किसी विधेयक को कई अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। इन अवस्थाओं पर गौर करें। आपको साफ-साफ पता लगेगा कि कानून बनाने की प्रक्रिया तकनीकी और कठिन है।

प्रस्तावित कानून के प्रारूप को विधेयक कहते हैं। विधेयक कई तरह के हो सकते

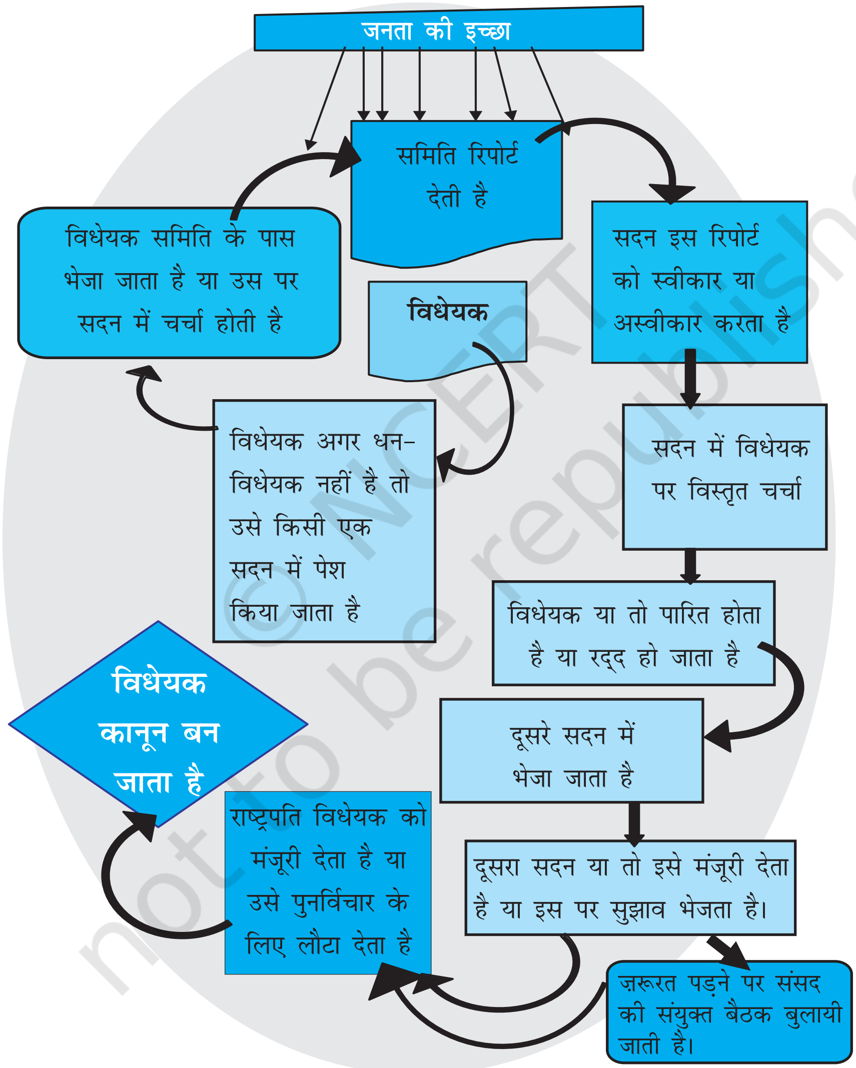

हैं। मंत्री के अतिरिक्त कोई और सदस्य विधेयक पेश करे तो ऐसे विधेयक को 'निजी सदस्यों का विधेयक' कहते हैं। मंत्री के द्वारा प्रस्तुत विधेयक को सरकारी विधेयक कहते हैं। विधेयक जिन चरणों से होकर पारित होता है, आइए उसे देखें।

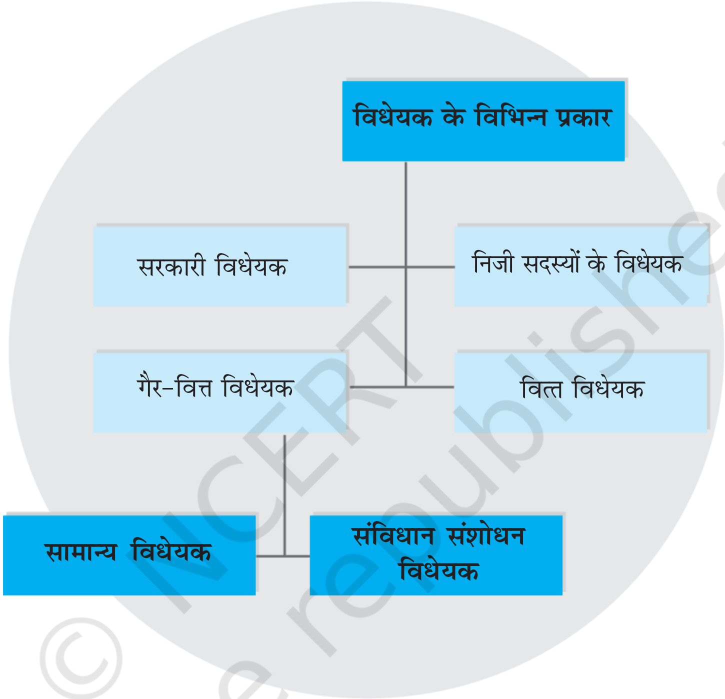

संसद में विधेयक प्रस्तुत किए जाने से पहले ही इस बात पर काफी बहस होती है कि उस विधेयक की क्या ज़रूरत है। कोई राजनीतिक दल अपने चुनावी वायदों को पूरा करने या आगामी चुनावों को जीतने के इरादे से किसी विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए सरकार पर दबाव डाल सकता है। अनेक हित-समूह, मीडिया और नागरिक संगठन भी किसी विधेयक को लाने के लिए सरकार पर दबाव डाल सकते हैं। अतः कानून बनाना केवल एक विधायी प्रक्रिया ही नहीं बल्कि राजनीतिक प्रक्रिया भी है। विधेयक बनाने में अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता है, जैसे- कानून को लागू करने के लिए ज़रूरी संसाधनों को कहाँ से जुटाया जाएगा, विधेयक का कितना समर्थन और विरोध होगा, प्रस्तावित कानून से सत्तारूढ़ दल की चुनावी संभावनाओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा आदि। खास तौर पर आज के गठबंधन सरकारों के युग में, सरकार द्वारा प्रस्तावित विधेयक को गठबंधन के सभी घटक दलों का भी समर्थन प्राप्त होना चाहिए। इन व्यावहारिक बातों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कानून बनाने का निर्णय लेने से पहले मंत्रिमंडल इन सभी बातों पर विचार करता है।

© NCERT not to be republished

एक बार जब मंत्रिमंडल उस नीति को स्वीकृति दे देता है जिस पर कानून आधारित होता है, तब विधेयक का प्रारूप बनाने का कार्य शुरू होता है। विधेयक जिस मंत्रालय से संबद्ध होता है, वही मंत्रालय उसका प्रारूप बनाता है। उदाहरण के लिए, लड़कियों के विवाह की उम्र यदि 18 वर्ष से बढ़ा कर 21 वर्ष करनी है, तो इसका प्रारूप विधि मंत्रालय बनाएगा। इसमें महिला और बाल कल्याण मंत्रालय की भी भागीदारी हो सकती है।

संसद के किसी भी सदन – लोक सभा या राज्य सभा में कोई भी सदस्य इस विधेयक को पेश कर सकता है (जिस विषय का विधेयक हो उस विषय से जुड़ा मंत्री ही अकसर विधेयक पेश करता है)। किसी धन विधेयक को केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। लोक सभा में पारित होने के बाद उसे राज्य सभा में भेज दिया जाता है।

विधेयकों पर विचार–विमर्श अधिकतर संसदीय समितियों में होता है। समिति की सिफारिशों को सदन को भेज दिया जाता है। इन समितियों में सभी संसदीय दलों को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। इसी कारण इन समितियों को 'लघु विधायिका' भी कहते हैं। यह कानून निर्माण की प्रक्रिया का दूसरा चरण है। तीसरे और अंतिम चरण में विधेयक पर मतदान होता है। जब कोई सामान्य विधेयक एक सदन द्वारा पारित कर दिया जाता है तब उसे दूसरे सदन में भेज दिया जाता है; दूसरे सदन में भी वह इसी प्रक्रिया से गुजरता है।

जैसा आप जानते हैं कि किसी विधेयक को लागू होने के लिए इसका दोनों सदनों में पास होना ज़रूरी है। लेकिन, यदि प्रस्तावित विधेयक पर दोनों सदनों के बीच मतभेद हों तो उसे संसद के संयुक्त अधिवेशन के माध्यम से सुलझाने की कोशिश की जाती है। पहले जब कभी भी ऐसे मतभेदों को सुलझाने के लिए संसद का संयुक्त अधिवेशन बुलाया गया, निर्णय हमेशा ही लोक सभा के पक्ष में गया है।

लेकिन धन विधेयक के मामले में, राज्य सभा उसे या तो स्वीकार कर सकती है या संशोधन प्रस्तावित कर सकती है, लेकिन वह धन विधेयक को अस्वीकार नहीं कर सकती है। यदि राज्य सभा 14 दिनों तक उस पर कोई निर्णय न ले तो उसे राज्य सभा के द्वारा पारित मान लिया जाता है। विधेयक के बारे में राज्य सभा द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को लोक सभा मान भी सकती है और नहीं भी।

कार्टून बूझें

ठीक है! बहस नहीं करते हैं। बात को आपसी सहमति से सुलझाते हैं।

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

तुम विधेयक का समर्थन करना और मैं उसका विरोध करूँगा।

© NCERT not to be republished

अनुच्छेद 109–
धन विधेयकों के संबंध में विशेष प्रक्रिया-1
धन विधेयक राज्य सभा
में पेश नहीं किया जाएगा।

जब कोई विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है तब उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद वह विधेयक कानून बन जाता है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

कानून बनाने की विधि के अध्ययन के बाद, क्या आपको लगता है कि संसद विधेयकों पर विस्तृत चर्चा के लिए पर्याप्त समय दे सकती है? यदि नहीं; तो इस समस्या के समाधान के लिए आप क्या सुझाव देंगे।

संसद कार्यपालिका को कैसे नियंत्रित करती है?

जिस दिल या दलों के गठबंधन को लोकसभा में बहुमत हासिल होता है उसी के सदस्यों को मिलाकर संसदीय लोकतंत्र में कार्यपालिका बनती है। संभव है कि बहुमत की ताकत पाकर यह कार्यपालिका अपनी शक्तियों का मनमाना प्रयोग करने लगे। ऐसी स्थिति में संसदीय लोकतंत्र मंत्रिमंडल को तानाशाही में बदल सकता है जिसमें मंत्रिमंडल जो कहेगा सदन को वही मानना पड़ेगा। जब संसद सक्रिय और सचेत होगी, तभी वह कार्यपालिका पर नियमित और प्रभावी नियंत्रण रख सकेगा। संसद अनेक विधियों का प्रयोग कर कार्यपालिका को नियंत्रित करती है। लेकिन इसके लिए ज़रूरी है कि सांसदों और विधायकों को जनप्रतिनिधियों के रूप में प्रभावी और निर्भीक रूप से काम करने की शक्ति और स्वतंत्रता हो। उदाहरण के

© NCERT not to be republished

लिए, विधायिका में कुछ भी कहने के बावजूद किसी सदस्य के विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। इसे संसदीय विशेषाधिकार कहते हैं। विधायिका के अध्यक्ष को संसदीय विशेषाधिकार के हनन के मामले में अंतिम निर्णय लेने की शक्ति होती है।

ऐसे विशेषाधिकारों का उद्देश्य यह है कि सांसद और विधायक अपनी जनता का ठीक से प्रतिनिधित्व कर सकें और कार्यपालिका पर प्रभावी नियंत्रण रख सकें। संसद यह नियंत्रण कैसे करती है? वह किन साधनों का प्रयोग करती है? क्या कार्यपालिका की ज़्यादतियों पर संसदीय नियंत्रण सफल है?

संसदीय नियंत्रण के साधन

संसदीय लोकतंत्र में विधायिका अनेक स्तरों पर कार्यपालिका की जवाबदेही को सुनिश्चित करने का काम करती है। यह काम नीति-निर्माण, कानून या नीति को लागू करने तथा कानून या नीति के लागू होने की बाद वाली अवस्था यानि किसी भी स्तर पर किया जा सकता है। विधायिका यह काम कई तरीकों से करती है –

- बहस और चर्चा
- कानूनों की स्वीकृति या अस्वीकृति
- वित्तीय नियंत्रण
- अविश्वास प्रस्ताव

बहस और वाद-विवाद–कानून निर्माण करने की प्रक्रिया में विधायिका के सदस्यों को कार्यपालिका द्वारा बनाई गई नीतियों और उसके क्रियान्वयन के तरीकों पर बहस करने का अवसर मिलता है। विधेयकों पर परिचर्चा के अतिरिक्त, सदन में सामान्य वाद-विवाद के दौरान भी विधायिका को कार्यपालिका पर नियंत्रण करने का अवसर मिल सकता है। ऐसे कुछ अवसर निम्न हैं- **प्रश्न काल**–संसद के अधिवेशन के समय प्रतिदिन 'प्रश्नकाल' आता है जिसमें मंत्रियों को सदस्यों के तीखे प्रश्नों का जवाब देना पड़ता है; **शून्यकाल**–इसमें सदस्य किसी भी महत्त्वपूर्ण मुद्दे को उठा सकते हैं पर मंत्री उसका उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं है और लोकहित के मामले में **आधे घंटे की चर्चा और स्थगन-प्रस्ताव** आदि।

इतने सारे 'स्टिंग ऑपरेशनों' के बाद क्या मंत्री अब भी कहीं भी कुछ भी बोलने को स्वतंत्र हैं?

'प्रश्नकाल' सरकार की कार्यपालिका और प्रशासकीय एजेंसियों पर निगरानी रखने का सबसे प्रभावी तरीका है। संसद के सदस्यों ने प्रश्नकाल में गहरी

मंत्री होना बड़ा कठिन काम है। यह तो रोज एक इम्तहान देने जैसा है।

रूचि दिखाई है और इस समय सदन में सबसे ज़्यादा उपस्थिति रहती है। ज़्यादातर प्रश्न लोक-अभिहित के विषयों जैसे मूल्य वृद्धि, अनाज की उपलब्धता, समाज के कमज़ोर वर्गों के विरुद्ध अत्याचार, दंगे, कालाबाज़ारी आदि पर सरकार से सूचनाएँ माँगने के लिए होते हैं। इसमें सदस्यों को सरकार की आलोचना करने तथा अपने निर्वाचन क्षेत्र की समस्याओं को उठाने का अवसर मिलता है। प्रश्नकाल के दौरान वाद-विवाद इतने तीखे हो जाते हैं कि अनेक सदस्यों द्वारा अपनी बात रखने के लिए प्राय: ऊँची आवाज़ में बोलना, अध्यक्ष के आसन के पास चले जाना तथा सदन से बहिर्गमन करने जैसी घटनाएँ देखी जा सकती हैं। इससे सदन का बहुत समय बर्बाद हो जाता है। लेकिन इसी के साथ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये सभी कदम सरकार से रियायत प्राप्त करने के राजनीतिक तरीके हैं और इससे कार्यपालिका का उत्तरदायित्व सुनिश्चित होता है।

कानूनों की स्वीकृति या अस्वीकृति

कानूनों को मंजूरी देने या नामंजूर करने का अधिकार भी संसद के पास होता है। इसके अधिकार के द्वारा भी संसद कार्यपालिका का नियंत्रण करती है। कोई भी विधेयक संसद की स्वीकृति के बाद ही कानून बन पाता है। जिस सरकार को विधायिका में मन-माफिक बहुमत होता है, उसके लिए संसदीय स्वीकृति प्राप्त करना कठिन नहीं। लेकिन यह मान कर नहीं चला जा सकता है कि यह स्वीकृति मिल ही जाएगी। इस सहमति के लिए शासक दल या गठबंधन के विभिन्न सदस्यों अथवा सरकार और विपक्ष के बीच गंभीर मोल-तोल और समझौते होते हैं। यदि सरकार के पास लोक सभा में तो बहुमत हो पर राज्य सभा में न हो (जैसा कि 1977 में जनता पार्टी और 2000 में राजग सरकारों के दौरान हुआ), तब संसद के दोनों सदनों की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए सरकार को काफी रियायतें देनी पड़ती हैं। अनेक विधेयकों मसलन लोकपाल विधेयक, आतंकवाद निरोधक विधेयक (2000)- को राज्य सभा ने अस्वीकृत कर दिया।

वित्तीय नियंत्रण

जैसा पहले कहा जा चुका है, सरकार के कार्यक्रमों को लागू करने के लिए वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था बजट के द्वारा की जाती है। संसदीय स्वीकृति के लिए बजट बनाना और उसे पेश करना सरकार की संवैधानिक जिम्मेदारी है। इस जिम्मेदारी के कारण विधायिका को कार्यपालिका के

© NCERT not to be republished

'खजाने' पर नियंत्रण करने का अवसर मिल जाता है। सरकार के लिए संसाधन स्वीकृत करने से विधायिका मना कर सकती है। ऐसा इसलिए नहीं हो पाता है क्योंकि कार्यपालिका को विधायिका में बहुमत प्राप्त होता है। फिर भी, धन स्वीकृत करने से पहले लोक सभा सरकार द्वारा धन माँगने के कारणों पर चर्चा कर सकती है। वह भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक और संसद की लोक-लेखा समिति की रिपोर्ट के आधार पर धन के दुरूपयोग के मामलों की जाँच कर सकती है। लेकिन संसदीय नियंत्रण का एकमात्र उद्देश्य सरकारी धन के सदुपयोग को सुनिश्चित करना नहीं होता। वित्तीय नियंत्रण द्वारा विधायिका सरकार की नीतियों पर भी नियंत्रण करती है।

अविश्वास प्रस्ताव

संसद द्वारा कार्यपालिका को उत्तरदायी बनाने का सबसे सशक्त हथियार 'अविश्वास प्रस्ताव' है। लेकिन जब तक सरकार को अपने दल अथवा सहयोगी दलों का बहुमत प्राप्त हो तब तक सरकार को हटाने की सदन की यह शक्ति वास्तविक कम, काल्पनिक ज़्यादा होती है।

लेकिन, सन् 1989 के बाद से अपने प्रति सदन के अविश्वास के कारण अनेक सरकारों को त्यागपत्र देना पड़ा। इनमें से प्रत्येक सरकार ने लोक सभा का विश्वास खोया क्योंकि वह अपने गठबंधन के सहयोगी दलों का समर्थन बनाए न रख सकी।

इस प्रकार, संसद कार्यपालिका को प्रभावी ढंग से नियंत्रित कर सकती है और एक उत्तरदायी सरकार का होना सुनिश्चित कर सकती है। परंतु इसके लिए ज़रूरी है कि सदन के पास पर्याप्त समय हो, सदस्य बहस में रुचि रखते हों और उसमें प्रभावशाली ढंग से भाग लें और सरकार तथा विपक्ष में आपस में समझौता करने की इच्छा हो। पिछले दो दशकों में लोक सभा और राज्य विधान सभाओं के अधिवेशनों तथा इनमें होने वाली बहस पर खर्च किए जा रहे समय में उत्तरोत्तर गिरावट आई है। इसके अतिरिक्त, संसद के दोनों सदनों में गणपूर्ति (कोरम) का अभाव और विपक्ष द्वारा अधिवेशनों के बहिष्कार जैसी समस्याएँ भी रही हैं, जिससे वाद-विवाद के द्वारा कार्यपालिका को नियंत्रित करने की सदन की शक्ति प्रभावित हुई है।

खुद करें—खुद सीखें

दूरदर्शन पर संसद के 'आँखों देखे प्रसारण' को तीन दिन तक लगातार देखिए। या इस संबंध में समाचार पत्रों में प्रकाशित खबरों को तीन दिनों तक एकत्र करें। इससे एक वालपेपर/पोस्टर तैयार करें। ऐसा करने में उन मुद्दों पर ध्यान दें जिन पर बहस हुई, अध्यक्ष की क्या भूमिका रही, कैसे प्रश्न पूछे गए, राजनीतिक दलों तथा आपके निर्वाचन क्षेत्र

© NCERT not to be republished

के प्रतिनिधि की क्या भूमिका रही, वाद-विवाद में उठे मुद्दों की प्रकृति कैसी थी–क्या वे सभी राष्ट्रीय थे या क्षेत्रीय?

इरफ़ान

सरकार से विरोध दर्ज कराने का एक आम तरीका है सदन से 'वाकआउट' करना, क्या यह काम ज़रूरत से ज़्यादा हुआ है?

संसदीय समितियाँ क्या करती हैं?

विभिन्न विधायी कार्यों के लिए समितियों का गठन संसदीय कामकाज का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। ये समितियाँ केवल कानून बनाने में ही नहीं, वरन् सदन के दैनिक कार्यों में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। चूँकि संसद केवल अपने अधिवेशन के दौरान ही बैठती है इसलिए उसके पास अत्यंत सीमित समय होता है। किसी कानून को बनाने के लिए उससे जुड़े विषय का गहन अध्ययन करना पड़ता है। इसके लिए उस पर ज़्यादा ध्यान और समय देने की ज़रूरत पड़ती है। इसके अतिरिक्त और भी महत्त्वपूर्ण कार्य होते हैं जैसे विभिन्न मंत्रालयों की अनुदान माँगों का अध्ययन, विभिन्न विभागों के द्वारा किए गए खर्चों की जाँच, भ्रष्टाचार के मामलों की पड़ताल आदि। संसदीय समितियाँ यह सब कार्य करती हैं। 1983 से भारत में संसद की स्थायी समितियों की प्रणाली विकसित की गई है। विभिन्न विभागों से संबंधित ऐसी 20 समितियाँ हैं। स्थायी समितियाँ विभिन्न विभागों के कार्यों, उनके बजट, खर्चे, तथा उनसे संबंधित विधेयकों की देखरेख करती हैं।

स्थायी समितियों के अतिरिक्त, अपने देश में संयुक्त संसदीय समितियों का भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन समितियों में संसद के दोनों सदनों के सदस्य होते हैं। संयुक्त संसदीय समितियों का गठन किसी विधेयक पर संयुक्त चर्चा अथवा वित्तीय अनियमितताओं की जाँच के लिए किया जा सकता है।

समितियों की इस व्यवस्था ने संसद का कार्यभार हल्का कर दिया है। अनेक महत्त्वपूर्ण विधेयकों को

© NCERT not to be republished

समितियों को भेजा गया। संसद ने समितियों द्वारा किए गए काम में छिट-पुट बदलाव करके उसको मंज़ूरी दे दी है। कानूनी नज़रिए से देखें तो संसद की मंज़ूरी के बिना तो बजट पास हो सकता है और न ही कोई विधेयक कानून बन सकता है। किंतु, यह बात भी सच है कि समितियों द्वारा दिए गए सुझावों को संसद शायद ही कभी नामंज़ूर करती है।

"विधायिका की प्रकृति ऐसी है कि उस पर मात्र प्रक्रिया संबंधी बंधन हैं। किन्तु सारतः उस पर कोई बंधन नहीं, संसद या विधायिका की संप्रभुता पर कोई सीमा नहीं बाँधी गई है।..."

एन. वी. गाडगिल
सी.ए.डी., खंड XI, पृष्ठ 659, 18 नवंबर 1949

संसद स्वयं को कैसे नियंत्रित करती है?

हम पहले पढ़ चुके हैं कि संसद बहस-मुबाहिसे का मंच है। बहस-मुबाहिसे के ज़रिए ही संसद अपने सभी ज़रूरी काम को अंजाम देती है। यह सार्थक और अनुशासित ढंग से होना ज़रूरी है ताकि संसद की कार्यवाही आसानी से चले और उसकी गरिमा बनी रहे। खुद संविधान में संसद की कार्यवाही को सुचारु ढंग से चलने के लिए प्रावधान बनाए गए हैं। सदन का अध्यक्ष विधायिका की कार्यवाही के मामले में सर्वोच्च अधिकारी होता है।

अच्छा! तो कानून बनाने वालों पर भी कुछ कानून लागू होते हैं?

इरफ़ान

कार्टून बूझें

इन सदस्यों ने 'वाकआउट' नहीं किया है। इन्हें अध्यक्ष ने बाहर निकाला है। क्या ऐसी स्थिति अकसर आती है?

मुझे समझ में नहीं आता कि नेता अपना दल क्यों बदलते हैं? क्या वे कभी अपनी उस पार्टी में लौट कर आते भी हैं जो उन्होंने छोड़ी थी?

एक और तरीके से भी सदन का अध्यक्ष अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करता है। आपने शायद दलबदल निरोधक कानून के बारे में सुना होगा। विधायिका के अधिकतर सदस्य किसी न किसी दल के टिकट पर चुने जाते हैं। यदि चुने जाने के बाद वे अपनी पार्टी छोड़ना चाहें तो क्या होगा? स्वतंत्रता के काफी समय बाद तक यह समस्या बनी रही। अंततः दलों में इस बात पर आम सहमति बनी कि किसी दल के टिकट पर निर्वाचित विधायक या सांसद को दलबदल करने से रोका जाना चाहिए। इसके लिए 1985 में संविधान का 52वाँ संशोधन किया गया। इसे 'दलबदल निरोधक कानून' कहते हैं। इसे बाद में 91वें संविधान संशोधन द्वारा दुबारा संशोधित किया गया। सदन का अध्यक्ष दलबदल से संबंधित विवादों पर अंतिम निर्णय लेता है। यदि यह सिद्ध हो जाय कि किसी सदस्य ने 'दलबदल' किया है, तो उसकी सदन की सदस्यता समाप्त हो

© NCERT not to be republished

जाती है। इसके अतिरिक्त, ऐसे दलबदलू को किसी भी राजनीतिक पद (जैसे मंत्री) के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाता है।

दलबदल क्या है? यदि कोई सदस्य अपने दल के नेतृत्व के आदेश के बावजूद सदन में उपस्थित न हो या दल के निर्देश के विपरीत सदन में मतदान करे अथवा स्वेच्छा से दल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दे तो उसे 'दलबदल' कहते हैं।

विगत 20 वर्षों का अनुभव बताता है कि 'दलबदल निरोधक कानून' दलबदल को रोकने में सफल नहीं हुआ। लेकिन इसने किसी दल के प्रधान नेता और अध्यक्षों को विधायिका के सदस्यों के विरुद्ध अतिरिक्त शक्तियाँ प्रदान की हैं।

निष्कर्ष

क्या आपने संसद की कार्यवाही का टेलीविजन पर 'आँखों देखा' प्रसारण देखा है? आपको सदन में इन्द्रधनुष की तरह रंग-बिरंगी वेश-भूषाएँ दिखाई देगीं जो देश के विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं। सदन की कार्यवाही के दौरान सदस्य भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते हैं। वे विभिन्न जाति, धर्म और संप्रदायों से आते हैं। वे प्राय: एक-दूसरे का प्रबल विरोध करते हैं। अनेक अवसरों पर ऐसा लगता है कि वे देश का समय और धन बर्बाद कर रहे हैं। लेकिन पीछे इस अध्याय में आपने देखा कि यही सांसद कार्यपालिका को प्रभावी ढंग से नियंत्रित भी कर सकते हैं। वे हमारे समाज के विभिन्न वर्गों के हितों की भी अभिव्यक्ति कर सकते हैं। अपनी खास बनावट के कारण संसद सरकार के सभी अंगों में सबसे ज़्यादा प्रतिनिध्यात्मक है। संसद में विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि वाले सदस्यों की मौजूदगी होती है। इससे संसद ज़्यादा प्रतिनिध्यात्मक हो जाती है। इस कारण संसद जनता की इच्छाओं के अनुरूप चलती और जनता की आकांक्षाओं के प्रति संवेदनशील होकर काम करती है।

संसदीय लोकतंत्र में जनता की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली यह विधायिका अत्यंत शक्तिशाली और उत्तरदायी संस्था है। यही संसद की लोकतांत्रिक शक्ति का आधार है।

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. आलोक मानता है कि किसी देश को कारगर सरकार की ज़रूरत होती है जो जनता की भलाई करे। अतः यदि हम सीधे-सीधे अपना प्रधानमंत्री और मंत्रिगण चुन लें और शासन का काम उन पर छोड़ दें, तो हमें विधायिका की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। क्या आप इससे सहमत हैं? अपने उत्तर का कारण बताएँ।

2. किसी कक्षा में द्वि-सदनीय प्रणाली के गुणों पर बहस चल रही थी। चर्चा में निम्नलिखित बातें उभरकर सामने आयीं। इन तर्कों को पढ़िए और इनसे अपनी सहमति-असहमति के कारण बताइए।
   (क) नेहा ने कहा कि द्वि-सदनीय प्रणाली से कोई उद्देश्य नहीं सधता।
   (ख) शमा का तर्क था कि राज्य सभा में विशेषज्ञों का मनोनयन होना चाहिए।
   (ग) त्रिदेव ने कहा कि यदि कोई देश संघीय नहीं है, तो फिर दूसरे सदन की ज़रूरत नहीं रह जाती।

3. लोकसभा कार्यपालिका को राज्यसभा की तुलना में क्यों कारगर ढंग से नियंत्रण में रख सकती है?

4. लोकसभा कार्यपालिका पर कारगर ढंग से नियंत्रण रखने की नहीं बल्कि जनभावनाओं और जनता की अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति का मंच है। क्या आप इससे सहमत हैं? कारण बताएँ।

5. नीचे संसद को ज़्यादा कारगर बनाने के कुछ प्रस्ताव लिखे जा रहे हैं। इनमें से प्रत्येक के साथ अपनी सहमति या असहमति का उल्लेख करें। यह भी बताएँ कि इन सुझावों को मानने के क्या प्रभाव होंगे?
   (क) संसद को अपेक्षाकृत ज़्यादा समय तक काम करना चाहिए।
   (ख) संसद के सदस्यों की सदन में मौजूदगी अनिवार्य कर दी जानी चाहिए।
   (ग) अध्यक्ष को यह अधिकार होना चाहिए कि सदन की कार्यवाही में बाधा पैदा करने पर सदस्य को दंडित कर सकें।

6. आरिफ यह जानना चाहता था कि अगर मंत्री ही अधिकांश महत्त्वपूर्ण विधेयक प्रस्तुत करते हैं और बहुसंख्यक दल अकसर सरकारी विधेयक को पारित कर देता है, तो फिर कानून बनाने की प्रक्रिया में संसद की भूमिका क्या है? आप आरिफ को क्या उत्तर देंगे?

© NCERT not to be republished

7. आप निम्नलिखित में से किस कथन से सबसे ज़्यादा सहमत हैं? अपने उत्तर का कारण दें।
   (क) सांसद/विधायकों को अपनी पसंद की पार्टी में शामिल होने की छूट होनी चाहिए।
   (ख) दलबदल विरोधी कानून के कारण पार्टी के नेता का दबदबा पार्टी के सांसद/विधायकों पर बढ़ा है।
   (ग) दलबदल हमेशा स्वार्थ के लिए होता है और इस कारण जो विधायक/सांसद दूसरे दल में शामिल होना चाहता है उसे आगामी दो वर्षों के लिए मंत्री-पद के अयोग्य करार कर दिया जाना चाहिए।

8. डॉली और सुधा में इस बात पर चर्चा चल रही थी कि मौजूदा वक्त में संसद कितनी कारगर और प्रभावकारी है। डॉली का मानना था कि भारतीय संसद के कामकाज में गिरावट आयी है। यह गिरावट एकदम साफ दिखती है क्योंकि अब बहस-मुबाहिसे पर समय कम खर्च होता है और सदन की कार्यवाही में बाधा उत्पन्न करने अथवा वॉकआउट (बहिर्गमन) करने में ज़्यादा। सुधा का तर्क था कि लोकसभा में अलग-अलग सरकारों ने मुँह की खायी है, धराशायी हुई हैं। आप सुधा या डॉली के तर्क के पक्ष या विपक्ष में और कौन-सा तर्क देंगे?

9. किसी विधेयक को कानून बनने के क्रम में जिन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है उन्हें क्रमवार सजाएँ।
   (क) किसी विधेयक पर चर्चा के लिए प्रस्ताव पारित किया जाता है।
   (ख) विधेयक भारत के राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है – बताएँ कि वह अगर इस पर हस्ताक्षर नहीं करता/करती है, तो क्या होता है?
   (ग) विधेयक दूसरे सदन में भेजा जाता है और वहाँ इसे पारित कर दिया जाता है।
   (घ) विधेयक का प्रस्ताव जिस सदन में हुआ है उसमें यह विधेयक पारित होता है।
   (ङ) विधेयक की हर धारा को पढ़ा जाता है और प्रत्येक धारा पर मतदान होता है।
   (च) विधेयक उप-समिति के पास भेजा जाता है – समिति उसमें कुछ फेर-बदल करती है और चर्चा के लिए सदन में भेज देती है।
   (छ) संबद्ध मंत्री विधेयक की ज़रूरत के बारे में प्रस्ताव करता है।
   (ज) विधि-मंत्रालय का कानून-विभाग विधेयक तैयार करता है।

10. संसदीय समिति की व्यवस्था से संसद के विधायी कामों के मूल्यांकन और देखरेख पर क्या प्रभाव पड़ता है?

© NCERT not to be republished

अध्याय छः

न्यायपालिका

11103CH06

परिचय

आम तौर पर न्यायालय को विभिन्न व्यक्तियों या निजी संस्थाओं के आपसी विवादों को सुलझाने वाले पंच के रूप में देखा जाता है। लेकिन न्यायपालिका कुछ महत्त्वपूर्ण राजनैतिक कामों को भी अंजाम देती है। न्यायपालिका सरकार का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय वास्तव में विश्व के सबसे शक्तिशाली न्यायालयों में से एक है। 1950 से ही न्यायपालिका ने संविधान की व्याख्या और सुरक्षा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मौलिक अधिकारों वाले अध्याय में हम पढ़ ही चुके हैं कि अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायपालिका बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इस अध्याय को पढ़ कर आप निम्नलिखित बातों को जान सकेंगे –

- *न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ,*
- *अधिकारों की सुरक्षा में भारतीय न्यायपालिका की भूमिका,*
- *संविधान की व्याख्या में न्यायपालिका की भूमिका और*
- *भारत की संसद और न्यायपालिका के आपसी संबंध।*

© NCERT not to be republished

हमें स्वतंत्र न्यायपालिका क्यों चाहिए?

हर समाज में व्यक्तियों के बीच, समूहों के बीच और व्यक्ति समूह तथा सरकार के बीच विवाद उठते हैं। इन सभी विवादों को 'कानून के शासन के सिद्धांत' के आधार पर एक स्वतंत्र संस्था द्वारा हल किया जाना चाहिए। 'कानून के शासन' का भाव यह है कि धनी और गरीब, स्त्री और पुरुष तथा अगड़े और पिछड़े सभी लोगों पर एक समान कानून लागू हो। न्यायपालिका की प्रमुख भूमिका यह है कि वह 'कानून के शासन' की रक्षा और कानून की सर्वोच्चता को सुनिश्चित करे। न्यायपालिका व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करती है, विवादों को कानून के अनुसार हल करती है और यह सुनिश्चित करती है कि लोकतंत्र की जगह किसी एक व्यक्ति या समूह की तानाशाही न ले ले। इसके लिए ज़रूरी है कि न्यायपालिका किसी भी राजनीतिक दबाव से मुक्त हो।

स्वतंत्र न्यायपालिका का क्या अर्थ है? यह स्वतंत्रता कैसे सुनिश्चित की जाती है?

न्यायपालिका की स्वतंत्रता

सीधे-सरल शब्दों में, न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ है कि –

- सरकार के अन्य दो अंग-विधायिका और कार्यपालिका-न्यायपालिका के कार्यों में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाए ताकि वह ठीक ढंग से न्याय कर सकें।
- सरकार के अन्य अंग न्यायपालिका के निर्णयों में हस्तक्षेप न करें।
- न्यायाधीश बिना भय या भेदभाव के अपना कार्य कर सकें।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ स्वेच्छाचारिता या उत्तरदायित्व का अभाव नहीं है। न्यायपालिका देश की लोकतांत्रिक राजनीतिक संरचना का एक हिस्सा है। न्यायपालिका देश के संविधान, लोकतांत्रिक परंपरा और जनता के प्रति जवाबदेह है।

कार्टून बूझें

.... एक प्रसिद्ध वकील होने के नाते आपको यह जानकारी होनी चाहिए कि आपका बरताव, खंड-ग, उप-खंड जी अठारह को भारतीय दंड विधान की धारा नौ (ख) के साथ पढ़ने पर और इस तथ्य के बावजूद....

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

यह अदालत है। कृपया मुठ्ठी बाँधकर बहस न करें।

अध्याय दो में बताया गया मचल का मामला मुझे याद है। कहा जाता है कि इंसाफ में देरी करना इंसाफ से इन्कार करना है। किसी-न-किसी को इस सिलसिले में कुछ-न-कुछ करना ही चाहिए।

न्यायपालिका को स्वतंत्रता कैसे दी जा सकती है और उसे सुरक्षित कैसे बनाया जा सकता है? भारतीय संविधान ने अनेक उपायों के द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित की है। न्यायाधीशों की नियुक्तियों के मामले में विधायिका को सम्मिलित नहीं किया गया है। इससे यह सुनिश्चित किया गया कि इन नियुक्तियों में दलगत राजनीति की कोई भूमिका नहीं रहे। न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए किसी व्यक्ति को वकालत का अनुभव या कानून का विशेषज्ञ होना चाहिए। उस व्यक्ति के राजनीतिक विचार या निष्ठाएँ उसकी नियुक्ति का आधार नहीं बननी चाहिए।

न्यायाधीशों का कार्यकाल निश्चित होता है। वे सेवानिवृत्त होने तक पद पर बने रहते हैं। केवल अपवाद स्वरूप विशेष स्थितियों में ही न्यायाधीशों को हटाया जा सकता है। इसके अलावा, उनके कार्यकाल को कम नहीं किया जा सकता। कार्यकाल की सुरक्षा के कारण न्यायाधीश बिना भय या भेदभाव के अपना काम कर पाते हैं। संविधान में न्यायाधीशों को हटाने के लिए बहुत कठिन प्रक्रिया निर्धारित की गई है। संविधान निर्माताओं का मानना था कि हटाने की प्रक्रिया कठिन हो, तो न्यायपालिका के सदस्यों का पद सुरक्षित रहेगा।

न्यायपालिका विधायिका या कार्यपालिका पर वित्तीय रूप से निर्भर नहीं है। संविधान के अनुसार न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते के लिए विधायिका की स्वीकृति नहीं ली जाएगी। न्यायाधीशों के कार्यों और निर्णयों की व्यक्तिगत आलोचना नहीं की जा सकती। अगर कोई न्यायालय की अवमानना का दोषी पाया जाता है, तो न्यायपालिका को उसे दंडित करने का अधिकार है। माना जाता है कि इस अधिकार से न्यायाधीशों को सुरक्षा मिलेगी और कोई उनकी नाजायज आलोचना नहीं कर सकेगा। संसद न्यायाधीशों के आचरण पर केवल तभी चर्चा कर सकती है जब वह उनको हटाने के प्रस्ताव पर विचार कर रही हो। इससे न्यायपालिका आलोचना के भय से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से निर्णय करती है।

© NCERT not to be republished

खुद करें — खुद सीखें

अपनी कक्षा में निम्नलिखित विषयों पर वाद-विवाद का आयोजन करें।

आपकी राय में निम्नलिखित में से कौन-कौन न्यायाधीशों के निर्णय को प्रभावित करते हैं? क्या आप इन्हें ठीक मानते हैं?

- संविधान
- पहले लिए गए फ़ैसले
- अन्य अदालतों की राय
- जनमत
- मीडिया
- कानून की परंपराएँ
- कानून
- समय और कर्मचारियों की कमी
- सार्वजनिक आलोचना का भय
- कार्यपालिका द्वारा कार्रवाई का भय

न्यायाधीशों की नियुक्ति

न्यायाधीशों की नियुक्ति कभी भी राजनीतिक रूप से निर्विवाद नहीं रही है। यह राजनीतिक प्रक्रिया का एक हिस्सा है। यह बात अपने आप में महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश कौन हैं। इससे संविधान की व्याख्या पर फर्क पड़ सकता है। न्यायाधीश का राजनीतिक दर्शन क्या है? सक्रिय और मुखर न्यायपालिका के बारे में उसकी क्या राय है? नियंत्रित और प्रतिबद्ध न्यायपालिका के विषय में उसके क्या विचार हैं? इन सब बातों का प्रभाव लागू किए जाने वाले कानूनों पर पड़ता है। मंत्रिमंडल, राज्यपाल, मुख्यमंत्री और भारत के मुख्य न्यायाधीश–ये सभी न्यायिक नियुक्ति की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

भारत के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के मामले में वर्षों से परंपरा बन गई है कि सर्वोच्च न्यायालय के सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश को इस पद पर नियुक्त किया जाएगा। लेकिन इस परंपरा को दो बार तोड़ा भी गया है। 1973 में तीन वरिष्ठ न्यायाधीशों को छोड़कर न्यायमूर्ति ए एन रे को भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। फिर 1975 में न्यायमूर्ति एच आर खन्ना को पीछे छोड़ते हुए न्यायमूर्ति एम एच बेग की नियुक्ति की गई।

मेरा तो सिर चकरा रहा है और कुछ समझ में नहीं आ रहा। लोकतंत्र में आप प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति तक की आलोचना कर सकते हैं, न्यायाधीशों की क्यों नहीं? और फिर, यह अदालत की अवमानना क्या बला है? क्या मैं ये सवाल करूँ तो मुझे 'अवमानना' का दोषी माना जाएगा?

© NCERT not to be republished

मेरा ख्याल है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति में मंत्रिपरिषद् की बात को ज़्यादा तरजीह दी जानी चाहिए या फिर यह मान लें कि न्यायपालिका अपनी नियुक्ति आप ही करने वाला निकाय है।

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश की सलाह से करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि नियुक्तियों के संबंध में वास्तविक शक्ति मंत्रिपरिषद् के पास है। फिर मुख्य न्यायाधीश से सलाह का क्या महत्त्व है?

1982 से 1998 के बीच यह विषय बार-बार सर्वोच्च न्यायालय के सामने आया। शुरू में न्यायालय का विचार था कि मुख्य न्यायाधीश की भूमिका पूरी तरह से सलाहकार की है। लेकिन बाद में न्यायालय ने माना कि मुख्य न्यायाधीश की सलाह राष्ट्रपति को ज़रूर माननी चाहिए। आखिरकार सर्वोच्च न्यायालय ने एक नई व्यवस्था की। इसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अन्य चार वरिष्ठतम् न्यायाधीशों की सलाह से कुछ नाम प्रस्तावित करेगा और इसी में से राष्ट्रपति नियुक्तियाँ करेगा। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने नियुक्तियों की सिफ़ारिश के संबंध में सामूहिकता का सिद्धांत स्थापित किया। इसी कारण आजकल नियुक्तियों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीशों के समूह का ज़्यादा प्रभाव है। इस तरह न्यायपालिका की नियुक्ति में सर्वोच्च न्यायालय और मंत्रिपरिषद् महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

न्यायाधीशों को पद से हटाना

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को उनके पद से हटाना काफी कठिन है। कदाचार साबित होने अथवा अयोग्यता की दशा में ही उन्हें पद से हटाया जा सकता है। न्यायाधीश के विरुद्ध आरोपों पर संसद के एक विशेष बहुमत की स्वीकृति ज़रूरी होती है। क्या आप को याद है कि यह विशेष बहुमत क्या है? इसे हमने चुनाव वाले अध्याय में पढ़ा है। इससे स्पष्ट है कि न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया अत्यंत कठिन है और जब तक संसद के सदस्यों में आम सहमति न हो तब तक किसी न्यायाधीश को हटाया नहीं जा सकता। यह भी गौरतलब है कि जहाँ उनकी नियुक्ति में कार्यपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका है वहीं उनको हटाने की शक्ति विधायिका के पास है। इसके द्वारा सुनिश्चित किया गया है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता बची रहे और शक्ति-संतुलन भी बना रहे। अब तक संसद के पास

© NCERT not to be republished

किसी न्यायाधीश को हटाने का केवल एक प्रस्ताव विचार के लिए आया है। इस मामले में हालाँकि दो-तिहाई सदस्यों ने प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया, लेकिन न्यायाधीश को हटाया नहीं जा सका क्योंकि प्रस्ताव पर सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत प्राप्त न हो सका।

न्यायाधीश को हटाने का असफल प्रयास

1991 में पहली बार संसद के 108 सदस्यों ने सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश को हटाने के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किए। न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी पर आरोप था कि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में उन्होंने वित्तीय अनियमितता की। संसद ने उन्हें हटाने की प्रक्रिया शुरू की। इसके एक वर्ष बाद 1992 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की एक उच्च स्तरीय जाँच समिति ने न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश रहते 'सार्वजनिक धन का निजी उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करने और संवैधानिक नियमों की धज्जी उड़ाने के कारण नैतिक पतन... तथा पद का जान-बूझकर गंभीर दुरुपयोग करने का दोषी पाया। इतने कठोर आरोपों के बाद भी रामास्वामी पर संसद में महाभियोग सिद्ध न हो सका। महाभियोग के प्रस्ताव के पक्ष में सदन में मौजूद और मतदान करने वाले सदस्यों के ज़रूरी दो-तिहाई मत तो पड़े लेकिन काँग्रेस पार्टी ने सदन में मतदान में भाग नहीं लिया। अत: प्रस्ताव को सदन की कुल सदस्य संख्या के आधे का समर्थन नहीं मिल पाया।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- न्यायपालिका की स्वतंत्रता क्यों महत्त्वपूर्ण है?
- क्या आपकी राय में कार्यपालिका के पास न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति होनी चाहिए?
- यदि आप से न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया में बदलाव करने का सुझाव देने को कहा जाय तो आप क्या सुझाव देंगे?

not to be republished

न्यायपालिका की संरचना

भारतीय संविधान एकीकृत न्यायिक व्यवस्था की स्थापना करता है। इसका अर्थ यह है कि विश्व के अन्य संघीय देशों के विपरीत भारत में अलग से प्रांतीय स्तर के न्यायालय नहीं हैं। भारत में न्यायपालिका की संरचना पिरामिड की तरह है जिसमें सबसे ऊपर सर्वोच्च न्यायालय फिर उच्च न्यायालय तथा सबसे नीचे जिला और अधीनस्थ न्यायालय है। (नीचे चित्र में देखें) नीचे के न्यायालय अपने ऊपर के न्यायालयों की देखरेख में काम करते हैं।

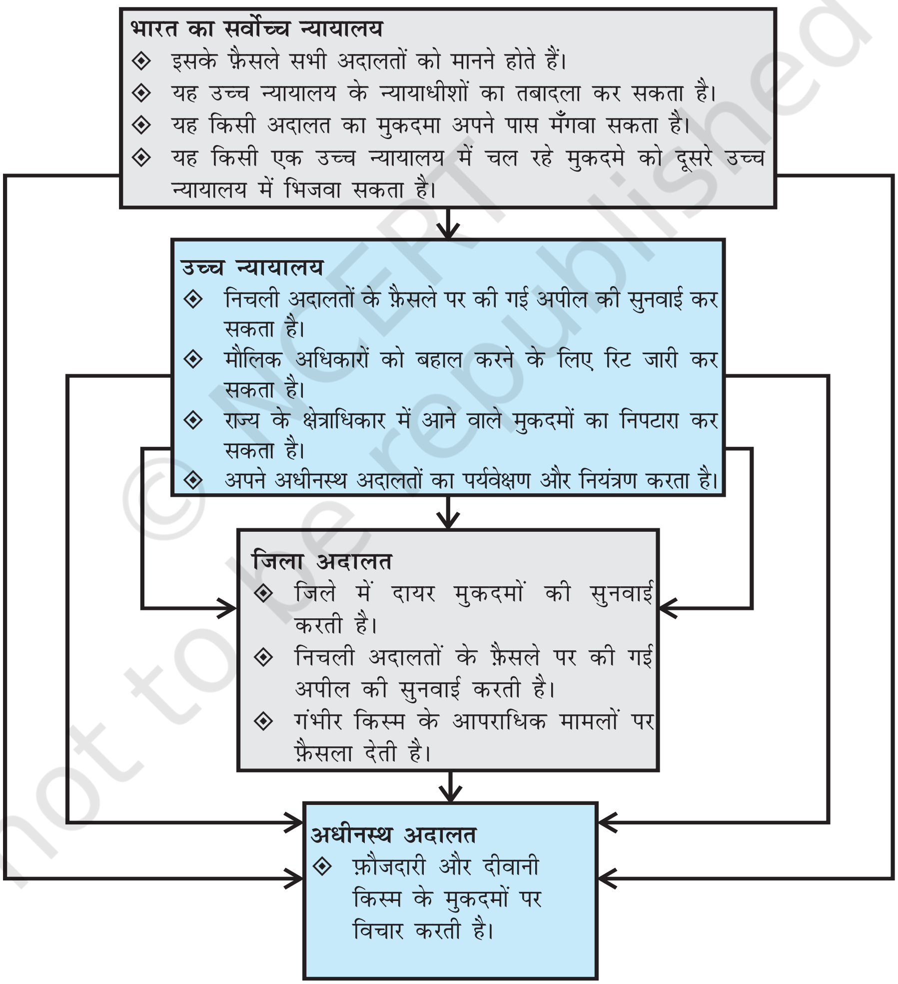

© NCERT not to be republished

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

भारत का सर्वोच्च न्यायालय विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली न्यायालयों में से एक है। लेकिन वह संविधान द्वारा तय की गई सीमा के अंदर ही काम करता है। सर्वोच्च न्यायालय के कार्य और उत्तरदायित्व संविधान में दर्ज हैं। सर्वोच्च न्यायालय को खास किस्म का क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

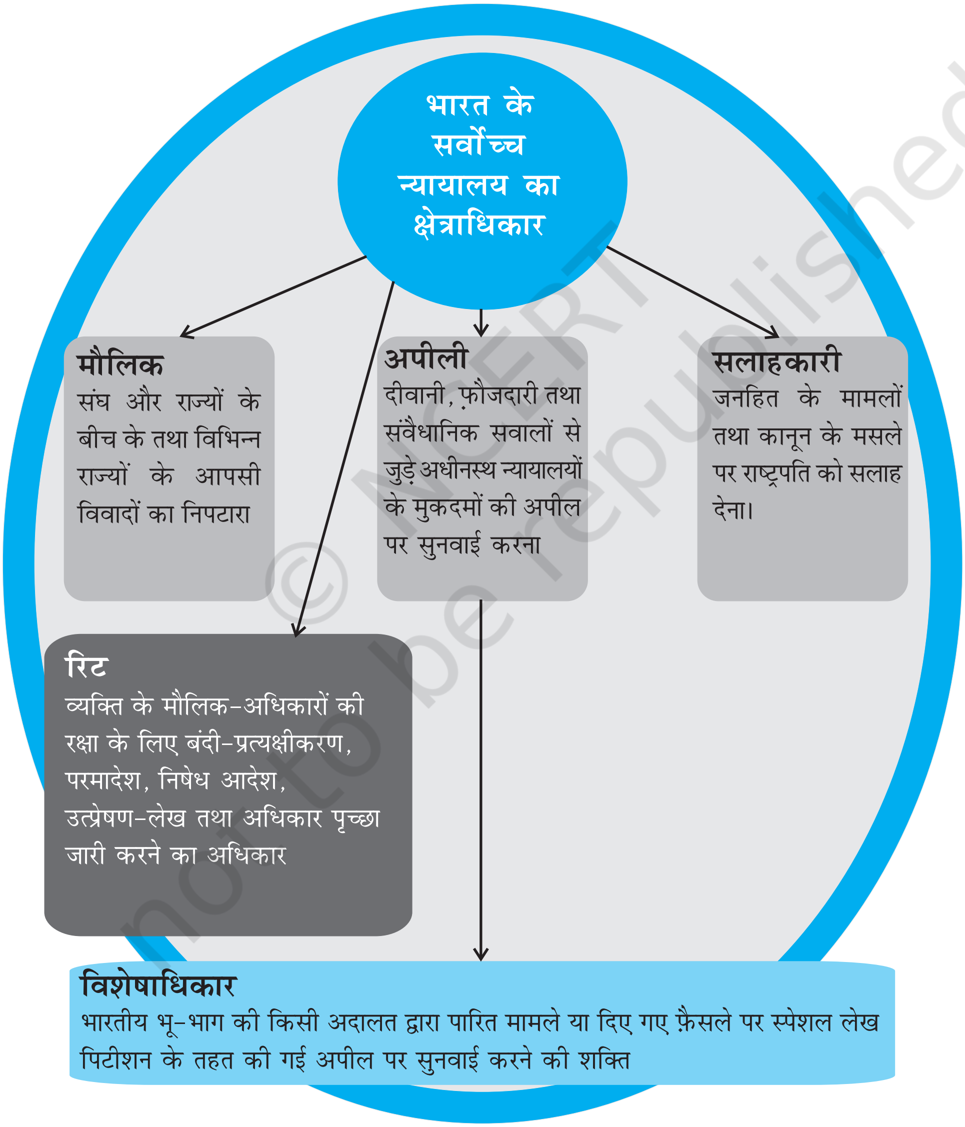

© NCERT not to be republished

मौलिक क्षेत्राधिकार

मौलिक क्षेत्राधिकार का अर्थ है कि कुछ मुकदमों की सुनवाई सीधे सर्वोच्च न्यायालय कर सकता है। ऐसे मुकदमों में पहले निचली अदालतों में सुनवाई ज़रूरी नहीं। ऊपर के चित्र में आपने देखा कि संघीय संबंधों से जुड़े मुकदमे सीधे सर्वोच्च न्यायालय में जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय का मौलिक क्षेत्राधिकार उसे संघीय मामलों से संबंधित सभी विवादों में एक अंपायर या निर्णायक की भूमिका देता है। किसी भी संघीय व्यवस्था में केंद्र और राज्यों के बीच तथा विभिन्न राज्यों में परस्पर कानूनी विवादों का उठना स्वाभाविक है। इन विवादों को हल करने की ज़िम्मेदारी सर्वोच्च न्यायालय की है। इसे मौलिक क्षेत्राधिकार इसलिए कहते हैं क्योंकि इन मामलों को केवल सर्वोच्च न्यायालय ही हल कर सकता है। इनकी सुनवाई न तो उच्च न्यायालय और न ही अधीनस्थ न्यायालयों में हो सकती है। अपने इस अधिकार का प्रयोग कर सर्वोच्च न्यायालय न केवल विवादों को सुलझाता है बल्कि संविधान में दी गई संघ और राज्य सरकारों की शक्तियों की व्याख्या भी करता है।

'रिट' संबंधी क्षेत्राधिकार

जैसा कि आपने मौलिक अधिकारों वाले अध्याय में पढ़ा कि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर कोई भी व्यक्ति इंसाफ पाने के लिए सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय अपने विशेष आदेश रिट के रूप में दे सकता है। उच्च न्यायालय भी रिट जारी कर सकते हैं। लेकिन जिस व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है उसके पास विकल्प है कि वह चाहे तो उच्च न्यायालय या सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। इन रिटों के माध्यम से न्यायालय कार्यपालिका को कुछ करने या न करने का आदेश दे सकता है।

अपीली क्षेत्राधिकार

सर्वोच्च न्यायालय अपील का उच्चतम न्यायालय है। कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। लेकिन उच्च न्यायालय को यह प्रमाणपत्र देना पड़ता है कि वह मुकदमा सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने लायक है अर्थात् उसमें संविधान या कानून की व्याख्या करने जैसा कोई गंभीर मामला उलझा है। अगर फ़ौजदारी के मामले में निचली अदालत किसी को फाँसी की सज़ा दे दे, तो उसकी अपील सर्वोच्च या उच्च न्यायालय में की जा सकती है। यदि किसी मुकदमे में उच्च न्यायालय अपील की आज्ञा न दे तब भी सर्वोच्च न्यायालय के पास यह शक्ति है कि वह उस मुकदमे में की गई अपील

© NCERT not to be republished

को विचार के लिए स्वीकार कर ले। अपीली क्षेत्राधिकार का मतलब यह है कि सर्वोच्च न्यायालय पूरे मुकदमे पर पुनर्विचार करेगा और उसके कानूनी मुद्दों की दुबारा जाँच करेगा। यदि न्यायालय को लगता है कि कानून या संविधान का वह अर्थ नहीं है जो निचली अदालतों ने समझा तो सर्वोच्च न्यायालय उनके निर्णय को बदल सकता है तथा इसके साथ उन प्रावधानों की नई व्याख्या भी दे सकता है।

उच्च न्यायालयों को भी अपने नीचे की अदालतों के निर्णय के विरुद्ध अपीली क्षेत्राधिकार है।

सलाह संबंधी क्षेत्राधिकार

मौलिक और अपीली क्षेत्राधिकार के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय का परामर्श संबंधी क्षेत्राधिकार भी है। इसके अनुसार, भारत का राष्ट्रपति लोकहित या संविधान की व्याख्या से संबंधित किसी विषय को सर्वोच्च न्यायालय के पास परामर्श के लिए भेज सकता है। लेकिन न तो सर्वोच्च न्यायालय ऐसे किसी विषय पर सलाह देने के लिए बाध्य है और न ही राष्ट्रपति न्यायालय की सलाह मानने को।

फिर सर्वोच्च न्यायालय के परामर्श देने की शक्ति की क्या उपयोगिता है? इसकी दो मुख्य उपयोगिताएँ हैं– पहली, इससे सरकार को छूट मिल जाती है कि किसी महत्त्वपूर्ण मसले पर कार्रवाई करने से पहले वह अदालत की कानूनी राय जान ले। इससे बाद में कानूनी विवाद से बचा जा सकता है। दूसरी, सर्वोच्च न्यायालय की सलाह मानकर सरकार अपने प्रस्तावित निर्णय या विधेयक में समुचित संशोधन कर सकती है।

क्या यह बात अपने आप में मज़ेदार नहीं लगती कि सलाह देना, सलाह देने वाले की मर्जी पर और उसको मानना या न मानना, सलाह सुनने वाले की मर्जी पर निर्भर है। मैं तो यही सोचकर चल रहा था कि अदालतें फ़ैसला सुनाती हैं जिन्हें सबको मानना होता है।

अनुच्छेद 137 "...उच्चतम न्यायालय को अपने द्वारा सुनाए गए निर्णय या दिए गए आदेश का पुनरावलोकन करने की शक्ति होगी।"

अनुच्छेद 144 "भारत के राज्य-क्षेत्र के सभी सिविल और न्यायिक प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय की सहायता से कार्य करेंगे।"

सर्वोच्च न्यायालय को अपने ही फ़ैसले को बदलने की इजाज़त क्यों दी गई है? क्या ऐसा यह मानकर किया गया है कि अदालत से भी चूक हो सकती है? क्या यह संभव है कि फ़ैसले पर पुनर्विचार करने के लिए जो खंडपीठ बैठी है उसमें वह न्यायाधीश भी शामिल हो, जो फ़ैसला सुनाने वाली खंडपीठ में था?

पिछले पृष्ठ पर दिए गए अनुच्छेदों को पढ़ें। ये अनुच्छेद हमें भारत के न्यायपालिका की एकीकृत प्रकृति और सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों को समझने में मदद करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के फ़ैसले भारतीय भू-भाग के अन्य सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी हैं। उसके द्वारा दिए गए निर्णय संपूर्ण देश में लागू होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय स्वयं अपने निर्णयों से बाध्य नहीं है और कभी भी उसकी समीक्षा कर सकता है। इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय की अवमानना के मामले भी वे स्वयं ही देखता है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

'निम्नलिखित दो सूचियों को सुमेलित करें।

(क) बिहार और भारत सरकार के मध्य विवाद की सुनवाई कौन करेगा?	(1) उच्च न्यायालय
	(2) परामर्श संबंधी क्षेत्राधिकार
(ख) हरियाणा के जिला न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील कहाँ की जाएगी?	(3) न्यायिक पुनर्निरीक्षण
	(4) मौलिक क्षेत्राधिकार
	(5) सर्वोच्च न्यायालय
(ग) एकीकृत न्यायपालिका	(6) एकल संविधान
(घ) किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करना	

न्यायिक सक्रियता

क्या आपने न्यायिक सक्रियता अथवा जनहित याचिका के बारे में सुना है? आजकल न्यायपालिका पर चर्चा में इन दोनों शब्दों का अकसर प्रयोग होता है। अनेक लोगों का मानना है कि इन दोनों ने न्यायपालिका के कार्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन कर उन्हें पहले से अधिक जनोन्मुखी बना दिया है।

भारत में न्यायिक सक्रियता का मुख्य साधन जनहित याचिका या सामाजिक व्यवहार याचिका (Social Action Litigation) रही है। आखिर

© NCERT not to be republished

कार्टून बूझें

क्या आप जानते हैं कि हाल के दिनों में न्यायपालिका ने 'बंद' और 'हड़ताल' को अपने फ़ैसले में अवैध करार दिया है।

'जनहित याचिका' है क्या? कब और कैसे इसकी शुरुआत हुई? कानून की सामान्य प्रक्रिया में कोई व्यक्ति तभी अदालत जा सकता है जब उसका कोई व्यक्तिगत नुकसान हुआ हो। इसका मतलब यह है कि अपने अधिकार का उल्लंघन होने पर या किसी विवाद में फँसने पर कोई व्यक्ति इंसाफ पाने के लिए अदालत का दरवाजा खटखटा सकता है। 1979 में इस अवधारणा में बदलाव आया। 1979 में इस बदलाव की शुरुआत करते हुए न्यायालय ने एक ऐसे मुकदमे की सुनवाई करने का निर्णय लिया जिसे पीड़ित लोगों ने नहीं बल्कि उनकी ओर से दूसरों ने दाखिल किया था। चूँकि इस मामले में जनहित से संबंधित एक मुद्दे पर विचार हो रहा था अत: इसे और ऐसे ही अन्य अनेक मुकदमों को जनहित याचिकाओं का नाम दिया गया। उसी समय सर्वोच्च न्यायालय ने कैदियों के अधिकार से संबंधित मुकदमे पर भी विचार किया। इससे ऐसे मुकदमों की बाढ़-सी आ गई जिसमें जन सेवा की भावना रखने वाले नागरिकों तथा स्वयंसेवी संगठनों ने अधिकारों की रक्षा, गरीबों के जीवन को और बेहतर बनाने, पर्यावरण की सुरक्षा और लोकहित से जुड़े अनेक मुद्दों पर न्यायपालिका से हस्तक्षेप की माँग की। जनहित याचिका न्यायिक सक्रियता का सबसे प्रभावी साधन हो गई है।

मैंने कुछ लोगों को कहते सुना है कि जनहित याचिका का असली मतलब होता है 'निजी हित की याचिका'। ऐसा क्यों भला?

किसी के द्वारा मुकदमा करने पर उस मुद्दे पर विचार करने के बजाय न्यायपालिका ने अखबार में छपी खबरों और डाक से प्राप्त शिकायतों को आधार बना कर उन पर विचार करना शुरू कर दिया। इस तरह न्यायपालिका की यह नई भूमिका न्यायिक सक्रियता के रूप में लोकप्रिय हुई।

कुछ प्रारंभिक जनहित याचिकाएँ

- 1979 में समाचार पत्रों में विचाराधीन कैदियों के बारे में कुछ खबरें छपीं। बिहार की जेलों में कैदियों को काफी लंबी अवधि से बंदी बना कर रखा जा रहा था। जिन अपराधों के लिए उन्हें गिरफ़्तार किया गया था, यदि उसमें उन्हें सज़ा हो जाती तो भी वे उतनी लंबी अवधि के लिए कैद नहीं किए जा सकते थे। इस खबर को आधार बना कर एक वकील ने एक याचिका दायर की। सर्वोच्च न्यायालय में यह मुकदमा चला। यह पहली जनहित याचिका के रूप में प्रसिद्ध हुई। इस मुकदमे को हुसैनारा खातून बनाम बिहार सरकार के नाम से जाना जाता है।
- 1980 में तिहाड़ जेल के एक बंदी ने सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश कृष्णा अय्यर को एक पत्र भेजा। इसमें बंदियों को दी जाने वाली शारीरिक यातनाओं का वर्णन किया गया था। न्यायाधीश ने उसे ही एक याचिका मान लिया। यद्यपि बाद में न्यायालय ने पत्रों को याचिका के रूप में स्वीकार करने की प्रथा समाप्त कर दी, लेकिन यह मुकदमा 'सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1980)' के नाम से शुरुआती जनहित याचिका के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

© NCERT not to be republished

जनहित याचिकाओं के माध्यम से न्यायालय ने अधिकारों का दायरा बढ़ा दिया। शुद्ध हवा-पानी और अच्छा जीवन पाना पूरे समाज का अधिकार है। न्यायालय का मानना था कि समाज के सदस्य के रूप में, अधिकारों के उल्लंघन पर व्यक्तियों को इंसाफ की गुहार लगाने का अधिकार है।

इसके अतिरिक्त 1980 के बाद जनहित याचिकाओं और न्यायिक सक्रियता के द्वारा न्यायपालिका ने उन मामलों में भी रूचि दिखाई जहाँ समाज के कुछ वर्गों के लोग आसानी से अदालत की शरण नहीं ले सकते। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए न्यायालय ने जन सेवा की भावना से भरे नागरिक, सामाजिक संगठन और वकीलों को समाज के ज़रूरतमंद और गरीब लोगों की ओर से याचिकाएँ दायर करने की इज़ाज़त दी।

यह बात ज़रूर याद रहे कि गरीबों की समस्याएँ ऐसे लोगों की समस्याओं से गुणात्मक रूप से अलग हैं जिन पर अब तक अदालत का ध्यान रहा है। ...गरीबों के प्रति इंसाफ का अलग नज़रिया अपनाने की ज़रूरत है। यदि हम गरीबों के मामले में आँख मूँदकर इंसाफ की कोई प्रतिकूल प्रक्रिया अपनाते हैं, तो वे कभी भी अपने मौलिक अधिकारों का इस्तेमाल नहीं कर सकेंगे।

(न्यायमूर्ति भगवती – बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत सरकार, 1984)

खुद करें — खुद सीखें

जनहित याचिका के माध्यम से दायर कम-से-कम एक मुकदमे का ब्यौरा जुटाएँ और पता करें कि किस प्रकार उस मामले से जनता के हित की रक्षा हुई।

न्यायिक सक्रियता का हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर बहुत प्रभाव पड़ा। इससे न केवल व्यक्तियों बल्कि विभिन्न समूहों को भी अदालत जाने का अवसर मिला। इसने न्याय व्यवस्था को लोकतांत्रिक बनाया और कार्यपालिका उत्तरदायी बनने पर बाध्य हुई चुनाव प्रणाली को भी इसने ज़्यादा मुक्त और निष्पक्ष बनाने का प्रयास किया। न्यायालय ने चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशियों को अपनी संपत्ति, आय और शैक्षणिक योग्यताओं के संबंध में शपथपत्र देने का निर्देश दिया, जिससे लोग सही जानकारी के आधार पर अपने प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकें।

जनहित याचिकाओं की बढ़ती संख्या और सक्रिय न्यायपालिका के विचार का एक नकारात्मक पहलू भी है। इससे न्यायालयों में काम का बोझ बढ़ा है। दूसरे, न्यायिक सक्रियता से विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्यों के बीच का अंतर धुँधला हो गया है। न्यायालय उन समस्याओं में उलझ गया जिसे कार्यपालिका को हल करना चाहिए।

मेरा खयाल है कि न्यायिक सक्रियता का रिश्ता कार्यपालिका और विधायिका को यह बताने से है कि उन्हें क्या करना चाहिए। यदि विधायिका और कार्यपालिका ने भी फ़ैसला सुनाना शुरू कर दिया तो फिर क्या होगा?

उदाहरण के लिए, वायु और ध्वनि प्रदूषण दूर करना, भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच करना या चुनाव सुधार करना वास्तव में न्यायपालिका के काम नहीं है। ये सभी कार्य विधायिका की देखरेख में प्रशासन को करना चाहिए। इसलिए कुछ लोगों का मानना है कि न्यायिक सक्रियता से सरकार के तीनों अंगों के बीच पारस्परिक संतुलन रखना बहुत मुश्किल हो गया है। लोकतांत्रिक शासन का आधार यह है कि सरकार का हर अंग एक-दूसरे की शक्तियों और क्षेत्राधिकार का सम्मान करें। न्यायिक सक्रियता से इस लोकतांत्रिक सिद्धांत को आघात पहुँच सकता है।

आप एक न्यायाधीश हैं

नागरिकों का एक समूह जनहित याचिका के माध्यम से न्यायालय जाकर प्रार्थना करता है कि वह शहर की नगरपालिका के अधिकारियों को झुग्गी-झोपड़ियाँ हटाने और शहर को सुंदर बनाने का काम करने के आदेश दे, ताकि शहर में पूँजी निवेश करने वालों को आकर्षित किया जा सके। उनका तर्क है कि ऐसा करना जनहित में है। झुग्गी-झोपड़ी में रहने वालों का पक्ष है कि ऐसा करने पर उनके 'जीवन के अधिकार' का हनन होगा। उनका तर्क है कि जनहित के लिए साफ-सुथरे शहर के अधिकार से ज़्यादा जीवन का अधिकार महत्त्वपूर्ण है।

कल्पना करें कि आप एक न्यायाधीश हैं। आप एक निर्णय लिखें और तय करें कि इस 'जनहित याचिका' में जनहित का मुद्दा है या नहीं ?

न्यायपालिका और अधिकार

हम पहले ही देख चुके हैं कि न्यायपालिका को व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करने का दायित्व सौंपा गया है। संविधान ऐसी दो विधियों का वर्णन करता है जिससे सर्वोच्च न्यायालय अधिकारों की रक्षा कर सके–

- पहला, यह अनेक रिट; जैसे– बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश आदि जारी करके मौलिक अधिकारों को फिर से स्थापित कर सकता है। (अनुच्छेद 32)। उच्च न्यायालयों को भी ऐसी रिट जारी करने की शक्ति है (अनुच्छेद 226)।
- दूसरा, सर्वोच्च न्यायालय किसी कानून को गैर-संवैधानिक घोषित कर उसे लागू होने से रोक सकता है (अनुच्छेद 13)।

© NCERT not to be republished

ये दोनों प्रावधान एक ओर सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के मौलिक अधिकार के संरक्षक तथा दूसरी ओर संविधान के व्याख्याकार के रूप में स्थापित करते हैं। उपर्युक्त प्रावधानों में दूसरा प्रावधान न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था करता है।

सर्वोच्च न्यायालय की सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति संभवतया न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति है। न्यायिक पुनरावलोकन का अर्थ है कि सर्वोच्च न्यायालय किसी भी कानून की संवैधानिकता जाँच सकता है और यदि वह संविधान के प्रावधानों के विपरीत हो, तो न्यायालय उसे गैर-संवैधानिक घोषित कर सकता है। संविधान में कहीं भी न्यायिक पुनरावलोकन शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। लेकिन भारत में संविधान लिखित है और इसमें दर्ज है कि मूल अधिकारों के विपरीत होने पर सर्वोच्च न्यायालय किसी भी कानून को निरस्त कर सकता है। इन तथ्यों के कारण भारत के संविधान में 'न्यायिक पुनरावलोकन' शब्द का प्रयोग न होने पर यह शक्ति सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है।

इसके अलावा हमने सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का अध्ययन करते समय देखा कि संघीय संबंधों के मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय अपनी न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग कर सकता है। ऐसा करके वह किसी भी कानून को संविधान में निहित शक्ति के बँटवारे की योजना के विरुद्ध होने से रोकता है। मान लीजिए कि केंद्र सरकार कोई कानून बनाए और कुछ राज्यों को ऐसा लगे कि इस कानून का विषय तो राज्य सूची में है। तब वे सर्वोच्च न्यायालय जा सकते हैं और यदि न्यायालय उनसे सहमत हो, तो वह उस कानून को असंवैधानिक घोषित कर सकता है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के द्वारा ऐसे किसी भी कानून का परीक्षण कर सकता है, जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता हो या संविधान में शक्ति-विभाजन योजना के प्रतिकूल हो। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति राज्यों की विधायिका द्वारा बनाए कानूनों पर भी लागू होती है।

रिट जारी करने की और न्यायिक पुनरावलोकन की शक्तियाँ सर्वोच्च न्यायालय को अत्यंत शक्तिशाली बना देती है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का मतलब यह हुआ कि न्यायपालिका विधायिका द्वारा पारित कानूनों की और संविधान की व्याख्या कर सकती है। अनेक लोगों का मानना है कि इसके द्वारा न्यायपालिका प्रभावी ढंग से संविधान की रक्षा करती है और नागरिकों के अधिकारों की भी रक्षा करती है। जनहित याचिकाओं ने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने की न्यायपालिका की शक्ति में बढ़ोत्तरी की है।

मेरा खयाल है कि मैं न्यायाधीश ही बनूँ तो अच्छा है! फिर मुझे चुनाव और जन-समर्थन की चिंता नहीं करनी पड़ेगी और तब भी मेरे पास बहुत-सी शक्तियाँ होंगी!

क्या आप जानते हैं कि और भी अनेक देशों में जनहित याचिकाएँ धीरे-धीरे लोकप्रिय हो रही हैं? विश्व के अनेक न्यायालयों खासतौर से दक्षिण एशिया और अफ्रीका में भारत की ही भाँति न्यायिक सक्रियता का प्रयोग किया जा रहा है। लेकिन दक्षिण अफ्रीका के संविधान में जनहित याचिका को मौलिक अधिकारों की सूची में सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका में अब नागरिक का यह मौलिक अधिकार है कि वह संवैधानिक न्यायालय के सामने व्यक्तियों के अधिकारों के उल्लंघन का मामला उठा सके।

क्या आपको याद है कि अधिकार से संबंधित अध्याय में हमने शोषण के विरुद्ध अधिकार का उल्लेख किया था। यह अधिकार बंधुआ मज़दूरी, लोगों की खरीद-फरोख्त और खतरनाक कामों में बाल श्रम पर प्रतिबंध लगाता है। लेकिन प्रश्न यह है कि जिन लोगों के अधिकारों का उल्लंघन होता है, वे अदालत का दरवाज़ा कैसे खटखटाएँ? जनहित याचिकाओं और न्यायिक सक्रियता से न्यायालयों के लिए यह संभव हो पाया है कि वे ऐसे उल्लंघनों के मामले पर विचार कर सकें। इससे न्यायालय ने अनेक मुद्दों पर विचार किया, जैसे– जेल के अंदर पुलिस द्वारा कैदियों की आँखें फोड़ना, पत्थर की खदानों में काम करने की अमानवीय दशा, बच्चों का यौन-शोषण आदि। इस प्रवृत्ति ने गरीब व पिछड़े वर्ग के लोगों के अधिकारों को अर्थपूर्ण बना दिया है।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- न्यायालय न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग कब करता है?
- न्यायिक पुनरावलोकन और रिट में क्या फर्क है?

न्यायपालिका और संसद

न्यायपालिका ने अधिकार के मुद्दे पर तो सक्रियता दिखाई ही है, राजनैतिक व्यवहार-बरताव से संविधान को ठेंगा दिखाने की प्रवृत्ति पर भी अंकुश लगाया है। इसी कारण जो विषय पहले न्यायिक पुनरावलोकन के दायरे में नहीं थे उन्हें भी अब इस दायरे में ले लिया गया है, जैसे– राष्ट्रपति और राज्यपाल की शक्तियाँ।

ऐसे और भी अनेक उदाहरण हैं जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने न्याय की स्थापना के लिए कार्यपालिका की संस्थाओं को निर्देश दिए। जैसे उसने हवाला मामले, नरसिंह राव मामले और पेट्रोल पंपों के अवैध आबंटन जैसे अनेक मामलों में सीबीआई (केंद्रीय जाँच ब्यूरो) को निर्देश दिया कि वह भ्रष्ट राजनेताओं और नौकरशाहों के विरुद्ध जाँच करे। आपने इनमें से कुछ के बारे में सुना होगा। इनमें से कई उदाहरण न्यायिक सक्रियता के परिणाम हैं।

भारतीय संविधान शक्ति के सीमित बँटवारे, अवरोध तथा संतुलन के एक सुंदर सिद्धांत पर आधारित है। इसका मतलब यह है कि सरकार के प्रत्येक अंग का एक स्पष्ट कार्य क्षेत्र है। संसद कानून बनाने और संविधान का संशोधन करने में सर्वोच्च है, कार्यपालिका उन्हें लागू करने तथा न्यायपालिका विवादों को सुलझाने और यह सुनिश्चित करने में सर्वोच्च है कि क्या बनाए गए कानून संविधान के अनुकूल हैं। इस स्पष्ट कार्य विभाजन के बावजूद संसद और न्यायपालिका तथा कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच टकराव भारतीय राजनीति की विशेषता रही है।

हमने संपत्ति के अधिकार और संसद की संविधान को संशोधित करने की शक्ति के संबंध में संसद और न्यायपालिका के बीच हुए टकराव का पीछे उल्लेख किया है। आइए इसे एक बार फिर दुहरा लें।

संविधान लागू होने के तुरंत बाद संपत्ति के अधिकार पर रोक लगाने की संसद की शक्ति पर विवाद खड़ा हो गया। संसद संपत्ति रखने के अधिकार पर कुछ प्रतिबंध लगाना चाहती थी जिससे भूमि-सुधारों को लागू किया जा सके। न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती। संसद ने तब संविधान को संशोधित करने का प्रयास किया। लेकिन न्यायालय ने कहा कि संविधान के संशोधन के द्वारा भी मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं किया जा सकता।

संसद और न्यायपालिका के बीच विवाद के केंद्र में निम्नलिखित मुद्दे थे-

- निजी संपत्ति के अधिकार का दायरा क्या है?
- मौलिक अधिकारों को सीमित, प्रतिबंधित और समाप्त करने की संसद की शक्ति का दायरा क्या है?
- संसद द्वारा संविधान संशोधन करने की शक्ति का दायरा क्या है ?
- क्या संसद नीति निर्देशक तत्वों को लागू करने के लिए ऐसे कानून बना सकती है जो मौलिक अधिकारों को प्रतिबंधित करे?

जहाँ न्यायिक स्वतंत्रता को बनाए रखने की ज़रूरत पर कोई दो राय नहीं हो सकती ... वहीं हमारे लिए एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत को भी याद रखना जरूरी है। स्वतंत्रता के सिद्धांत को उस स्तर तक नहीं ले जाया जाना चाहिए जहाँ वह आस्था का स्थान ले ले। अन्यथा न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के काम भी अपने हाथ में ले लेने वाली एक अतिवादी संस्था की तरह काम करने लगेगी। न्यायपालिका का काम संविधान की व्याख्या करना या अधिकारों के बारे में चल रहे विवादों को हल करना है ...

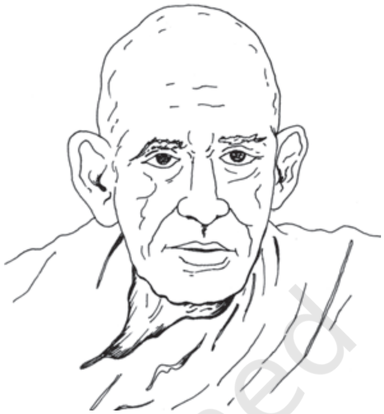

अलादि कृष्णास्वामी अय्यर
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 837, 23 नवंबर 1949

1967 से 1973 के बीच यह विवाद काफी गहरा गया। भूमि-सुधार कानूनों के अतिरिक्त निवारक नज़रबंदी कानून, नौकरियों में आरक्षण संबंधी कानून, सार्वजनिक उद्देश्य के लिए निजी संपत्ति के अधिग्रहण संबंधी नियम और अधिग्रहीत निजी संपत्ति के मुआवज़े संबंधी कानून आदि ऐसे कुछ उदाहरण हैं जिन पर विधायिका और न्यायपालिका के बीच विवाद हुए।

1973 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्णय दिया जो संसद और न्यायपालिका के संबंधों के नियमन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो गया है। यह केशवानंद भारती मुकदमे के रूप में प्रसिद्ध है। इस मुकदमें में न्यायालय ने निर्णय दिया कि संविधान का एक मूल ढाँचा है और संसद सहित कोई भी उस मूल ढाँचे से छेड़-छाड़ नहीं कर सकता। संविधान संशोधन द्वारा भी इस मूल ढाँचे को नहीं बदला जा सकता। न्यायालय ने दो और काम किए। संपत्ति के अधिकार के विवादास्पद मुद्दे के बारे में न्यायालय ने कहा कि यह मूल ढाँचे का हिस्सा नहीं है और इसलिए उस पर समुचित प्रतिबंध लगाया जा सकता है। दूसरा, न्यायालय ने यह निर्णय करने का अधिकार अपने पास रखा कि कोई मुद्दा मूल ढाँचे का हिस्सा है या नहीं। यह निर्णय न्यायपालिका द्वारा संविधान की व्याख्या करने की शक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है।

इस निर्णय ने विधायिका और न्यायपालिका के बीच विवादों की प्रकृति ही बदल दी। जैसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की

© NCERT not to be republished

सूची से 1979 में हटा दिया गया और इससे शासन के इन दो अंगों के बीच संबंधों की प्रकृति बदल गई।

फिर भी इन दोनों के बीच विवाद के कुछ बिंदु बचे हैं। जैसे क्या न्यायपालिका विधायिका की कार्यवाही का नियमन और उसमें हस्तक्षेप कर उसे नियंत्रित कर सकती है? संसदीय व्यवस्था में संसद को अपना संचालन खुद करने तथा अपने सदस्यों का व्यवहार नियंत्रित करने की शक्ति है। संसदीय-व्यवस्था में विधायिका को विशेषाधिकार के हनन का दोषी पाए जाने पर अपने सदस्य को दंडित करने का अधिकार है। जो व्यक्ति विधायिका के विशेषाधिकार हनन का दोषी हो क्या वह न्यायालय की शरण ले सकता है? सदन के किसी सदस्य के विरुद्ध स्वयं सदन द्वारा यदि कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाती है तो क्या वह सदस्य न्यायालय से सुरक्षा प्राप्त कर सकता है? ये मुद्दे अभी भी सुलझ नहीं पाए हैं और दोनों के बीच विवाद का विषय बने रहते हैं। इसी प्रकार संविधान यह व्यवस्था करता है कि न्यायाधीशों के आचरण पर संसद में चर्चा नहीं हो सकती। लेकिन अनेक अवसरों पर संसद और राज्यों की विधान सभाओं में न्यायपालिका के आचरण पर अंगुली उठाई गई। इसी प्रकार न्यायपालिका ने भी अनेक अवसरों पर विधायिका की आलोचना की है और उन्हें उनके विधायी कार्यों के संबंध में निर्देश दिए हैं। विधायिका इसे संसदीय संप्रभुता के सिद्धांत के उल्लंघन के रूप में देखती है।

इन मुद्दों से यह स्पष्ट होता है कि सरकार के किन्हीं दो अंगों के बीच संतुलन कितना संवेदनशील है और लोकतंत्र में सरकार के एक अंग का दूसरे अंग की सत्ता के प्रति सम्मान बरतना कितना ज़रूरी है।

अदालत हमें एक बार साफ-साफ क्यों नहीं बता देती कि आखिर संविधान के वे पहलू क्या हैं, जिन्हें 'मूल ढाँचा' कहा जाता है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

न्यायपालिका और संसद के बीच टकराव के मुद्दे रहे हैं-

- न्यायाधीशों की नियुक्ति
- न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते
- संसद के द्वारा संविधान संशोधन का दायरा
- संसद द्वारा न्यायपालिका के कार्यों में हस्तक्षेप

© NCERT not to be republished

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

कार्टून बूझें

आखिरकार मैं बाइज़्ज़त बरी हो गया। डरावने सपने जैसा था यह सब कुछ। अब मैं कभी भी भ्रष्टाचार में शामिल नहीं होऊँगा। कसम से।

सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने में न्यायपालिका किस तरह सक्रिय रहती है?

निष्कर्ष

इस अध्याय में आपने अपनी लोकतांत्रिक संरचना में न्यायपालिका की भूमिका का अध्ययन किया है। न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के बीच समय-समय पर उठने वाले विवादों के बावजूद न्यायपालिका की साख बढ़ी है। न्यायपालिका से कुछ और भी अपेक्षाएँ हैं। आम आदमी को आश्चर्य होता है कि किस आसानी से अनेक दोषी लोग न्यायपालिका से बेदाग बरी हो जाते हैं और कैसे धनी और दबंगों के असर में गवाह अपने बयान से मुकर जाते हैं। ये कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिनके बारे में स्वयं न्यायपालिका भी चिंतित है।

इस अध्याय में आपने देखा कि भारत में न्यायपालिका बहुत शक्तिशाली संस्था है। इस शक्ति ने बड़े आश्चर्य और बहुत-सी आशाओं को जन्म दिया है।

भारतीय न्यायपालिका अपनी स्वतंत्रता के लिए भी जानी जाती है। अनेक निर्णयों के माध्यम से न्यायपालिका ने संविधान की नई व्याख्याएँ दीं और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की। जैसा कि हमने इस अध्याय में देखा लोकतंत्र वास्तव में विधायिका और न्यायपालिका के बीच एक अत्यंत संवेदनशील संतुलन पर आधारित है और इन दोनों को संविधान की सीमाओं के अंदर ही रहकर कार्य करना पड़ता है।

विधिक सेवा दिवस-2018

09-11-2018

विधिक सेवा प्राधिकरण आपके कानूनी अधिकारों के संरक्षण के लिए सदैव प्रतिबद्ध है।

विधिक सेवा प्राधिकरण के उद्देश्य-

1) निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करना
2) कानूनी साक्षरता फैलाना
3) लोक अदालतों का आयोजन करना
4) विवाद निपटारे के लिए वैकल्पिक समाधानों को प्रोत्साहन देना
5) अपराध पीड़ित व्यक्तियों को मुआवज़ा देना

निःशुल्क कानूनी सेवाएँ प्राप्त करने के लिए निम्न व्यक्ति पात्र हैं-

1) महिला और बच्चे
2) अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्य
3) औद्योगिक कामगार
4) बड़े पैमाने पर प्राकृतिक/औद्योगिक आपदा, जातीय हिंसा, बाढ़, सूखा, भूकंप से पीड़ित
5) विकलांग व्यक्ति
6) हिरासत में व्यक्ति
7) वे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय 1 लाख रुपये से कम है या जो आय सीमा केन्द्र/राज्य सरकार अधिसूचित करती है।
8) मानव तस्करी या बेगार से पीड़ित

निःशुल्क कानूनी सेवा सभी दीवानी, फौजदारी, राजस्व व प्रशासनिक मुकदमों के लिए दी जाती है।

निःशुल्क कानूनी सेवाएँ प्रदान करने के लिए निम्नलिखित विधिक सेवा संस्थाएँ हैं-

1) राष्ट्रीय स्तर पर – राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण
2) राज्य स्तर पर – राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण
3) जिला स्तर पर – जिला विधिक सेवा प्राधिकरण
4) उप मंडल/तालुका स्तर पर – उप मंडल/तालुका विधिक सेवा समिति
5) उच्च न्यायालय स्तर पर – उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति
6) उच्चतम न्यायालय स्तर पर – सर्वोच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति

निःशुल्क कानूनी सेवाएँ प्राप्त करने के लिए आप अपनी निकटतम विधिक सेवा संस्था, फ्रंट ऑफ़िस (जिला न्यायालय परिसर/वैकल्पिक विवाद समाधान केन्द्र में), लीगल सर्विसिस क्लीनिक अथवा Nalsa online portal http://www.nalsa.gov.in/slams या टोल फ्री नम्बर 15100 पर सम्पर्क कर सकते हैं।

National Legal Services Authority (NALSA)

राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (नालसा)

12/11, जामनगर हाउस, शाहजहाँ रोड, नई दिल्ली - 110011 वेबसाईट : www.nalsa.gov.in

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के विभिन्न तरीके कौन-कौन से हैं? निम्नलिखित में जो बेमेल हो उसे छाँटें।
   (क) सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से सलाह ली जाती है।
   (ख) न्यायाधीशों को अमूमन अवकाश प्राप्ति की आयु से पहले नहीं हटाया जाता।
   (ग) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का तबादला दूसरे उच्च न्यायालय में नहीं किया जा सकता।
   (घ) न्यायाधीशों की नियुक्ति में संसद की दखल नहीं है।

2. क्या न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि न्यायपालिका किसी के प्रति जवाबदेह नहीं है। अपना उत्तर अधिकतम 100 शब्दों में लिखें।

3. न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए संविधान के विभिन्न प्रावधान कौन-कौन से हैं?

4. नीचे दी गई समाचार-रिपोर्ट पढ़ें और उनमें निम्नलिखित पहलुओं की पहचान करें।
   (क) मामला किस बारे में है?
   (ख) इस मामले में लाभार्थी कौन है?
   (ग) इस मामले में फरियादी कौन है?
   (घ) सोचकर बताएँ कि कंपनी की तरफ से कौन-कौन से तर्क दिए जाएँगे?
   (ङ) किसानों की तरफ से कौन-से तर्क दिए जाएँगे?

   सर्वोच्च न्यायालय ने रिलायंस से दहानु के किसानों को 300 करोड़ रुपए देने को कहा – *निजी कारपोरेट ब्यूरो, 24 मार्च 2005*

   मुंबई – सर्वोच्च न्यायालय ने रिलायंस एनर्जी से मुंबई के बाहरी इलाके दहानु में चीकू फल उगाने वाले किसानों को 300 करोड़ रुपए देने के लिए कहा है। चीकू उत्पादक किसानों ने अदालत में रिलायंस के ताप-ऊर्जा संयंत्र से होने वाले प्रदूषण के विरुद्ध अर्जी दी थी। अदालत ने इसी मामले में अपना फ़ैसला सुनाया है।

   दहानु मुंबई से 150 कि.मी. दूर है। एक दशक पहले तक इस इलाके की अर्थ व्यवस्था खेती और बागवानी के बूते आत्मनिर्भर थी और दहानु की प्रसिद्धि यहाँ के मछली-पालन तथा जंगलों के कारण थी। सन् 1989 में इस

इलाके में ताप-ऊर्जा संयंत्र चालू हुआ और इसी के साथ शुरू हुई इस इलाके की बर्बादी। अगले साल इस उपजाऊ क्षेत्र की फ़सल पहली दफ़ा मारी गई। कभी महाराष्ट्र के लिए फलों का टोकरा रहे दहानु की अब 70 प्रतिशत फ़सल समाप्त हो चुकी है। मछली पालन बंद हो गया है और जंगल विरल होने लगे हैं। किसानों और पर्यावरणविदों का कहना है कि ऊर्जा संयंत्र से निकलने वाली राख भूमिगत जल में प्रवेश कर जाती है और पूरा पारिस्थितिकी-तंत्र प्रदूषित हो जाता है। दहानु तालुका पर्यावरण सुरक्षा प्राधिकरण ने ताप-ऊर्जा संयंत्र को प्रदूषण-नियंत्रण की इकाई स्थापित करने का आदेश दिया था ताकि सल्फर का उत्सर्जन कम हो सके। सर्वोच्च न्यायालय ने भी प्राधिकरण के आदेश के पक्ष में अपना फ़ैसला सुनाया था। इसके बावजूद सन् 2002 तक प्रदूषण-नियंत्रण का संयंत्र स्थापित नहीं हुआ। सन् 2003 में रिलायंस ने ताप-ऊर्जा संयंत्र को हासिल किया और सन् 2004 में उसने प्रदूषण-नियंत्रण संयंत्र लगाने की योजना के बारे में एक खाका प्रस्तुत किया। प्रदूषण-नियंत्रण संयंत्र चूँकि अब भी स्थापित नहीं हुआ था इसलिए दहानु तालुका पर्यावरण सुरक्षा प्राधिकरण ने रिलायंस से 300 करोड़ रुपए की बैंक-गारंटी देने को कहा।

5. नीचे की समाचार-रिपोर्ट पढ़ें और, चिह्नित करें कि रिपोर्ट में किस-किस स्तर की सरकार सक्रिय दिखाई देती है।
   (क) सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका की निशानदेही करें।
   (ख) कार्यपालिका और न्यायपालिका के कामकाज की कौन-सी बातें आप इसमें पहचान सकते हैं?
   (ग) इस प्रकरण से संबद्ध नीतिगत मुद्दे, कानून बनाने से संबंधित बातें, क्रियान्वयन तथा कानून की व्याख्या से जुड़ी बातों की पहचान करें।

सीएनजी - मुद्दे पर केंद्र और दिल्ली सरकार एक साथ

स्टाफ रिपोर्टर, द हिंदू, सितंबर 23, 2001 राजधानी के सभी ग़ैर-सीएनजी व्यावसायिक वाहनों को यातायात से बाहर करने के लिए केंद्र और दिल्ली सरकार संयुक्त रूप से सर्वोच्च न्यायालय का सहारा लेंगे। दोनों सरकारों में इस बात की सहमति हुई है। दिल्ली और केंद्र की सरकार ने पूरी परिवहन व्यवस्था को एकल ईंधन प्रणाली से चलाने के बजाय दोहरे ईंधन-प्रणाली से चलाने के बारे में नीति बनाने का फ़ैसला किया है क्योंकि एकल ईंधन प्रणाली खतरों से भरी है और इसके परिणामस्वरूप विनाश हो सकता है।

राजधानी के निजी वाहन धारकों ने सीएनजी के इस्तेमाल को हतोत्साहित करने का भी फ़ैसला किया गया है। दोनों सरकारें राजधानी में 0.05 प्रतिशत निम्न सल्फर डीजल से बसों को चलाने की अनुमति देने के बारे में दबाव डालेंगी। इसके अतिरिक्त अदालत से कहा जाएगा कि जो व्यावसायिक वाहन यूरो-दो

मानक को पूरा करते हैं उन्हें महानगर में चलने की अनुमति दी जाए। हालाँकि केंद्र और दिल्ली सरकार अलग-अलग हलफनामा दायर करेंगे लेकिन इनमें समान बिंदुओं को उठाया जाएगा। केंद्र सरकार सीएनजी के मसले पर दिल्ली सरकार के पक्ष को अपना समर्थन देगी।

दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित और केंद्रीय पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्री श्री राम नाईक के बीच हुई बैठक में ये फैसले लिए गए। श्रीमती शीला दीक्षित ने कहा कि केंद्र सरकार अदालत से विनती करेगी कि डॉ. आरए मशेलकर की अगुआई में गठित उच्चस्तरीय समिति को ध्यान में रखते हुए अदालत बसों को सीएनजी में बदलने की आखिरी तारीख आगे बढ़ा दे क्योंकि 10,000 बसों को निर्धारित समय में सीएनजी में बदल पाना असंभव है। डॉ. मशेलकर की अध्यक्षता में गठित समिति पूरे देश के ऑटो ईंधन नीति का सुझाव देगी। उम्मीद है कि यह समिति छः माह में अपनी रिपोर्ट पेश करेगी।

मुख्यमंत्री ने कहा कि अदालत के निर्देशों पर अमल करने के लिए समय की ज़रूरत है। इस मसले पर समग्र दृष्टि अपनाने की बात कहते हुए श्रीमती दीक्षित ने बताया– सीएनजी से चलने वाले वाहनों की संख्या, सीएनजी की आपूर्ति करने वाले स्टेशनों पर लगी लंबी कतार की समाप्ति, दिल्ली के लिए पर्याप्त मात्रा में सीएनजी ईंधन जुटाने तथा अदालत के निर्देशों को अमल में लाने के तरीके और साधनों पर एक साथ ध्यान दिया जाएगा।
सर्वोच्च न्यायालय ने ... सीएनजी के अतिरिक्त किसी अन्य ईंधन से महानगर में बसों को चलाने की अपनी मनाही में छूट देने से इन्कार कर दिया था लेकिन अदालत का कहना था कि टैक्सी और ऑटो-रिक्शा के लिए भी सिर्फ सीएनजी इस्तेमाल किया जाए, इस बात पर उसने कभी ज़ोर नहीं डाला। श्री राम नाईक का कहना था कि केंद्र सरकार सल्फर की कम मात्रा वाले डीजल से बसों को चलाने की अनुमति देने के बारे में अदालत से कहेगी, क्योंकि पूरी यातायात व्यवस्था को सीएनजी पर निर्भर करना खतरनाक हो सकता है। राजधानी में सीएनजी की आपूर्ति पाईपलाइन के ज़रिए होती है और इसमें किसी किस्म की बाधा आने पर पूरी सार्वजनिक यातायात प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाएगी।

6. निम्नलिखित कथन इक्वाडोर के बारे में है। इस उदाहरण और भारत की न्यायपालिका के बीच आप क्या समानता अथवा असमानता पाते हैं?
सामान्य कानूनों की कोई संहिता अथवा पहले सुनाया गया कोई न्यायिक फ़ैसला मौजूद होता तो पत्रकार के अधिकारों को स्पष्ट करने में मदद मिलती। दुर्भाग्य से इक्वाडोर की अदालत इस रीति से काम नहीं करती। पिछले मामलों में उच्चतर अदालत के न्यायाधीशों ने जो फ़ैसले दिए हैं उन्हें कोई न्यायाधीश

2024-25

उदाहरण के रूप में मानने के लिए बाध्य नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका के विपरीत इक्वाडोर (अथवा दक्षिण अमेरिका में किसी और देश) में जिस न्यायाधीश के सामने अपील की गई है उसे अपना फ़ैसला और उसका कानूनी आधार लिखित रूप में नहीं देना होता। कोई न्यायाधीश आज एक मामले में कोई फ़ैसला सुनाकर कल उसी मामले में दूसरा फ़ैसला दे सकता है और इसमें उसे यह बताने की ज़रूरत नहीं कि वह ऐसा क्यों कर रहा है।

7. निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अमल में लाए जाने वाले विभिन्न क्षेत्राधिकार; मसलन – मूल, अपीली और परामर्शकारी – से इनका मिलान कीजिए।
   (क) सरकार जानना चाहती थी कि क्या वह पाकिस्तान – अधिग्रहीत जम्मू-कश्मीर के निवासियों की नागरिकता के संबंध में कानून पारित कर सकती है।
   (ख) कावेरी नदी के जल विवाद के समाधान के लिए तमिलनाडु सरकार अदालत की शरण लेना चाहती है।
   (ग) बांध स्थल से हटाए जाने के विरुद्ध लोगों द्वारा की गई अपील को अदालत ने ठुकरा दिया।

8. जनहित याचिका किस तरह गरीबों की मदद कर सकती है?

9. क्या आप मानते हैं कि न्यायिक सक्रियता से न्यायपालिका और कार्यपालिका में विरोध पनप सकता है? क्यों ?

10. न्यायिक सक्रियता मौलिक अधिकारों की सुरक्षा से किस रूप में जुड़ी है? क्या इससे मौलिक अधिकारों के विषय-क्षेत्र को बढ़ाने में मदद मिली है?

© NCERT not to be republished

अध्याय सात

संघवाद

11103CH07

परिचय

इस अध्याय में भारत के राजनीतिक मानचित्रों (1947-2017) को देखिए। उनमें आपको काफी परिवर्तन दिखाई देगा। राज्यों की सीमाएँ और नाम बदल गए हैं तथा राज्यों की संख्या में भी अंतर आ गया है। आज़ादी के समय अपने देश में अधिकांश प्रांत ऐसे थे जिन्हें अंग्रेजों ने महज प्रशासनिक सुविधा के लिए गठित किया था। फिर कुछ देशी रियासतों का स्वतंत्र भारत में विलय हो गया। इन देशी रियासतों को प्रांतों से जोड़ दिया गया। इसे आप 1947 के मानचित्र में देख सकते हैं। तब-से लेकर आज तक राज्यों की सीमाएँ कई बार बदल चुकी हैं। इस अवधि में न केवल राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन हुआ बल्कि कुछ राज्यों की जनता की इच्छा के अनुरूप उनके नाम भी बदल गए। जैसे मैसूर का नाम कर्नाटक तथा मद्रास का नाम तमिलनाडु हो गया। ये मानचित्र 70 वर्षों में हुए परिवर्तनों को दिखाते हैं। एक तरह से ये नक्शे हमसे भारत में संघवाद के कामकाज की कहानी कहते हैं।

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आपको निम्नलिखित बातों की जानकारी होगी -

- *संघवाद क्या है?*
- *भारतीय संविधान के संघीय व्यवस्था संबंधी प्रावधान क्या हैं?*
- *केंद्र व राज्यों के संबंध से जुड़े मुद्दे, और*
- *विशेष किस्म की बुनावट और ऐतिहासिक विशेषता वाले कुछ राज्यों के लिए निर्धारित विशिष्ट प्रावधान क्या हैं?*

2024-25

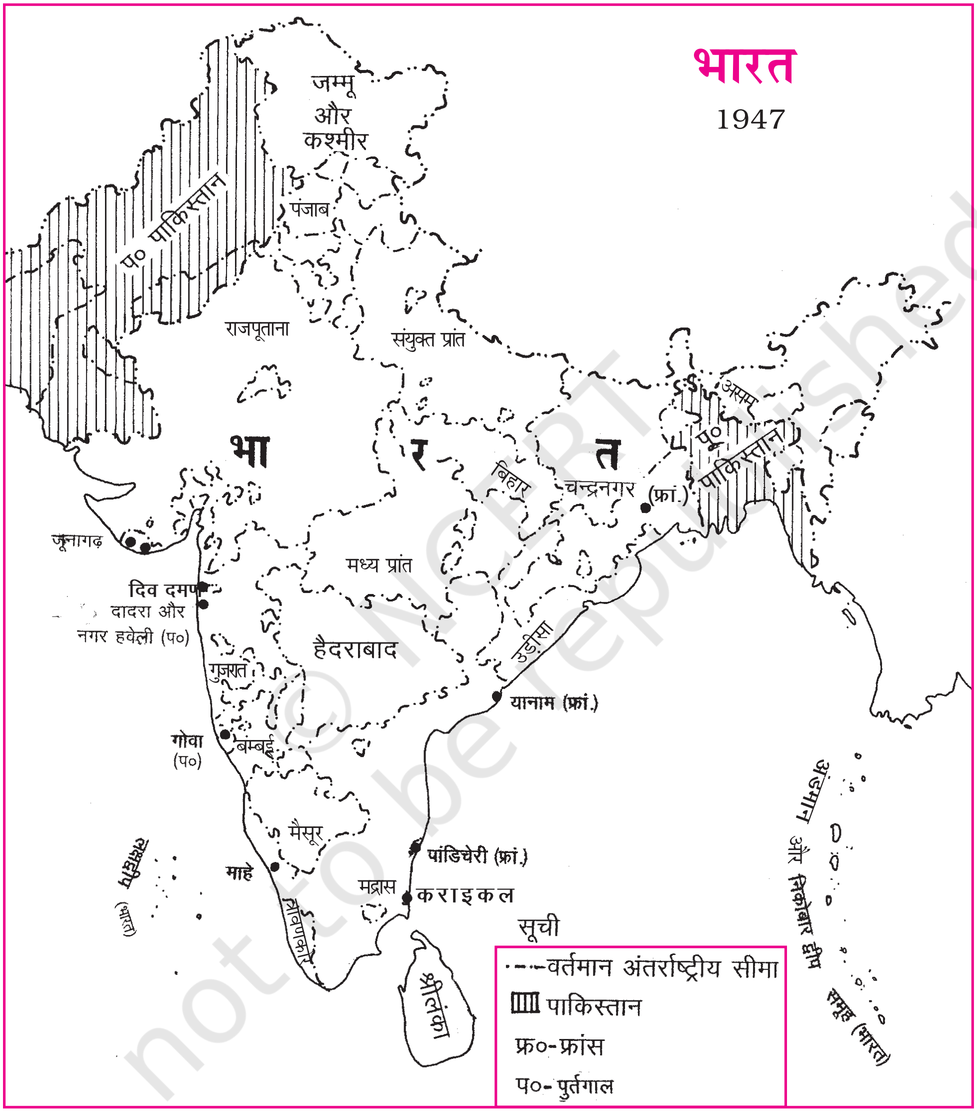

1947 में भारत संघ के प्रांत

© NCERT not to be republished

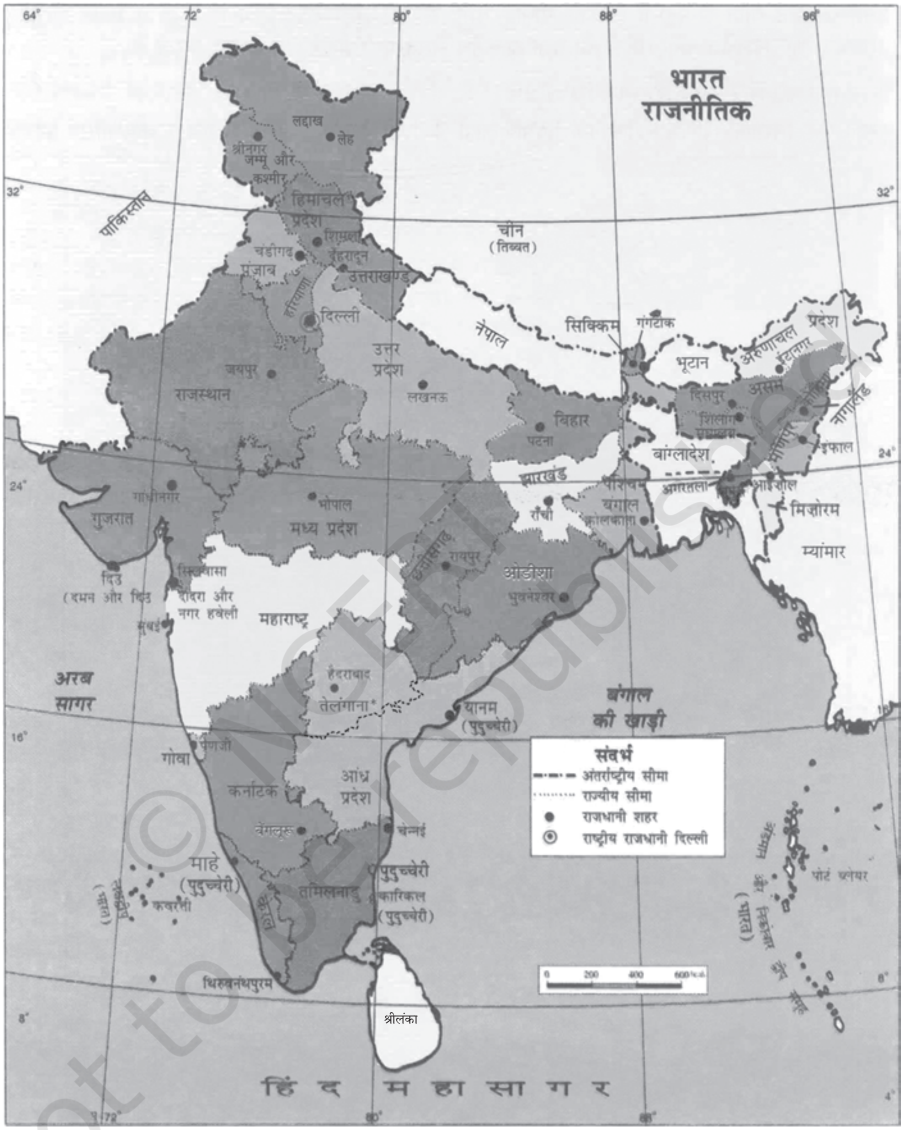
भारत
राजनीतिक
पाकिस्तान
चीन
(तिब्बत)
नेपाल
भूटान
बांग्लादेश
म्यांमार
श्रीलंका
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
हिंद महासागर
लद्दाख
लेह
श्रीनगर
जम्मू और कश्मीर
हिमाचल प्रदेश
शिमला
चंडीगढ़
पंजाब
देहरादून
उत्तराखण्ड
हरियाणा
दिल्ली
उत्तर प्रदेश
लखनऊ
जयपुर
राजस्थान
बिहार
पटना
सिक्किम
गंगटोक
अरुणाचल प्रदेश
असम
दिसपुर
नागालैंड
इंफाल
मिज़ोरम
आइज़ोल
झारखंड
राँची
पश्चिम बंगाल
कोलकाता
गांधीनगर
गुजरात
भोपाल
मध्य प्रदेश
रायपुर
ओडीशा
भुवनेश्वर
दिउ
(दमन और दिउ)
सिलवासा
दादरा और नगर हवेली
मुंबई
महाराष्ट्र
हैदराबाद
तेलंगाना
यानम
(पुदुच्चेरी)
पणजी
गोवा
कर्नाटक
आंध्र प्रदेश
चेन्नई
बेंगलूरु
माहे
(पुदुच्चेरी)
पुदुच्चेरी
कारिकल
(पुदुच्चेरी)
तमिलनाडु
कवरत्ती
तिरुवनंतपुरम
पोर्ट ब्लेयर
संदर्भ
अंतर्राष्ट्रीय सीमा
राज्यीय सीमा
राजधानी शहर
राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली

7.1 संघवाद क्या है?

सोवियत संघ विश्व की एक महाशक्ति था पर 1989 के बाद वह अनेक स्वतंत्र देशों में बँट गया। इनमें से कुछ ने मिल कर **'स्वतंत्र राज्यों का राष्ट्रमंडल'** बना लिया। सोवियत संघ के विघटन के प्रमुख कारण वहाँ शक्तियों का जमाव और अत्यधिक केंद्रीकरण की प्रवृत्तियाँ थीं। इसके अलावा उज़्बेकिस्तान जैसे भिन्न भाषा और संस्कृति वाले क्षेत्रों पर रूस के आधिपत्य ने भी विघटन को बढ़ावा दिया। कुछ अन्य राज्यों जैसे चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया और पाकिस्तान को भी अपने देश का विभाजन देखना पड़ा। कनाडा में भी अंग्रेजी-भाषी और फ्रेंच-भाषी क्षेत्रों के आधार पर विभाजन की संभावना बढ़ गई थी। भारत के लिए क्या यह महान उपलब्धि नहीं कि 1947 के दुखद विभाजन और स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में पिछले सात दशकों से वह अपना अखंड तथा स्वतंत्र अस्तित्व बनाए हुए हैं? आखिर इस उपलब्धि का आधार क्या है? क्या हम कह सकते हैं कि इसका काफी कुछ श्रेय भारतीय संविधान द्वारा अंगीकृत संघीय व्यवस्था को जाता है?

ऊपर जिन देशों का उल्लेख किया गया है वे सभी संघीय राज्य थे। पर वे एकजुट न रह सके। इससे लगता है कि संघीय संविधान अपनाने के साथ-साथ संघीय व्यवस्था की प्रकृति और व्यवहार भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

वेस्टइंडीज़ में संघवाद

आपने वेस्टइंडीज़ की क्रिकेट टीम के बारे में सुना होगा। लेकिन क्या वेस्टइंडीज़ नाम का कोई देश भी है?

भारत की ही तरह वेस्टइंडीज भी अंग्रेजों का उपनिवेश था। 1958 में 'वेस्टइंडीज़ संघ' (फेडरेशन ऑफ वेस्टइंडीज़) का जन्म हुआ। इसकी केंद्रीय सरकार कमज़ोर थी और प्रत्येक संघीय इकाई की अपनी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था थी। इस वजह से और अन्य संघीय इकाइयों में राजनैतिक प्रतिस्पर्धा के कारण 1962 में इस संघ को भंग कर दिया। बाद में 1973 की चिगुआरामस-संधि के द्वारा इन स्वतंत्र प्रायद्वीपों ने एक साझी संसद, सर्वोच्च न्यायालय, मुद्रा और 'केरीबियन समुदाय' नामक साझा-बाज़ार जैसी संयुक्त संस्थाओं का निर्माण किया। केरीबियन समुदाय की एक साझी कार्यपालिका भी है और सदस्य देशों की सरकारों के प्रधान उस कार्यपालिका के सदस्य हैं। इस प्रकार वहाँ की इकाइयाँ न तो एक देश के रूप में रह सकीं और न ही वे अलग-अलग रह सकीं।

© NCERT not to be republished

भारतीय भू–भाग एक महाद्वीप की तरह विशाल और अनेक विविधताओं से भरा है। यहाँ 20 प्रमुख और सैकड़ों अन्य छोटी भाषाएँ हैं। यहाँ अनेक धर्मों के मानने वाले लोग निवास करते हैं। देश के विभिन्न भागों में करोड़ों आदिवासी निवास करते हैं। इन विविधताओं के बावजूद हम एक साझी जमीन पर रहते हैं और हमारा एक साझा इतिहास है। खासकर उन दिनों का जब हम आज़ादी की लड़ाई लड़ रहे थे। हमारे बीच दूसरी कई समानताएँ हैं। इसी कारण हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने भारत को 'विविधता में एकता' के रूप में परिभाषित किया है। कभी–कभार इसे 'विविधताओं के साथ एकता' की संज्ञा भी दी जाती है।

मैं समझ गई! यह हमारे स्कूल की तरह है। मेरी पहचान 9 या 12 या ऐसे ही किसी कक्षा की है और हमारे बीच अलग–अलग फ़ैसलों को लेकर होड़ चलती रहती है। लेकिन हम सब एक ही स्कूल के छात्र हैं और हमें इसका गर्व है।

संघवाद में कोई ऐसे निश्चित और कठोर सिद्धांत नहीं होते जो प्रत्येक ऐतिहासिक परिस्थिति में समान रूप से लागू हों। शासन के सिद्धांत के रूप में संघवाद विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न स्वरूप ग्रहण करता है। संघीय राज्य की शुरुआत अमेरिका से हुई लेकिन वह जर्मनी और भारतीय संघवाद से भिन्न है। फिर भी संघवाद की कुछ मूल अवधारणाएँ और विचार अवश्य हैं।

- निश्चित रूप से संघवाद एक संस्थागत प्रणाली है जो दो प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं को समाहित करती है। इसमें एक प्रांतीय स्तर की होती है और दूसरी केंद्रीय स्तर की। प्रत्येक सरकार अपने क्षेत्र में स्वायत्त होती है। कुछ संघीय देशों में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था होती है पर भारत में इकहरी नागरिकता है।
- इस प्रकार लोगों की दोहरी पहचान और निष्ठाएँ होती हैं। वे अपने क्षेत्र के भी होते हैं और राष्ट्र के भी। जैसे हममें से कोई गुजराती या झारखंडी होने के साथ–साथ भारतीय भी होता है। प्रत्येक स्तर की राजनीतिक व्यवस्था की कुछ विशिष्ट शक्तियाँ और उत्तरदायित्व होते हैं तथा वहाँ एक अलग सरकार भी होती है।
- दोहरे शासन की विस्तृत रूपरेखा अमूमन एक लिखित संविधान में मौजूद होती है। यह संविधान सर्वोच्च होता है और दोनों सरकारों की शक्तियों का स्रोत भी। राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों–जैसे प्रतिरक्षा और मुद्रा–का उत्तरदायित्व संघीय या केंद्रीय सरकार का होता है। क्षेत्रीय या स्थानीय महत्त्व के विषयों पर प्रांतीय राज्य सरकारें जवाबदेह होती हैं।

- केंद्र और राज्यों के मध्य किसी टकराव को रोकने के लिए एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था होती है जो संघर्षों का समाधान करती है। न्यायपालिका को केंद्रीय सरकार और राज्यों के बीच शक्ति के बँटवारे के संबंध में उठने वाले कानूनी विवादों को हल करने का अधिकार होता है।

संघवाद के वास्तविक कामकाज का निर्धारण राजनीति, संस्कृति, विचारधारा और इतिहास की वास्तविकताओं से होता है। आपसी विश्वास, सहयोग, सम्मान और संयम की संस्कृति हो, तो संघवाद का कामकाज आसानी से चलता है। राजनैतिक दलों के व्यवहार से भी यह तय होता है कि संविधान किस रास्ते चलेगा। यदि कोई एक इकाई, प्रांत, भाषाई समुदाय या विचारधारा पूरे संघ पर हावी हो जाए तो दबदबा कायम करने वाली ताकत के साथ जो इकाइयाँ या लोग नहीं हैं उनमें विरोध पनपता है। ऐसी स्थिति में नाराज़ इकाइयाँ अपने अलग होने की माँग उठा सकती है। नौबत गृहयुद्ध तक की आ सकती है। बहुत–से देशों को इस अनुभव से गुजरना पड़ा है।

हाँ, मुझे याद है कि हमने पिछले अध्याय में पढ़ा था कि संविधान ही फ़ैसला करता है कि किसको कितनी शक्ति मिलनी चाहिए।

UP gets Rs 19,000 cr, Yadav says satisfied

ENS & AGENCIES
NEW DELHI, DECEMBER 22

THE Planning Commission today approved Rs 19,000 crore to Uttar Pradesh for the year 2006-07. The state had been granted Rs 13,500 crore last year.

"The Planning Commission has given up Rs 19,000 for 2006-07. I got what I had demanded. I am fully satisfied

नए राज्यपाल की नियुक्ति राज्य सरकार की सहमति से हो: नीतीश

6 CENTRESTAGE
NEW DELHI JANUARY 29, 2006

'For long governors have been in rows. We too want an independent person'

While the Supreme Court judgement on the Bihar Assembly dissolution was a severe indictment of outgoing governor Buta Singh, it also brought into question the role played by the Rashtriya Janata Dal (RJD) chief

Thereby there was no other option left for Buta Singh but to step down after the SC verdict, and thereby we welcomed his decision. But once again our stand remains that dissolution was not wrong

castes (EBCs). How will you counter it, since your party claims to be the real protector of the weaker sections?

Twenty per cent reservation for

Governors being used to destabilise State Governments, says Mulayam Singh

SP is the Congress' most favourite target; politics of vendetta

LUCKNOW: Samajwadi Party president and Uttar Pradesh Chief Minister Mulayam Singh on Sunday criticised the UPA Government for "using Governors as tools to destabilise State Governments."

"Today, what we are witnessing is not politics of principles, but vendetta," he told a rally of the SP youth wing here.

The gubernatorial offices were increasingly being used to "destabilise State Governments headed by non-Congress parties." The Centre was "misusing" powers, through several government agencies, to seek vendetta against political rivals

Mulayam Singh Yadav

COLUMN CENTIMETRES
A measure of the stories judged most important by India's main newspapers

© NCERT not to be republished

नाइज़ीरिया में संघवाद

यदि किसी देश के विभिन्न क्षेत्र और समुदाय एक-दूसरे पर विश्वास नहीं करते तो वहाँ संघीय व्यवस्था भी एकता लाने में असफल होगी। इसे नाइज़ीरिया के उदाहरण से समझा जा सकता है। 1914 तक उत्तरी नाइज़ीरिया और दक्षिणी नाइज़ीरिया ब्रिटेन के दो उपनिवेश थे। 1950 में इबादान संवैधानिक सम्मेलन में नाइज़ीरिया के नेताओं ने एक संघीय संविधान बनाने का निर्णय लिया। नाइज़ीरिया की तीन बड़ी जातीयताएँ एरुबा, इबो और हउसा-फुलानी हैं। इनके नियंत्रण में क्रमश: देश के तीन क्षेत्र पश्चिम, पूर्व और उत्तर थे। इन क्षेत्रों पर इनका अपना-अपना नियंत्रण था। इनके द्वारा अन्य क्षेत्रों में अपना प्रभाव बढ़ाने के प्रयास से भय और संघर्ष का माहौल बना। इससे वहाँ एक सैनिक शासन की स्थापना हुई। 1960 के संविधान में केंद्र और प्रांतीय सरकारें संयुक्त रूप से नाइज़ीरिया की पुलिस का नियंत्रण करती थी। 1979 के सैनिक संविधान के अंतर्गत किसी भी राज्य को सिविल पुलिस रखने का अधिकार नहीं था।

हालाँकि 1999 में नाइज़ीरिया में लोकतंत्र की दुबारा बहाली हुई लेकिन धार्मिक विभेद बने रहे। नाइज़ीरियाई संघ के सामने यह समस्या भी बनी रही कि तेल संसाधन से प्राप्त राजस्व पर किसका नियंत्रण होगा। इस प्रकार नाइज़ीरिया की विभिन्न संघीय इकाइयों के बीच धार्मिक, जातीय और आर्थिक मतभेद बरकरार हैं।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- एक संघीय व्यवस्था में केंद्रीय सरकार की शक्तियाँ कौन तय करता है?
- संघात्मक व्यवस्था में केंद्र सरकार और राज्यों में टकराव का समाधान कैसे होता है?

© NCERT not to be republished

भारतीय संविधान में संघवाद

आज़ादी से पहले ही राष्ट्रीय आंदोलन के अनेक नेता इस विषय पर सहमत थे कि भारत जैसे विशाल देश पर शासन करने के लिए शक्तियों को प्रांतीय और केंद्रीय सरकारों के बीच बाँटना ज़रूरी होगा। उन्हें यह भी भान था कि भारतीय समाज में क्षेत्रीय और भाषाई विविधताएँ हैं। इन विविधताओं को मान्यता देने की आवश्यकता थी। विभिन्न क्षेत्रों और भाषा-भाषी लोगों को सत्ता में सहभागिता करनी थी तथा इन क्षेत्रों के लोगों को स्वशासन का अवसर मिलना चाहिए था। अगर हमारी मंशा लोकतांत्रिक शासन स्थापित करने की थी, तो इन बातों को लागू करना अपरिहार्य था।

आखिरकार, साथ रहने का उद्देश्य यही तो होना चाहिए कि हम सब खुश रहें और एक-दूसरे को खुश रखें।

प्रश्न केवल यह था कि क्षेत्रीय सरकारों को कितना अधिकार प्रदान किया जाए। मुस्लिम लीग द्वारा मुसलमानों को ज़्यादा प्रतिनिधित्व देने के आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में विभाजन के पूर्व एक समझौता फार्मूले पर चर्चा हुई, जिसके अनुसार क्षेत्रीय सरकारों को काफी ज़्यादा अधिकार देने का प्रस्ताव आया। पर भारत के विभाजन का निर्णय होने पर संविधान सभा ने ऐसी सरकार के गठन का निर्णय लिया जो केंद्र और राज्यों के आपसी सहयोग और एकता तथा राज्यों के लिए अलग अधिकार के सिद्धांतों पर आधारित हो। भारतीय संविधान द्वारा अंगीकृत संघीय व्यवस्था का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि केंद्र और राज्यों के बीच संबंध सहयोग पर आधारित होगा। इस प्रकार विविधता को मान्यता देने के साथ ही संविधान एकता पर बल देता है।

मिसाल के तौर पर क्या आप इस बात से वाकिफ़ हैं कि भारत के संविधान के अंग्रेज़ी संस्करण में 'फेडरेशन' शब्द का नहीं बल्कि 'यूनियन' शब्द का प्रयोग किया गया है? हालाँकि हिंदी भाषा में 'फेडरेशन' और 'यूनियन' दोनों के लिए ही 'संघ' शब्द का प्रयोग होता है लेकिन संविधान भारत का वर्णन इन शब्दों में करता है –

> *अनुच्छेद 1 – (1) भारत, अर्थात् इंडिया, राज्यों का संघ (यूनियन) होगा।*
> *(2) राज्य और उनके राज्यक्षेत्र वे होंगे जो पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं।*

© NCERT not to be republished

मुझे लगता है कि प्रदेशों के पास बहुत कम धन रहता होगा। वे अपना काम कैसे चलाते होंगे? यह तो बिलकुल उन परिवारों जैसा मामला है जहाँ रुपए-पैसे तो पति के हाथ में रहते हैं और घर पत्नी को चलाना पड़ता है।

शक्ति—विभाजन

भारत के संविधान में दो तरह की सरकारों की बात मानी गई है–एक संपूर्ण राष्ट्र के लिए जिसे संघीय सरकार या केंद्रीय सरकार कहते हैं और दूसरी प्रत्येक प्रांतीय इकाई या राज्य के लिए जिसे राज्य सरकार कहते हैं। ये दोनों ही संवैधानिक सरकारें हैं और इनके स्पष्ट कार्य-क्षेत्र हैं। यदि कभी यह विवाद हो जाए कि कौन-सी शक्तियाँ केंद्र के पास है और कौन-सी राज्यों के पास, तो इसका निर्णय न्यायपालिका संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार करेगी। संविधान इस बात की स्पष्ट व्यवस्था करता है कि कौन-कौन-सी शक्तियाँ केवल केंद्र सरकार को प्राप्त होंगी और कौन-कौन-सी केवल राज्यों को। (अगले पृष्ठ पर दिए गए चार्ट को ध्यान से देखें। इसमें दिखाया गया है कि केंद्र और राज्यों के बीच में शक्तियों को कैसे बाँटा गया है।) शक्ति विभाजन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि संविधान ने आर्थिक और वित्तीय शक्तियाँ केंद्रीय सरकार के हाथ में सौंपी है। राज्यों के उत्तरदायित्व बहुत अधिक हैं पर आय के साधन कम।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- क्या आप समझते हैं कि अवशिष्ट शक्तियों का अलग से उल्लेख करना ज़रूरी है? क्यों?
- बहुत-से राज्य शक्ति विभाजन से असंतुष्ट क्यों रहते हैं?

© NCERT not to be republished

भारत का संविधान

संघ सूची

इसमें शामिल हैं

- प्रतिरक्षा
- परमाण्विक ऊर्जा
- विदेश-मामले
- युद्ध और शांति
- बैंकिंग
- रेलवे
- डाक और तार
- वायुसेवा
- बंदरगाह
- विदेश-व्यापार
- मुद्रा

इन विषयों पर सिर्फ केंद्रीय विधायिका ही कानून बना सकती है

राज्य सूची

इसमें शामिल विषय हैं

- कृषि
- पुलिस
- जेलखाना
- स्थानीय शासन
- सार्वजनिक स्वास्थ्य
- भूमि
- शराब
- वाणिज्य-व्यापार
- पशुपालन
- प्रादेशिक लोक सेवा

आम तौर पर इन विषयों पर सिर्फ प्रांतीय विधायिका ही कानून बना सकती है

समवर्ती सूची

इसमें शामिल विषय हैं

- शिक्षा
- कृषि-भूमि के अतिरिक्त किसी अन्य संपदा का हस्तांतरण।
- वन
- मज़दूर संघ
- सामानों में मिलावट
- गोद लेना और उत्तराधिकार

केंद्र और प्रांत दोनों की विधायिका इन मामलों पर कानून बना सकती है।

अवशिष्ट शक्तियाँ

इनमें वे सभी मामले शामिल हैं जिनका उल्लेख किसी भी सूची में नहीं हुआ है।

- साइबर कानून

इन विषयों पर केवल केंद्रीय विधायिका ही कानून बना सकती है।

© NCERT not to be republished

सशक्त केंद्रीय सरकार और संघवाद

अमूमन ऐसा माना जाता है कि भारतीय संविधान द्वारा एक सशक्त केंद्रीय सरकार की स्थापना की गई है। भारत एक महाद्वीप की तरह विशाल तथा अनेकानेक विविधताओं और सामाजिक समस्याओं से भरा है। संविधान निर्माताओं की मान्यता थी कि हमें एक संघीय संविधान चाहिए जो इन विविधताओं को समेट सके। पर वे एक शक्तिशाली केंद्रीय सरकार की स्थापना भी करना चाहते थे जो विघटनकारी प्रवृत्तियों पर अंकुश रख सके और सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन ला सके। स्वतंत्रता के समय केंद्र के लिए ऐसी शक्तियाँ आवश्यक थीं क्योंकि उस समय देश में न केवल ब्रिटिश सरकार द्वारा गठित कुछ प्रांत थे बल्कि 500 से ज़्यादा देशी रियासतें भी थीं जिनका या तो पुराने प्रांतों में विलय या नए प्रांतों के रूप में गठन होना था।

मैं अपने सदन के सम्मानित मित्रों को बताना चाहता हूँ कि सभी संविधानों में शक्तियों का प्रवाह केंद्र की ओर रहा है .... बदलती हुई परिस्थितियों के कारण कोई भी राष्ट्र-राज्य, चाहे वे एकात्मक रहे हों या संघात्मक, पुलिस राज्य से लोक कल्याणकारी राज्य बन गए हैं और देश की आर्थिक खुशहाली का अंतिम उत्तरदायित्व केंद्र सरकार का हो गया है।

टी. टी. कृष्णामाचारी
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 955-956, 25 नवंबर 1949

देश की एकता बनाए रखने के साथ-साथ संविधान निर्माता यह भी चाहते थे कि सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का समाधान एक शक्तिशाली केंद्रीय सरकार करे और ऐसा करने में उसे राज्यों का सहयोग भी प्राप्त हो। गरीबी, निरक्षरता और आर्थिक-असमानता आदि कुछ ऐसी समस्याएँ थीं जिनके समाधान के लिए नियोजन और समन्वय बहुत ज़रूरी था। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता और विकास की चिंताओं ने संविधान निर्माताओं को एक सशक्त केंद्रीय सरकार बनाने की प्रेरणा दी।

आइए, उन संवैधानिक प्रावधानों पर ध्यान दें जो सशक्त केंद्रीय सरकार की स्थापना करते हैं –

- किसी राज्य के अस्तित्व और उसकी भौगोलिक सीमाओं के स्थायित्व पर संसद का नियंत्रण है। अनुच्छेद 3 के अनुसार संसद 'किसी राज्य में से उसका राज्य क्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को ... मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकती है'। वह किसी राज्य की सीमाओं या नाम में परिवर्तन कर सकती है। पर इस शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए संविधान पहले प्रभावित राज्य के विधान मंडल को विचार व्यक्त करने का अवसर देता है।
- संविधान में केंद्र को अत्यन्त शक्तिशाली बनाने वाले कुछ आपातकालीन प्रावधान हैं जो लागू होने पर हमारी संघीय व्यवस्था को एक अत्यधिक केंद्रीकृत व्यवस्था में बदल देते हैं। आपातकाल के दौरान शक्तियाँ कानूनी रूप से केंद्रीकृत हो जाती है। संसद को यह शक्ति भी प्राप्त हो जाती है कि वह उन विषयों पर कानून बना सके जो राज्यों के अधिकार क्षेत्र में आते हैं।
- सामान्य स्थितियों में भी केंद्र सरकार को अत्यन्त प्रभावी वित्तीय शक्तियाँ और उत्तरदायित्व हैं। सबसे पहले तो आय के प्रमुख संसाधनों पर केंद्र सरकार का नियंत्रण है। इस प्रकार केंद्र के पास आय के अनेक संसाधन हैं और राज्य अनुदानों और वित्तीय सहायता के लिए केंद्र पर आश्रित हैं। दूसरी तरफ स्वतंत्रता के बाद भारत ने तेज़ आर्थिक प्रगति और विकास के लिए नियोजन को साधन के रूप में प्रयोग किया। नियोजन के कारण आर्थिक फ़ैसले लेने की ताकत केंद्र सरकार के हाथ में सिमटती गई। केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त योजना आयोग राज्यों के संसाधन-प्रबंध की निगरानी करता है। इसके अलावा, केंद्र सरकार अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर राज्यों को अनुदान और ऋण देती है। आर्थिक संसाधनों का यह वितरण असंतुलित माना जाता है और सरकार पर अकसर यह आरोप लगाया जाता है कि वह विरोधी दलों द्वारा शासित राज्यों के प्रति भेदभावपूर्ण रवैया अपनाती है।
- जैसा कि हम आगे पढ़ेंगे राज्य के राज्यपाल को यह शक्ति प्राप्त है कि वह राज्य सरकार को हटाने और विधान सभा भंग करने का

मैं अब समझ गया कि हमारा संविधान क्यों दूसरों की सिर्फ नकल भर नहीं है। इसमें संघवाद का नक्शा निश्चित ही अपनी ज़रूरतों के हिसाब से बनाया गया।

सिफारिश राष्ट्रपति को भेज सके। इसके अतिरिक्त सामान्य परिस्थिति में भी राज्यपाल को यह शक्ति प्राप्त है कि वह विधान मंडल द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित कर सके। इससे केंद्र सरकार को यह अवसर मिल जाता है कि वह किसी राज्य के कानून निर्माण में देरी कर सके और यदि चाहे तो ऐसे विधेयकों की परीक्षा कर उन पर निषेधाधिकार (वीटो) का प्रयोग करके उसे पूरी तरह नकार दे।

- ऐसी परिस्थितियाँ आ सकती हैं जब केंद्र सरकार द्वारा राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाना आवश्यक हो जाए। पर ऐसा करने के लिए पहले राज्य सभा की अनुमति लेना आवश्यक है। संविधान में साफ-साफ कहा गया है कि केंद्रीय कार्यपालिका की शक्ति प्रादेशिक कार्यपालिका की शक्ति से ज़्यादा होगी।

इसके अतिरिक्त केंद्र सरकार राज्य सरकारों को निर्देश दे सकती है। संविधान का निम्नलिखित प्रावधान इसे स्पष्ट करता है –

अनुच्छेद 257 (1) – ''प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग किया जाएगा जिससे संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई अड़चन न हो या उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देश देने तक होगा जो भारत सरकार को इस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हों।''

अरे! लगता तो यह है कि केंद्र सरकार के पास ही सारी शक्तियाँ हैं। क्या राज्य इसकी शिकायत नहीं करते?

- आपने कार्यपालिका से संबंधित अध्याय में देखा था कि हमारी प्रशासकीय व्यवस्था इकहरी है। अखिल भारतीय सेवाएँ पूरे देश के लिए हैं और इसमें चयनित पदाधिकारी राज्यों के प्रशासन में कार्य करते हैं। अत: जिलाधीश के रूप में कार्यरत भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी या पुलिस कमिश्नर के रूप में कार्यरत भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों पर केंद्र सरकार का नियंत्रण होता है। राज्य न तो उनके विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई कर सकता है न ही उन्हें सेवा से हटा सकता है।

© NCERT not to be republished

- संविधान के दो अन्य अनुच्छेद 33 व 34 संघ सरकार की शक्ति को उस स्थिति में काफी बढ़ा देते हैं जब देश के किसी क्षेत्र में 'सैनिक शासन' (मार्शल लॉ) लागू हो जाय। ये प्रावधान संसद को इस बात का अधिकार देते हैं कि ऐसी स्थिति में वह केंद्र या राज्य के किसी भी अधिकारी के द्वारा शांति व्यवस्था बनाए रखने या उसकी बहाली के लिए किए गए किसी भी कार्य को कानूनन जायज करार दे सके। इसी के अंतर्गत **'सशस्त्र बल विशिष्ट शक्ति अधिनियम'** का निर्माण किया गया। इससे कभी-कभी जनता और सशस्त्र बलों में आपसी तनाव भी हुआ है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- इस दृष्टिकोण के पक्ष में दो तर्क दें कि हमारा संविधान एकात्मकता की ओर झुका हुआ है?
- क्या आप मानते हैं कि-

  (क) शक्तिशाली केंद्र राज्यों को कमज़ोर करता है?

  (ख) शक्तिशाली राज्यों से केंद्र कमज़ोर होता है?

© NCERT not to be republished

भारतीय संघीय व्यवस्था में तनाव

पिछले पृष्ठों में हमने पढ़ा कि संविधान ने केंद्र को बहुत अधिक शक्तियाँ प्रदान की हैं। यद्यपि संविधान विभिन्न क्षेत्रों की अलग-अलग पहचान को मान्यता देता है लेकिन फिर भी वह केंद्र को ज़्यादा शक्ति देता है। एक बार जब 'राज्य की पहचान' के सिद्धांत को मान्यता मिल जाती है तब यह स्वाभाविक ही है कि पूरे देश के शासन में और अपने शासकीय क्षेत्र में राज्यों द्वारा और ज़्यादा शक्ति तथा भूमिका की माँग उठायी जाय। इसी कारण राज्य ज़्यादा शक्ति की माँग करते हैं। समय-समय पर राज्यों ने ज़्यादा शक्ति और स्वायत्तता देने की माँग उठायी है। इससे केंद्र और राज्यों के बीच संघर्ष और विवादों का जन्म होता है। केंद्र और राज्य अथवा विभिन्न राज्यों के आपसी कानूनी विवादों का समाधान न्यायपालिका करती है। लेकिन स्वायत्तता की माँग एक राजनीतिक सवाल है जिसे आपसी बातचीत द्वारा ही हल किया जा सकता है।

केंद्र-राज्य संबंध

संविधान तो मात्र एक 'फ्रेमवर्क' या ढाँचा है। इस पर ईंट-गारा, सुर्खी-चूना चढ़ाने का काम राजनीति की वास्तविकताओं द्वारा होता है। अत: भारतीय संघवाद पर राजनीतिक प्रक्रिया की

परिवर्तनशील प्रकृति का काफी प्रभाव पड़ा है। 1950 तथा 1960 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय संघीय व्यवस्था की नींव रखी। इस दौरान केंद्र और राज्यों में काँग्रेस का वर्चस्व था। नए राज्यों के गठन की माँग के अलावा केंद्र और राज्यों के बीच संबंध शांतिपूर्ण और सामान्य रहे। राज्यों को आशा थी कि वे केंद्र से प्राप्त वित्तीय अनुदानों से विकास कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त केंद्र द्वारा सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए बनाई गई नीतियों के कारण भी राज्यों को काफ़ी आशा बंधी थी।

1960 के दशक के बीच में काँग्रेस के वर्चस्व में कुछ कमी आई और अनेक राज्यों में विरोधी दल सत्ता में आ गए। इससे राज्यों की और ज़्यादा शक्ति और स्वायत्तता देने की माँग बलवती हुई। इस माँग के पीछे प्रमुख कारण यह था कि केंद्र और राज्यों में भिन्न–भिन्न दल सत्ता में थे। अत: राज्यों की सरकारों ने केंद्र की काँग्रेसी सरकार द्वारा किए गए अवांछनीय हस्तक्षेपों का विरोध करना शुरू कर दिया। काँग्रेस के लिए भी विरोधी दलों द्वारा शासित राज्यों से संबंधों के तालमेल की बात पहले जैसी आसान नहीं रही। इस विचित्र राजनैतिक संदर्भ में संघीय व्यवस्था के अंदर स्वायत्तता की अवधारणा को लेकर वाद–विवाद छिड़ गया।

आखिरकार 1990 के दशक से काँग्रेस का वर्चस्व काफी कुछ खत्म हो गया है और हमने केंद्र में गठबंधन–राजनीति के युग में प्रवेश किया। राज्यों में भी विभिन्न राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दल सत्तारूढ़ हुए हैं। इससे राज्यों का राजनीतिक कद बढ़ा, विविधता का आदर हुआ और एक मँजे हुए संघवाद की शुरूआत हुई। इस तरह दूसरे दौर में स्वायत्तता का मसला राजनैतिक रूप से सरगर्म हुआ है।

बड़ी दिलचस्प बात है कि कानून और संविधान ही सारी बातों का फ़ैसला नहीं करते। आखिरकार, असली राजनीति ही हमारे सरकार के रूप-रंग का फ़ैसला करती है।

स्वायत्तता की माँग

समय–समय पर अनेक राज्यों और राजनीतिक दलों ने राज्यों को केंद्र के मुकाबले ज़्यादा स्वायत्तता देने की माँग उठाई है। लेकिन

विभिन्न राज्यों और दलों के लिए स्वायत्तता का अलग-अलग मतलब हो सकता है।

- कभी कभी इन माँगों के पीछे यह इच्छा होती है कि शक्ति विभाजन को राज्यों के पक्ष में बदला जाए तथा राज्यों को ज़्यादा तथा महत्त्वपूर्ण अधिकार दिए जाएँ। समय-समय पर अनेक राज्यों (तमिलनाडु, पंजाब, पश्चिम बंगाल) और दलों (द्रमुक, अकाली दल, माकपा) ने स्वायत्तता की माँग की।
- एक अन्य माँग यह है कि राज्यों के पास आय के स्वतंत्र साधन होने चाहिए और संसाधनों पर उनका ज़्यादा नियंत्रण होना चाहिए। इसे वित्तीय-स्वायत्तता भी कहते हैं। 1977 में पश्चिमी-बंगाल की वामपंथी सरकार ने केंद्र-राज्य संबंधों को पुनर्परिभाषित करने के लिए एक दस्तावेज़ प्रकाशित किया। तमिलनाडु और पंजाब की स्वायत्तता की माँगों में भी ज़्यादा वित्तीय अधिकार हासिल करने की मंशा छुपी हुई है।
- स्वायत्तता की माँग का तीसरा पहलू प्रशासकीय शक्तियों से संबंधित है। विभिन्न राज्य प्रशासनिक-तंत्र पर केंद्रीय नियंत्रण से नाराज़ रहते हैं।
- इसके अतिरिक्त, स्वायत्तता की माँग सांस्कृतिक और भाषाई मुद्दों से जुड़ी हुई भी हो सकती है। तमिलनाडु में हिंदी के वर्चस्व का विरोध और पंजाब में पंजाबी भाषा और संस्कृति के प्रोत्साहन की माँग इसके कुछ उदाहरण हैं। कुछ राज्य ऐसा महसूस करते रहे हैं कि हिंदी भाषी क्षेत्रों का अन्य क्षेत्रों पर वर्चस्व है। दरअसल 1960 के दशक में तो कुछ राज्यों में हिंदी को लागू करने के विरोध में आंदोलन भी हुए।

हाँ, मुझे पता है कि हिन्दी भारत की राजभाषा है, लेकिन देश के विभिन्न हिस्सों में रहने वाले मेरे बहुत से मित्र हिन्दी नहीं जानते हैं।

कार्टून बूझें

18 सितंबर 1949

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

संविधान सभा में राष्ट्रीय भाषा पर बहस के दौरान नेहरू को हिन्दी भाषी प्रान्तों से दूसरों के प्रति उदारता बरतने के लिए आग्रह करना पड़ा।

डोंट स्पेयर मी शंकर, पृष्ठ 24

© NCERT not to be republished

कार्टून बूझें

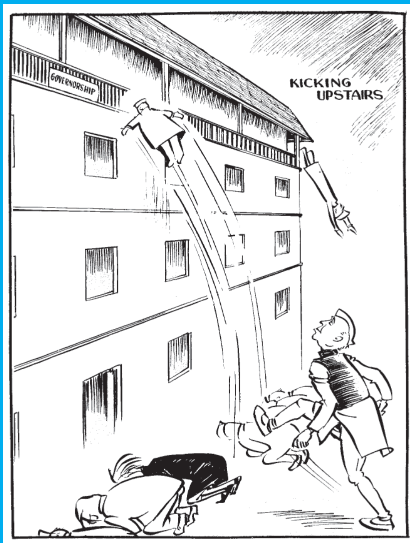

27 अप्रैल 1952

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

''जब नेहरू राज्यपालों की नियुक्ति कर रहे थे तो उनमें से कुछ मंत्री पद छोड़ने को इच्छुक नहीं थे।''

डोंट स्पेयर मी शंकर, पृष्ठ 89

राज्यपाल की भूमिका तथा राष्ट्रपति शासन

राज्यपाल की भूमिका केंद्र और राज्यों के बीच हमेशा ही विवाद का विषय रही है। राज्यपाल निर्वाचित पदाधिकारी नहीं होता। अधिकतर राज्यपाल सेवानिवृत्त सैन्य अधिकारी, लोकसेवक या राजनीतिज्ञ हुए हैं। फिर राज्यपाल की नियुक्ति केंद्र सरकार द्वारा होती है। अत: राज्यपाल के फ़ैसलों को अकसर राज्य सरकार के कार्यों में केंद्र सरकार के हस्तक्षेप के रूप में देखा जाता है। जब केंद्र और राज्य में अलग दल सत्तारूढ़ होते हैं तब राज्यपाल की भूमिका और विवादास्पद हो जाती है। केंद्र-राज्य संबंधों से जुड़े मसलों की पड़ताल के लिए केंद्र सरकार द्वारा 1983 में एक आयोग बनाया गया। इस आयोग को 'सरकारिया आयोग' के नाम से जाना जाता है। इस आयोग ने 1998 में अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की थी कि राज्यपालों की नियुक्ति अनिवार्य तया निष्पक्ष होकर की जानी चाहिए।

एक और कारण से राज्यपालों की शक्ति और भूमिका विवादास्पद हो जाती है। संविधान के सर्वाधिक विवादास्पद प्रावधानों में से एक अनुच्छेद 356 है। इसके द्वारा राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू किया जाता है। इस प्रावधान को किसी राज्य में तब लागू करते हैं जब "ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई हो कि उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता।" परिणामस्वरूप संघीय सरकार राज्य सरकार का अधिग्रहण कर लेती है। इस विषय पर राष्ट्रपति द्वारा जारी उद्घोषणा को संसद की स्वीकृति प्राप्त करना ज़रूरी होता है। राष्ट्रपति शासन को अधिकतम तीन वर्षों तक बढ़ाया जा सकता है। राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह राज्य सरकार को बर्खास्त करने तथा राज्य विधान सभा को निलंबित या विघटित करने की अनुशंसा कर सके। इससे अनेक विवाद पैदा हुए। कुछ मामलों में राज्य सरकारों को विधायिका में बहुमत होने के बाद भी बर्खास्त कर दिया गया। 1959 में केरल में और 1967 के बाद अनेक राज्यों में बहुमत की परीक्षा के बिना ही सरकारों को बर्खास्त कर दिया गया। कुछ मामले सर्वोच्च न्यायालय में भी गए तथा सर्वोच्च न्यायालय ने फ़ैसला दिया कि राष्ट्रपति-शासन लागू करने के निर्णय की संवैधानिकता की जाँच-पड़ताल न्यायालय कर सकता है।

© NCERT not to be republished

कार्टून बूझें

यह कहना एक दुर्भाव से भरा झूठ है कि हमने ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों को गिराया। हमने अपनी सरकार भी गिराई जैसे उत्तर प्रदेश और सिक्किम में। संभव है बाद में बिहार, मध्यप्रदेश आदि की भी अपनी सरकार हम गिराएं।

राज्य सरकार को गिराने का खेल हर किसी को अच्छा लगता है।

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

1967 तक अनुच्छेद 356 का अत्यन्त सीमित प्रयोग किया गया। 1967 के बाद अनेक राज्यों में गैर-काँग्रेसी सरकारें बनीं जबकि केंद्र में सत्ता काँग्रेस के पास रही। केंद्र ने अनेक अवसरों पर इसका प्रयोग राज्य सरकारों को बर्खास्त करने के लिए किया अथवा उसने राज्यपाल के माध्यम से बहुमत दल या गठबंधन को सत्तारूढ़ होने से रोका। उदाहरण के लिए सन् 1980 के दशक में केंद्रीय सरकार ने आंध्र प्रदेश और जम्मू-कश्मीर की निर्वाचित सरकारों को बर्खास्त किया।

नवीन राज्यों की माँग

हमारी संघीय व्यवस्था में नवीन राज्यों के गठन की माँग को लेकर भी तनाव रहा है। राष्ट्रीय-आंदोलन ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय एकता को ही नहीं बल्कि समान भाषा, क्षेत्र और संस्कृति पर आधारित एकता को भी जन्म दिया। हमारा राष्ट्रीय आंदोलन लोकतंत्र के लिए भी एक आंदोलन था। अत: राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान यह भी तय किया गया कि यथासंभव समान संस्कृति और भाषा के आधार पर राज्यों का गठन होगा।

इससे स्वतंत्रता के बाद भाषाई आधार पर राज्यों के गठन की माँग उठी। दिसंबर 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना की गई जिसने प्रमुख भाषाई समुदायों के लिए भाषा के आधार पर राज्यों के गठन की सिफारिश की।

कार्टून बूझें

26 जुलाई 1953

नए राज्यों के निर्माण के लिए माँगों की झड़ी लग गई है।

शंकर © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

1956 में कुछ राज्यों का पुनर्गठन हुआ। इससे भाषाई आधार पर राज्यों के गठन की शुरुआत हुई और यह प्रक्रिया अभी भी जारी है। 1960 में गुजरात और महाराष्ट्र का गठन हुआ; 1966 में पंजाब और हरियाणा को अलग–अलग किया गया। बाद में पूर्वोत्तर के राज्यों का पुनर्गठन किया गया और नए राज्यों – जैसे मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश का जन्म हुआ।

खुद करें — खुद सीखें

भारत के राज्यों की सूची बनाएँ और पता करें कि प्रत्येक राज्य का गठन किस वर्ष किया गया।

संघवाद का मतलब झगड़ा है क्या? पहले हमने केंद्र और राज्य के झगड़े के बारे में बात की और अब राज्यों के आपसी झगड़ों की बात चल रही है। क्या हम साथ-साथ शांतिपूर्वक नहीं रह सकते?

नए राज्य बनाने की माँग को पूरा करने तथा अधिक प्रशासकीय सुविधा के लिए कुछ बड़े राज्यों का विभाजन 2000 में किया गया। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार को विभाजित कर तीन नए राज्य क्रमशः छत्तीसगढ़, उत्तराखंड और झारखंड बनाए गए। 2014 में आंध्र प्रदेश का विभाजन कर तेलंगाना राज्य का गठन हुआ। कुछ क्षेत्र और भाषाई समूह अभी भी अलग राज्य के लिए संघर्ष कर रहे हैं जैसे महाराष्ट्र में विदर्भ।

अंतर्राज्यीय विवाद

जहाँ एक ओर राज्य अधिक स्वायत्तता और आय के स्रोतों पर अपनी हिस्सेदारी के सवाल पर केंद्र से विवाद की स्थिति में रहते हैं, वहीं दूसरी ओर संघीय व्यवस्था में दो या दो से अधिक राज्यों में आपसी विवाद के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। यह सच है कि कानूनी विवादों में न्यायपालिका पंच की भूमिका निभाती है लेकिन इन विवादों का स्वरूप मात्र कानूनी नहीं होता। इन विवादों के राजनीतिक पहलू भी होते हैं, अतः इनका सर्वोत्तम समाधान केवल विचार-विमर्श और पारस्परिक विश्वास के आधार पर ही हो सकता है।

© NCERT not to be republished

आमतौर पर दो प्रकार के गंभीर विवाद पैदा होते हैं। इसमें एक है सीमा विवाद। राज्य प्राय: पड़ोसी राज्यों के भू-भाग पर अपना दावा पेश करते हैं। यद्यपि राज्यों की सीमाओं का निर्धारण भाषाई आधार पर किया गया है, लेकिन सीमावर्ती क्षेत्रों में एक से अधिक भाषा बोलने वाले लोग रहते हैं। अत: इस विवाद को केवल भाषाई आधार पर नहीं सुलझाया जा सकता। ऐसा ही एक पुराना विवाद महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच 'बेलगाम' को लेकर है। मणिपुर और नागालैंड के बीच भी सीमा विवाद पुराना है। पंजाब से हरियाणा को अलग करने पर उनके बीच न केवल सीमावर्ती क्षेत्रों को लेकर बल्कि राजधानी चंडीगढ़ को लेकर भी विवाद है। चंडीगढ़ इन दोनों राज्यों की राजधानी है। 1985 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी की पंजाब के नेताओं से इस विषय पर कुछ सहमति बनी थी। इसके अनुसार चंडीगढ़ को पंजाब को हस्तांतरित किया जाना था। पर अभी तक ऐसा नहीं हो सका।

जहाँ सीमा संबंधी विवादों का स्वरूप भावनात्मक होता है वहीं नदियों के जल के बँटवारे को लेकर होने वाले विवाद की प्रकृति गंभीर है क्योंकि यह संबंधित राज्यों में पीने के पानी और कृषि की समस्या से जुड़ा है। आपने कावेरी जल विवाद के बारे में सुना होगा। यह तमिलनाडु और कर्नाटक के बीच एक प्रमुख विवाद है। दोनों राज्यों के किसान कावेरी के जल पर निर्भर हैं। यद्यपि इसे सुलझाने के लिए एक 'जल विवाद न्यायाधिकरण' है फिर भी ये दोनों राज्य इसे सुलझाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय की शरण में गए हैं। ऐसा ही एक विवाद नर्मदा नदी के जल के बँटवारे को लेकर गुजरात, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के बीच है। नदियाँ हमारे प्रमुख संसाधन हैं, इसीलिए अंतर्राष्ट्रीय जल विवाद में राज्यों के धैर्य और सहयोग भावना की परीक्षा हो जाती है।

हाँ! राज्यपाल के मामले में झगड़ा; भाषा के मसले पर झगड़ा और तो और सीमाओं तथा पानी को लेकर झगड़ा। ...... तब भी, हम किसी तरह साथ-साथ रहते हैं।

खुद करें—खुद सीखें

दो राज्यों के बीच किसी एक नदी जल विवाद के बारे में सूचनाएँ एकत्र करें।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- राज्य और अधिक स्वायत्तता की माँग क्यों करते हैं?
- स्वायत्तता और अलगाववाद में क्या फर्क है?

विशिष्ट प्रावधान

भारतीय संघवाद की सबसे नायाब विशेषता यह है कि इसमें अनेक राज्यों के साथ थोड़ा अलग व्यवहार किया जाता है। विधायिका का अध्ययन करते समय हमने पढ़ा था कि प्रत्येक राज्य का आकार और जनसंख्या भिन्न-भिन्न होने के कारण उन्हें राज्यसभा में असमान प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। जहाँ छोटे-से-छोटे राज्य को भी न्यूनतम प्रतिनिधित्व अवश्य प्रदान किया गया है वहीं इस व्यवस्था से यह भी सुनिश्चित किया गया कि बड़े राज्यों को ज़्यादा प्रतिनिधित्व मिल सके।

शक्ति के बँटवारे की योजना के तहत संविधान प्रदत्त शक्तियाँ सभी राज्यों को समान रूप से प्राप्त हैं। लेकिन कुछ राज्यों के लिए उनकी विशिष्ट सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप संविधान कुछ विशेष अधिकारों की व्यवस्था करता है। ऐसे अधिकतर प्रावधान पूर्वोत्तर के राज्यों (असम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मिज़ोरम आदि) के लिए हैं जहाँ विशिष्ट इतिहास और संस्कृति वाली जनजातीय-बहुल जनसंख्या निवास करती है। यहाँ के ये निवासी अपनी संस्कृति तथा इतिहास को बनाए रखना चाहते हैं। (अनुच्छेद 371)। बहरहाल, ये प्रावधान इस क्षेत्र के कुछ भागों में अलगाववाद और सशस्त्र विद्रोह को रोकने में सफल नहीं हो सके हैं। ऐसे ही कुछ विशिष्ट प्रावधान पहाड़ी राज्य हिमाचल प्रदेश तथा अन्य राज्यों जैसे आंध्र प्रदेश, गोवा, गुजरात, महाराष्ट्र, सिक्किम और तेलंगाणा के लिए भी हैं।

अब जाकर मुझे पता लगा कि पहले अध्याय में आए 'सुसंगत और संतुलित बनावट' का असली मतलब क्या है।

जम्मू और कश्मीर

विशेष दर्ज़े वाला अन्य राज्य जम्मू और कश्मीर (जे एंड के) (अनुच्छेद 370) था। जम्मू और कश्मीर बड़े रजवाड़ों में से एक था, जिसके पास भारत

या पाकिस्तान से जुड़ने या फिर स्वतंत्र रहने का विकल्प था। परंतु, स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत पश्चात् अक्तूबर, 1947 में पाकिस्तान ने अपनी ओर से कश्मीर पर कब्ज़ा करने के लिए क़बायली घुसपैठिए भेजे। इसने महाराजा हरि सिंह को भारत से मदद लेने के लिए मज़बूर किया और वे भारतीय संघ में सम्मिलित हो गए।

पश्चिमी और पूर्वी भागों के कई मुस्लिम बहुल क्षेत्र पाकिस्तान में मिल गए, परंतु जम्मू और कश्मीर एक अपवाद था। इन परिस्थितियों के अंतर्गत संविधान द्वारा उसे बहुत अधिक स्वायत्तता दी गई। अनुच्छेद 370 के अनुसार, संघ और समवर्ती सूचियों में उल्लेखित मामलों में कोई कानून भी बनाने के लिए राज्य की सहमति की आवश्यकता थी। यह अन्य राज्यों की स्थिति से भिन्न था। दूसरे राज्यों के मामले में, शक्तियों का बंटवारा जैसा तीन सूचियों में दिया गया था, स्वत: लागू होता है। जम्मू और कश्मीर के मामले में, केंद्र सरकार के पास मात्र सीमित शक्तियाँ थीं और संघ सूची तथा समवर्ती सूची में दी गई अन्य शक्तियों को केवल राज्य की सहमति से ही उपयोग में लाया जा सकता था। इसने जम्मू और कश्मीर राज्य को और अधिक स्वायत्तता प्रदान की।

पहले, एक संवैधानिक प्रावधान था जो राष्ट्रपति को राज्य सरकार की सहमति से स्पष्ट करने की अनुमति देता था कि राज्य पर संघ सूची के कौन-से भाग लागू होने चाहिए। राष्ट्रपति ने जम्मू और कश्मीर की सरकार की सहमति से दो संवैधानिक आदेश जारी किए थे, जिससे संविधान के बड़े हिस्से को राज्य में लागू कर दिया गया। परिणामस्वरूप, यद्यपि जम्मू और कश्मीर का अलग संविधान और झंडा था, संघ सूची के विषयों पर कानून बनाने की संसद की शक्ति को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया गया।

अन्य राज्यों तथा जम्मू और कश्मीर में शेष भिन्नताएँ यह थीं कि जम्मू और कश्मीर में राज्य की सहमति के बिना, आंतरिक अशांति के कारण आपातकाल की घोषणा नहीं की जा सकती थी। केंद्र सरकार राज्य में वित्तीय आपातकाल नहीं लगा सकती थी और जम्मू और कश्मीर में नीति निर्देशक सिद्धांत लागू नहीं होते थे। भारतीय संविधान में संशोधन (अनुच्छेद 368 के अंतर्गत) जम्मू और कश्मीर की सरकार की सहमति से ही लागू किए जा सकते थे।

वर्तमान में, 370 के अंतर्गत दिया गया विशेष दर्ज़ा अस्तित्व में नहीं है। जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम 2019 द्वारा, राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों –(1) जम्मू और कश्मीर और (2) लद्दाख में विभाजित कर दिया है। यह नई व्यवस्था 31 अक्तूबर, 2019 से प्रभावी हुई है।

© NCERT not to be republished

निष्कर्ष

संघवाद एक इंद्रधनुष की भाँति होता है जहाँ प्रत्येक रंग का अलग अस्तित्व होता है लेकिन वे सभी रंग मिल कर एक सुंदर और सद्भावपूर्ण दृश्य उपस्थित करते हैं। संघीय व्यवस्था केंद्र और राज्यों के बीच संतुलन बनाए रखने का कठिन कार्य करती है। कोई भी कानूनी या संस्थानिक फार्मूला संघीय व्यवस्था के सुचारु रूप से कार्य करने की गारंटी नहीं दे सकता। इसकी सफलता के लिए जनता और राजनीतिक प्रक्रिया को पारस्परिक विश्वास, सहनशीलता तथा सहयोग की भावना पर आधारित कुछ गुणों, मूल्यों और संस्कृति का विकास करना चाहिए। संघवाद एकता और अनेकता दोनों का आदर करता है। अनेकता और विविधताओं को समाप्त कर राष्ट्रीय एकता के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। ऐसी बाध्यकारी एकता वास्तव में और ज़्यादा सामाजिक संघर्ष तथा अलगाव को जन्म देती है जो अंत में एकता को ही नष्ट कर देती है। विभिन्नताओं और स्वायत्तता की माँगों के प्रति संवेदनशील तथा उत्तरदायी राजनीतिक व्यवस्था ही सहयोगी संघवाद का एकमात्र आधार हो सकती है।

प्रश्नावली

1. नीचे कुछ घटनाओं की सूची दी गई है। इनमें से किसको आप संघवाद की कार्य-प्रणाली के रूप में चिह्नित करेंगे और क्यों?

   (क) **केंद्र सरकार ने मंगलवार को जीएनएलएफ के नेतृत्व वाले दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल को छठी अनुसूची में वर्णित दर्जा देने की घोषणा की।** इससे पश्चिम बंगाल के इस पर्वतीय जिले के शासकीय निकाय को ज़्यादा स्वायत्तता प्राप्त होगी। दो दिन के गहन विचार-विमर्श के बाद नई दिल्ली में केंद्र सरकार, पश्चिम बंगाल सरकार और सुभाष घीसिंग के नेतृत्व वाले गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट (जीएनएलएफ) के बीच त्रिपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर हुए।

   (ख) **वर्षा प्रभावित प्रदेशों के लिए सरकार कार्य-योजना लाएगी।** केंद्र सरकार ने वर्षा प्रभावित प्रदेशों से पुनर्निर्माण की विस्तृत योजना भेजने को कहा है ताकि वह अतिरिक्त राहत प्रदान करने की उनकी माँग पर फौरन कार्रवाई कर सके।

   (ग) **दिल्ली के लिए नए आयुक्त।** देश की राजधानी दिल्ली में नए नगरपालिका आयुक्त को बहाल किया जाएगा। इस बात की पुष्टि करते हुए एमसीडी के वर्तमान आयुक्त राकेश मेहता ने कहा कि उन्हें अपने तबादले के आदेश मिल गए हैं और संभावना है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी अशोक कुमार उनकी जगह संभालेंगे। अशोक कुमार अरुणाचल प्रदेश के मुख्य सचिव की हैसियत से काम कर रहे हैं। 1975 बैच के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी श्री मेहता पिछले साढ़े तीन साल से आयुक्त की हैसियत से काम कर रहे हैं।

© NCERT not to be republished

(घ) **मणिपुर विश्वविद्यालय को केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा।** राज्यसभा ने बुधवार को मणिपुर विश्वविद्यालय को केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान करने वाला विधेयक पारित किया। मानव संसाधन विकास मंत्री ने वायदा किया है कि अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा और सिक्किम जैसे पूर्वोत्तर के राज्यों में भी ऐसी संस्थाओं का निर्माण होगा।

(ङ) **केंद्र ने धन दिया।** केंद्र सरकार ने अपनी ग्रामीण जलापूर्ति योजना के तहत अरुणाचल प्रदेश को 553 लाख रुपए दिए हैं। इस धन की पहली किश्त के रूप में अरुणाचल प्रदेश को 466 लाख रुपए दिए गए हैं।

(च) **हम बिहारियों को बताएँगे कि मुंबई में कैसे रहना है।** करीब 100 शिवसैनिकों ने मुंबई के जे.जे. अस्पताल में उठा-पटक करके रोजमर्रा के कामधंधे में बाधा पहुँचाई, नारे लगाए और धमकी दी कि गैर-मराठियों के विरुद्ध कार्रवाई नहीं की गई तो इस मामले को वे स्वयं ही निपटाएँगे।

(छ) **सरकार को भंग करने की माँग।** काँग्रेस विधायक दल ने प्रदेश के राज्यपाल को हाल में सौंपे एक ज्ञापन में सत्तारूढ़ डमोक्रेटिक एलायंस ऑफ नगालैंड (डीएएन) की सरकार को तथाकथित वित्तीय अनियमितता और सार्वजनिक धन के गबन के आरोप में भंग करने की माँग की है।

(ज) **एनडीए सरकार ने नक्सलियों से हथियार रखने को कहा।** विपक्षी दल राजद और उसके सहयोगी काँग्रेस तथा सीपीआई (एम) के वॉक आऊट के बीच बिहार सरकार ने आज नक्सलियों से अपील की कि वे हिंसा का रास्ता छोड़ दें। बिहार को विकास के नए युग में ले जाने के लिए बेरोजगारी को जड़ से खत्म करने के अपने वादे को भी सरकार ने दोहराया।

2. बताएँ कि निम्नलिखित में कौन-सा कथन सही होगा और क्यों?

(क) संघवाद से इस बात की संभावना बढ़ जाती है कि विभिन्न क्षेत्रों के लोग मेल-जोल से रहेंगे और उन्हें इस बात का भय नहीं रहेगा कि एक की संस्कृति दूसरे पर लाद दी जाएगी।

(ख) अलग-अलग किस्म के संसाधनों वाले दो क्षेत्रों के बीच आर्थिक लेनदेन को संघीय प्रणाली से बाधा पहुँचेगी।

(ग) संघीय प्रणाली इस बात को सुनिश्चित करती है कि जो केंद्र में सत्तासीन हैं उनकी शक्तियाँ सीमित रहें।

3. बेल्ज़ियम के संविधान के कुछ प्रारंभिक अनुच्छेद नीचे लिखे गए हैं। इसके आधार पर बताएँ कि बेल्ज़ियम में संघवाद को किस रूप में साकार किया गया है। भारत के संविधान के लिए ऐसा ही अनुच्छेद लिखने का प्रयास करके देखें।

शीर्षक-I : संघीय बेल्ज़ियम, इसके घटक और इसका क्षेत्र

अनुच्छेद-1 – बेल्ज़ियम एक संघीय राज्य है – जो समुदायों और क्षेत्रों से बना है।

अनुच्छेद-2 – बेल्ज़ियम तीन समुदायों से बना है - फ़्रेंच समुदाय, फ्लेमिश समुदाय और जर्मन समुदाय।

अनुच्छेद-3 – बेल्ज़ियम तीन क्षेत्रों को मिलाकर बना है – वैलून क्षेत्र, फ्लेमिश क्षेत्र और ब्रूसेल्स क्षेत्र

अनुच्छेद-4 – बेल्ज़ियम में 4 भाषाई क्षेत्र हैं – फ्रेंच-भाषी क्षेत्र, डच-भाषी क्षेत्र, ब्रूसेल्स की राजधानी का द्विभाषी क्षेत्र तथा जर्मन भाषी क्षेत्र। राज्य का प्रत्येक 'कम्यून' इन भाषाई क्षेत्रों में से किसी एक का हिस्सा है।

अनुच्छेद-5 – वैलून क्षेत्र के अंतर्गत आनेवाले प्रांत हैं – वैलून ब्राबेंट, हेनॉल्ट, लेग, लक्जमबर्ग और नामूर। फ्लेमिश क्षेत्र के अंतर्गत शामिल प्रांत हैं – एंटीवर्प, फ्लेमिश ब्राबेंट, वेस्ट फ्लैंडर्स, ईस्ट फ्लैंडर्स और लिंबर्ग।

4. कल्पना करें कि आपको संघवाद के संबंध में प्रावधान लिखने हैं। लगभग 300 शब्दों का एक लेख लिखें जिसमें निम्नलिखित बिंदुओं पर आपके सुझाव हों –
   (क) केंद्र और प्रदेशों के बीच शक्तियों का बँटवारा
   (ख) वित्त-संसाधनों का वितरण
   (ग) राज्यपालों की नियुक्ति

5. निम्नलिखित में कौन-सा प्रांत के गठन का आधार होना चाहिए और क्यों?
   (क) सामान्य भाषा
   (ख) सामान्य आर्थिक हित
   (ग) सामान्य क्षेत्र
   (घ) प्रशासनिक सुविधा

6. उत्तर भारत के प्रदेशों - राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार के अधिकांश लोग हिंदी बोलते हैं। यदि इन सभी प्रांतों को मिलाकर एक प्रदेश बना दिया जाय तो क्या ऐसा करना संघवाद के विचार से संगत होगा? तर्क दीजिए।

© NCERT not to be republished

7. भारतीय संविधान की ऐसी चार विशेषताओं का उल्लेख करें जिसमें प्रादेशिक सरकार की अपेक्षा केंद्रीय सरकार को ज़्यादा शक्ति प्रदान की गई है।

8. बहुत-से प्रदेश राज्यपाल की भूमिका को लेकर नाखुश क्यों हैं?

9. यदि शासन संविधान के प्रावधानों के अनुकूल नहीं चल रहा, तो ऐसे प्रदेश में राष्ट्रपति-शासन लगाया जा सकता है। बताएँ कि निम्नलिखित में कौन-सी स्थिति किसी देश में राष्ट्रपति-शासन लगाने के लिहाज से संगत है और कौन-सी नहीं। संक्षेप में कारण भी दें।

(क) राज्य की विधान सभा के मुख्य विपक्षी दल के दो सदस्यों को अपराधियों ने मार दिया है और विपक्षी दल प्रदेश की सरकार को भंग करने की माँग कर रहा है।

(ख) फिरौती वसूलने के लिए छोटे बच्चों के अपहरण की घटनाएँ बढ़ रही हैं। महिलाओं के विरुद्ध अपराधों में इजाफ़ा हो रहा है।

(ग) प्रदेश में हुए हाल के विधान सभा चुनाव में किसी दल को बहुमत नहीं मिला है। भय है कि एक दल दूसरे दल के कुछ विधायकों से धन देकर अपने पक्ष में उनका समर्थन हासिल कर लेगा।

(घ) केंद्र और प्रदेश में अलग-अलग दलों का शासन है और दोनों एक-दूसरे के कट्टर शत्रु हैं।

(ङ) सांप्रदायिक दंगे में 200 से ज़्यादा लोग मारे गए हैं।

(च) दो प्रदेशों के बीच चल रहे जल विवाद में एक प्रदेश ने सर्वोच्च न्यायालय का आदेश मानने से इनकार कर दिया है।

10. ज़्यादा स्वायत्तता की चाह में प्रदेशों ने क्या माँगें उठाई हैं?

11. क्या कुछ प्रदेशों में शासन के लिए विशेष प्रावधान होने चाहिए? क्या इससे दूसरे प्रदेशों में नाराज़गी पैदा होती है? क्या इन विशेष प्रावधानों के कारण देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच एकता मजबूत करने में मदद मिलती है?

© NCERT not to be republished

अध्याय 8

स्थानीय शासन

11103CH08

परिचय

केंद्रीय और प्रादेशिक स्तर पर निर्वाचित सरकार की मौजूदगी ही किसी लोकतंत्र के लिए काफी नहीं। लोकतंत्र के लिए यह भी ज़रूरी है कि स्थानीय स्तर पर स्थानीय मामलों की देखभाल करने वाली एक निश्चित सरकार हो। इस अध्याय में हम अपने देश में मौजूद स्थानीय सरकार की बनावट का अध्ययन करेंगे। हम यह भी पढ़ेंगे कि स्थानीय सरकार का क्या महत्त्व है और उसे स्वतंत्र रूप से शक्ति प्रदान करने के क्या रास्ते हैं। यह अध्याय पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि –

- *स्थानीय शासकीय निकायों का महत्त्व क्या है,*
- *संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के अंतर्गत क्या प्रावधान किए गए हैं, और*
- *स्थानीय शासकीय निकायों के काम और जिम्मेदारियाँ कौन-कौन-सी हैं?*

© NCERT not to be republished

स्थानीय सरकार क्यों?

मध्य प्रदेश का एक जिला है सिहोर। गीता राठौड़ इसी जिले के जमनिया तालाब ग्राम पंचायत की रहने वाली हैं। एक आरक्षित सीट से सन् 1995 में गीता सरपंच निर्वाचित हुईं। लेकिन, सन् 2000 में गाँव वालों ने अच्छे कामों का इनाम देते हुए गीता को दुबारा चुना। इस बार गीता एक सामान्य सीट से चुनी गईं। गीता गृहिणी हुआ करती थीं, लेकिन वह राजनीतिक रूप से एक दूरदर्शी नेता बनकर उभरी। उन्होंने अपनी पंचायत की जनशक्ति का इस्तेमाल तालाब को पक्का बनवाने, स्कूल की इमारत और गाँव में सड़क बनवाने में किया। गीता ने अपनी पंचायत की सामूहिक शक्ति का इस्तेमाल महिलाओं पर होने वाली घरेलू हिंसा और अत्याचार से लड़ने, पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करने और अपने गाँव में वन तथा जल प्रबंधन को बढ़ावा देने में किया। (पंचायत राज अपडेट, खंड-ग्यारह, सं-3, फरवरी-2004)

सफल महिला की ऐसी ही एक कथा और है। यह महिला तमिलनाडु के एक गाँव वेंगैवसल की सरपंच थी। सन् 1997 में तमिलनाडु की सरकार ने 71 सरकारी कर्मचारियों को 2-2 हेक्टेयर जमीन आबंटित की। यह जमीन वेंगैवसल ग्राम पंचायत के दायरे में थी। उच्चतर अधिकारियों के निर्देश पर कांचिपुरम जिले के कलक्टर ने वेंगैवसल ग्राम पंचायत के सरपंच को आदेश दिया कि आबंटित जमीन के संबंध में जो फ़ैसला लिया जा चुका है, उसे मानते हुए ग्राम पंचायत से इस आशय का प्रस्ताव पारित कराए। सरपंच और ग्राम पंचायत ने कलेक्टर के इस आदेश को मानने से इनकार कर दिया। कलेक्टर ने ज़मीन के अधिग्रहण का आदेश दिया। ग्राम पंचायत ने कलेक्टर की इस कार्रवाई के विरोध में मद्रास उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की। उच्च न्यायालय की एकल खंडपीठ ने कलेक्टर के आदेश को जायज बताया। अदालत का फ़ैसला था कि इस संबंध में ग्राम पंचायत की अनुमति लेने की ज़रूरत नहीं है। पंचायत ने इस फ़ैसले के खिलाफ खंडपीठ के पास अपील की। खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश के फ़ैसले को उलट दिया। न्यायाधीशों का फ़ैसला था कि सरकारी आदेश पंचायत की शक्तियों की अवहेलना तो करता ही है, यह पंचायत की संवैधानिक हैसियत का भी सरासर उल्लंघन है। ('पंचायत राज अपडेट' खंड-बारह, जून, 2005)

ये दोनों कथाएँ अलग-अलग नहीं हैं। स्थानीय शासन की संस्थाओं को सन् 1993 में संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इसके बाद से पूरे भारत में बड़े पैमाने पर बदलाव की लहर चल पड़ी है। ये कथाएँ इस बदलाव का सबूत पेश करती हैं।

लेकिन क्या इस तरह के उदाहरण नहीं हैं जहाँ गाँव की पंचायत के पुरुष सदस्य ने महिला सरपंच को परेशान किया हो? जब महिलाएँ अधिकार के पद पर बैठती हैं, तो पुरुषों को इससे खुशी क्यों नहीं होती?

© NCERT not to be republished

गाँव और जिला स्तर के शासन को स्थानीय शासन कहते हैं। स्थानीय शासन आम आदमी के सबसे नजदीक का शासन है। स्थानीय शासन का विषय है आम नागरिक की समस्याएँ और उसकी रोजमर्रा की ज़िंदगी। स्थानीय शासन की मान्यता है कि स्थानीय ज्ञान और स्थानीय हित लोकतांत्रिक फ़ैसला लेने के अनिवार्य घटक हैं। कारगर और जन–हितकारी प्रशासन के लिए भी यह ज़रूरी है। स्थानीय शासन का फायदा यह है कि यह लोगों के सबसे नजदीक होता है और इस कारण उनकी समस्याओं का समाधान बहुत तेज़ी से तथा कम खर्चे में हो जाता है। गीता राठौड़ वाले मामले में हमने देखा कि उन्होंने ग्राम पंचायत के सरपंच के रूप में सक्रिय भूमिका निभाते हुए जमनिया तालाब पंचायत में बड़ा बदलाव कर दिखाया। वेंगैवसल गाँव की जमीन पर उस गाँव का ही हक रहा। अपनी जमीन के साथ क्या करना है – यह फ़ैसला करने का अधिकार भी गाँव के हाथ में रहा। ऐसा ग्राम पंचायत के सरपंच और पंचायत के सदस्यों के जुझारू प्रयासों के कारण संभव हुआ। इस तरह स्थानीय शासन लोगों के स्थानीय हितों की रक्षा में अत्यंत कारगर साबित हो सकता है।

क्या यह संभव है कि हमारे यहाँ सरकार सिर्फ स्थानीय स्तर पर हो और राष्ट्रीय स्तर पर इसके समायोजन का निकाय हो? मुझे लगता है कि महात्मा गांधी ने इसी तरह की कोई बात कही थी।

लोकतंत्र का मतलब है सार्थक भागीदारी। लोकतंत्र का रिश्ता जवाबदेही से भी है। जीवंत और मजबूत स्थानीय शासन सक्रिय भागीदारी और उद्देश्यपूर्ण जवाबदेही को सुनिश्चित करता है। गीता राठौड़ की कहानी प्रतिबद्धता के साथ लोकतंत्र में भागीदारी करने की घटनाओं में एक है। वेंगैवसल ग्राम पंचायत ने अपनी जमीन पर अपना हक बनाये रखने के लिए अथक प्रयास किया। यह जवाबदेही को सुनिश्चित करने के एक मिशन की मिसाल है। स्थानीय शासन के स्तर पर आम नागरिक को उसके जीवन से जुड़े मसलों, ज़रूरतों और उसके विकास के बारे में फ़ैसला लेने की प्रक्रिया को शामिल किया जा सकता है।

जो काम स्थानीय स्तर पर किये जा सकते हैं वे काम स्थानीय लोगों और उनके नुमाइंदों के हाथ में रहने चाहिए। लोकतंत्र के लिए यह ज़रूरी है। आम जनता प्रादेशिक अथवा केंद्रीय सरकार से कहीं ज़्यादा परिचित स्थानीय शासन से होती है। स्थानीय शासन क्या कर रहा है और क्या करने में नाकाम रहा है – आम जनता का इस सवाल से कहीं ज़्यादा सरोकार होता है, क्योंकि इस बात का सीधा असर उसकी रोजमर्रा की ज़िंदगी पर

पड़ता है। इस तरह, स्थानीय शासन को मजबूत करना लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूत बनाने के समान है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- स्थानीय शासन लोकतंत्र को मजबूत बनाता है, कैसे?
- ऊपर जो उदाहरण दिया गया है उसमें तमिलनाडु सरकार को आपके हिसाब से क्या करना चाहिए था?

भारत में स्थानीय शासन का विकास

आइए, इस बात की चर्चा करें कि भारत में स्थानीय शासन का विकास कैसे हुआ और हमारे संविधान में इसके बारे में क्या कहा गया है। माना जाता है कि अपना शासन खुद चलाने वाले ग्राम समुदाय प्राचीन भारत में 'सभा' के रूप में मौजूद थे। समय बीतने के साथ गाँव की इन सभाओं ने पंचायत का रूप ले लिया। समय बदलने के साथ-साथ पंचायतों की भूमिका और काम भी बदलते रहे।

आधुनिक समय में, स्थानीय शासन के निर्वाचित निकाय सन् 1882 के बाद अस्तित्व में आए। उस वक्त लार्ड रिपन (Lord Rippon) भारत का वायसराय था। उसने इन निकायों को बनाने की दिशा में पहलकदमी की। उस वक्त इसे मुकामी बोर्ड (Local Board) कहा जाता था। बहरहाल, इस दिशा में प्रगति बड़ी धीमी गति से हो रही थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सरकार से माँग की कि सभी स्थानीय बोर्डों को ज्यादा कारगर बनाने के लिए वह ज़रूरी कदम उठाए। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट-1919 के बनने पर अनेक प्रांतों में ग्राम पंचायत बने। सन् 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के बाद भी यह प्रवृत्ति जारी रही।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में महात्मा गांधी ने ज़ोर देकर कहा था कि आर्थिक और राजनीतिक सत्ता का विकेंद्रीकरण होना चाहिए। उनका मानना था कि ग्राम पंचायतों को मजबूत बनाना सत्ता के विकेंद्रीकरण का कारगर साधन है। विकास की हर पहलकदमी में स्थानीय लोगों की

मैं अतीत के बारे में तो नहीं जानती लेकिन मेरे मन में यह शंका ज़रूर उठती है कि गाँव की पंचायत के लिए चुनाव न हो तो ऐसी पंचायत में गाँव के बुजुर्गों, अमीर लोगों और समाज के ऊपरी तबके के पुरुषों का बोलबाला रहेगा।

© NCERT not to be republished

भागीदारी होनी चाहिए ताकि यह सफल हो। इस तरह, पंचायत को सहभागी लोकतंत्र को स्थापित करने के साधन के रूप में देखा गया। दिल्ली में बैठे गवर्नर जनरल के हाथ में बहुत ज़्यादा शक्तियाँ थीं, हमारे स्वतंत्रता संग्राम की चिंताओं में यह बात भी शामिल थी। इस कारण, हमारे नेताओं के लिए आज़ादी का अर्थ एक आश्वासन था कि फ़ैसला लेने में तथा कार्यपालिका और प्रशासनिक शक्तियों के इस्तेमाल में विकेंद्रीकरण होगा।

> भारत की आज़ादी का मतलब होना चाहिए समूचे भारत की आज़ादी.... आज़ादी की शुरुआत सबसे नीचे से होनी चाहिए। इस तरह हर गाँव एक गणराज्य होगा.... इसका मतलब यह कि हर गाँव को आत्मनिर्भर और अपने मामलों को खुद निपटाने में काबिल होना पड़ेगा। अनगिनत गाँवों से बने इस ढाँचे में आगे की ओर फैलते और ऊपर चढ़ते दायरे होंगे। जीवन एक पिरामिड की तरह होगा जिसमें शीर्ष आधार पर टिका होगा।
>
> – महात्मा गांधी

जब संविधान बना तो स्थानीय शासन का विषय प्रदेशों को सौंप दिया गया। संविधान के 'नीति निर्देशक-सिद्धांतों में भी इसकी चर्चा है। इसमें कहा गया है कि देश की हर सरकार अपनी नीति में इसे एक निर्देशक तत्त्व मानकर चले। जैसा कि आपने अध्याय-दो में पढ़ा, राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों का अंग होने के कारण संविधान का यह प्रावधान अदालती वाद के दायरे में नहीं आता और इसकी प्रकृति प्रधानतः सलाह-मशविरे की है।

ऐसा लगता है कि स्थानीय शासन के मसले को जिसमें पंचायत भी शामिल है, संविधान में यथोचित महत्त्व नहीं मिला। क्या आप जानते हैं कि ऐसा क्यों हुआ? यहाँ कुछ कारण बताए जा सकते हैं। पहली बात तो यह कि देश-विभाजन की खलबली के कारण संविधान का झुकाव केंद्र को मजबूत बनाने का रहा। नेहरू खुद अति-स्थानीयता को राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए खतरा मानते थे। दूसरे, संविधान-सभा में डॉ बी आर अंबेडकर के नेतृत्व में एक मजबूत आवाज़ उठ रही थी। इसका कहना था कि ग्रामीण भारत में जाति-पांति और आपसी फूट का बोलबाला है। स्थानीय शासन का उद्देश्य तो बड़ा अच्छा है लेकिन ग्रामीण भारत के ऐसे माहौल में यह उद्देश्य ही मटियामेट हो जाएगा।

बहरहाल, किसी भी सदस्य ने विकास योजनाओं में जन-भागीदारी के महत्त्व से इनकार नहीं किया। संविधान सभा के बहुत-से सदस्य चाहते थे कि भारत में लोकतंत्र का आधार

not to be republished © NCERT

ग्राम पंचायत हो लेकिन उन्हें इस बात की गहरी चिंता थी कि गाँवों में गुटबाजी तथा अन्य बुराइयों के मौजूद होते ऐसा करना शायद ठीक न हो।

लोकतंत्र के हक में गाँवों को स्व-शासन, यहाँ तक कि स्वायत्तता हासिल करने की कला में प्रशिक्षित किया जा सकता है… हमारे लिए ज़रूरी है कि हम गाँवों को सुधारने और वहाँ शासन के लोकतांत्रिक सिद्धांतों की जड़ जमाने में समर्थ हों…

अनंतशयनम अयंगर
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड VIII, पृष्ठ 428, 17 नवंबर 1948

स्वतंत्र भारत में स्थानीय शासन

संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के बाद स्थानीय-शासन को मजबूत आधार मिला। लेकिन इससे पहले भी स्थानीय शासन के निकाय बनाने के लिए कुछ प्रयास हो चुके थे। इस सिलसिले में पहला नाम आता है 1952 के सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme) का। इस कार्यक्रम के पीछे सोच यह थी कि स्थानीय विकास की विभिन्न गतिविधियों में जनता की भागीदारी हो। इसी पृष्ठभूमि में ग्रामीण इलाकों के लिए एक त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिश की गई। कुछ प्रदेश (मसलन गुजरात, महाराष्ट्र) ने सन् 1960 में निर्वाचन द्वारा बने स्थानीय निकायों की प्रणाली अपनायी। लेकिन अनेक प्रदेशों में इन स्थानीय निकायों की शक्ति इतनी नहीं थी कि वे स्थानीय विकास की देखभाल कर सकें। ये निकाय वित्तीय मदद के लिए प्रदेश तथा केंद्रीय सरकार पर बहुत ज़्यादा निर्भर थे। कई प्रदेशों ने तो यह तक नहीं माना कि निर्वाचन द्वारा स्थानीय निकाय स्थापित करने की ज़रूरत भी है। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहाँ स्थानीय निकायों को भंग करके स्थानीय शासन का जिम्मा सरकारी अधिकारी को सौंप दिया गया। कई प्रदेशों में अधिकांश स्थानीय निकायों के चुनाव अप्रत्यक्ष रीति से हुए। अनेक प्रदेशों में स्थानीय निकायों के चुनाव समय-समय पर स्थगित होते रहे।

जब सभी राजनीतिक दलों और यहाँ तक कि मेरी कक्षा में भी गुटबाज़ी चलती है तो गाँव में मौजूद गुटबाज़ी से लोग इतना डरते क्यों हैं?

सन् 1987 के बाद स्थानीय शासन की संस्थाओं के गहन पुनरावलोकन की शुरुआत हुई। सन् 1989 में पी के थुंगन समिति ने स्थानीय शासन के निकायों को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने की सिफ़ारिश की। समिति की सिफ़ारिश थी कि स्थानीय शासन की संस्थाओं के चुनाव समय-समय पर कराने, उनके समुचित कार्यों की सूची तय करने तथा ऐसी संस्थाओं को धन प्रदान करने के लिए संविधान में संशोधन किया जाय।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- नेहरू और डॉ. अंबेडकर, दोनों स्थानीय शासन के निकायों को लेकर खास उत्साहित नहीं थे। क्या स्थानीय शासन को लेकर उनकी आपत्तियाँ एक जैसी थीं?
- सन् 1992 से पहले स्थानीय शासन को लेकर संवैधानिक प्रावधान क्यों था?
- सन् 1960 और 1970 के दशक में किन प्रदेशों में स्थानीय शासन की स्थापना हुई?

संविधान का 73वाँ और 74वाँ संशोधन

सन् 1989 में केंद्र सरकार ने दो संविधान संशोधनों की बात आगे बढ़ायी। इन संशोधनों का लक्ष्य था स्थानीय शासन को मज़बूत करना और पूरे देश में इसके कामकाज तथा बनावट में एकरूपता लाना।

> ब्राज़ील के संविधान में प्रांत संघीय जिले तथा नगरपालिका परिषद् की व्यवस्था है। इनमें से हर एक को स्वतंत्र शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। इनका न्यायाधिकार भी अलग-अलग है। जिस तरह गणराज्य (Republic) राज्यों के कामकाज में हस्तक्षेप (संविधान में बताई गई स्थितियों के अतिरिक्त) नहीं कर सकता ठीक उसी तरह राज्य भी नगरपालिका परिषद् के कामकाज में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। यह प्रावधान स्थानीय शासन की शक्ति को सुरक्षा प्रदान करता है।

बाद में, सन् 1992 में संविधान के 73वें और 74वें संशोधन को संसद ने पारित किया। संविधान का 73वाँ संशोधन गाँव के स्थानीय शासन से जुड़ा है। इसका संबंध पंचायती राज व्यवस्था की संस्थाओं से है। संविधान का 74वाँ संशोधन शहरी स्थानीय शासन (नगरपालिका) से जुड़ा है। सन् 1993 में 73वाँ और 74वाँ संशोधन लागू हुए।

© NCERT not to be republished

हमने पहले देखा कि स्थानीय शासन को राज्य सूची में रखा गया है। प्रदेशों को इस बात की छूट है कि वे स्थानीय शासन के बारे में अपनी तरह का कानून बनाएँ। लेकिन संविधान में संशोधन हो जाने के बाद प्रदेशों को ऐसे कानून बदलने पड़े ताकि उन्हें संशोधित संविधान के अनुरूप किया जा सके। प्रदेशों को इन संशोधनों के आलोक में स्थानीय शासन के अपने-अपने कानूनों में ज़रूरी बदलाव करने के लिए एक वर्ष का समय दिया गया।

यदि मैंने इस बात को ठीक-ठीक समझा है तो मेरे जानते केंद्र ने प्रदेशों को स्थानीय शासन के संबंध में सुधार करने के लिए मजबूर किया। यह अपने आप में मजेदार बात है कि आप विकेंद्रीकरण को अपनाते तो हैं लेकिन केंद्रीकरण की प्रक्रिया के ज़रिए।

73वाँ संशोधन

आइए, अब हम 73वें संशोधन के कारण पंचायती राज व्यवस्था में आये बदलावों की जाँच करें।

त्रि-स्तरीय बनावट

अब सभी प्रदेशों में पंचायती राज व्यवस्था का ढाँचा त्रि-स्तरीय है। सबसे नीचे यानी पहली पायदान पर ग्राम पंचायत आती है। ग्राम पंचायत के दायरे में एक अथवा एक से ज़्यादा गाँव होते हैं। मध्यवर्ती स्तर यानी बीच का पायदान मंडल का है जिसे खंड (Block) या तालुका भी कहा जाता है। इस पायदान पर कायम स्थानीय शासन के निकाय को मंडल या तालुका पंचायत कहा जाता है। जो प्रदेश आकार में छोटे हैं वहाँ मंडल या तालुका पंचायत यानी मध्यवर्ती स्तर को बनाने की ज़रूरत नहीं। सबसे ऊपरले पायदान पर जिला पंचायत का स्थान है। इसके दायरे में जिले का पूरा ग्रामीण इलाका आता है।

क्या ग्राम सभा पूरे गाँव के लिए एक लोकतांत्रिक मंच का काम करती है? क्या ग्राम सभा सचमुच नियमित रूप से बैठती है?

संविधान के 73वें संशोधन में इस बात का भी प्रावधान है कि ग्राम सभा अनिवार्य रूप से बनाई जानी चाहिए। पंचायती हलके में मतदाता के रूप में दर्ज हर वयस्क व्यक्ति ग्राम सभा का सदस्य होता है। ग्राम सभा की भूमिका और कार्य का फ़ैसला प्रदेश के कानूनों से होता है।

चुनाव

पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तर के चुनाव सीधे जनता करती है। हर पंचायती निकाय की अवधि पाँच साल की होती है। यदि प्रदेश की सरकार पाँच साल पूरे होने से पहले पंचायत को भंग करती है, तो इसके छः माह के अंदर नये चुनाव हो जाने चाहिए। निर्वाचित स्थानीय निकायों के अस्तित्व को सुनिश्चित रखने वाला यह महत्त्वपूर्ण

प्रावधान है। संविधान के 73वें संशोधन से पहले कई प्रदेशों में जिला पंचायती निकायों के चुनाव अप्रत्यक्ष रीति से होते थे और पंचायती संस्थाओं को भंग करने के बाद तत्काल चुनाव कराने के संबंध में कोई प्रावधान नहीं था।

आरक्षण

सभी पंचायती संस्थाओं में एक तिहाई सीट महिलाओं के लिए आरक्षित है। तीनों स्तर पर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए सीट में आरक्षण की व्यवस्था की गई है। यह व्यवस्था अनुसूचित जाति/जनजाति की जनसंख्या के अनुपात में की गई है। यदि प्रदेश की सरकार ज़रूरी समझे, तो वह अन्य पिछड़ा वर्ग को भी सीट में आरक्षण दे सकती है।

यहाँ यह बात गौरतलब है कि यह आरक्षण पंचायत के मात्र साधारण सदस्यों की सीट तक सीमित नहीं है। तीनों ही स्तर पर अध्यक्ष (Chairperson) पद तक आरक्षण दिया गया है। इसके अतिरिक्त सिर्फ सामान्य श्रेणी की सीटों पर ही महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण नहीं दिया गया बल्कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीट पर भी महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण की व्यवस्था है।

इसका अर्थ यह हुआ कि कोई सीट महिला उम्मीदवार और अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्य के लिए साथ-साथ आरक्षित की जा सकती है। इस तरह, सरपंच का पद कोई दलित अथवा आदिवासी महिला धारण कर सकती है।

हमने चुनाव पर केंद्रित अध्याय में पढ़ा था कि संसद और विधान सभा में महिलाओं को आरक्षण देने से संबंधित विधेयक पारित न हो सका। लेकिन स्थानीय निकायों में महिलाओं के आरक्षण की बात इतनी आसानी से कैसे मान ली गई?

विषयों का स्थानांतरण

ऐसे 29 विषय जो पहले राज्य सूची में थे, अब पहचान कर संविधान की 11वीं अनुसूची में दर्ज कर लिए गए हैं। इन विषयों को पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित किया जाना है। अधिकांश मामलों में इन विषयों का संबंध स्थानीय स्तर पर होने वाले विकास और कल्याण के कामकाज से है।

इन कार्यों का वास्तविक हस्तांतरण प्रदेश के कानून पर निर्भर है। हर प्रदेश यह फैसला करेगा कि इन 29 विषयों में से कितने को स्थानीय निकायों के हवाले करना है।

© NCERT not to be republished

अनुच्छेद 243 (छ) पंचायतों की शक्ति, प्राधिकार और उत्तरदायित्व किसी प्रदेश की विधायिका कानून बनाकर... ग्यारहवीं अनुसूची में दर्ज मामलों में ...पंचायतों को ऐसी शक्ति और प्राधिकार प्रदान कर सकती है।

ग्यारहवीं अनुसूची में दर्ज कुछ विषय

1. कृषि
3. लघु सिंचाई, जल प्रबंधन, जल संचय का विकास

....

8. लघु उद्योग, इसमें खाद्य-प्रसंस्करण के उद्योग शामिल हैं।

....

10. ग्रामीण आवास
11. पेयजल

....

13. सड़क, पुलिया
14. ग्रामीण विद्युतीकरण

....

16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम
17. शिक्षा, इसमें प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा शामिल है।
18. तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा
19. वयस्क और अनौपचारिक शिक्षा
20. पुस्तकालय
21. सांस्कृतिक गतिविधि
22. बाज़ार और मेला
23. स्वास्थ्य और साफ-सफाई, इसमें अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तथा डिस्पेंसरी शामिल हैं
24. परिवार नियोजन
25. महिला और बाल-विकास
26. सामाजिक कल्याण
27. कमज़ोर तबके का कल्याण, खासकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का।
28. सार्वजनिक वितरण प्रणाली।

सिर्फ राज्य सूची के विषयों को ही क्यों हस्तांतरित किया जाता है? हम केंद्र सूची में दर्ज विषयों को क्यों हस्तांतरित नहीं कर सकते?

© NCERT not to be republished

भारत के अनेक प्रदेशों के आदिवासी जनसंख्या वाले क्षेत्रों को 73वें संशोधन के प्रावधानों से दूर रखा गया था। ये प्रावधान इन क्षेत्रों पर लागू नहीं होते थे। सन् 1996 में अलग से एक अधिनियम बना और पंचायती व्यवस्था के प्रावधानों के दायरे में इन क्षेत्रों को भी शामिल कर लिया गया। अनेक आदिवासी समुदायों में जंगल और जल-जोहड़ जैसे साझे संसाधनों की देख-रेख के रीति-रिवाज मौजूद हैं। इस कारण, नये अधिनियम में आदिवासी समुदायों के इस अधिकार की रक्षा की गई है। वे अपने रीति-रिवाज के अनुसार संसाधनों की देखभाल कर सकते हैं। इस उद्देश्य से ऐसे इलाकों की ग्राम सभा को अपेक्षाकृत ज़्यादा अधिकार दिए गए हैं और निर्वाचित ग्राम पंचायत को कई मायनों में ग्राम सभा की अनुमति लेनी पड़ती है। इस अधिनियम के पीछे मूल विचार स्व-शासन की स्थानीय परंपरा को बचाना और आधुनिक ढंग से निर्वाचित निकायों से ऐसे समुदायों को परिचित कराना है। विविधता और विकेंद्रीकरण की भावना से इस विचार की संगति बैठती है।

प्रदेशों की सरकार तो खुद ही गरीब है। पिछले अध्याय में हमने पढ़ा था कि वे केंद्र सरकार से धन माँगती हैं। ऐसे में स्थानीय शासन को वे धन कैसे दे सकती हैं?

राज्य चुनाव आयुक्त

प्रदेशों के लिए ज़रूरी है कि वे एक राज्य चुनाव आयुक्त नियुक्त करें। इस आयुक्त की ज़िम्मेदारी पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव कराने की होगी। पहले यह काम प्रदेश का प्रशासन करता था, जो प्रदेश की सरकार के अधीन होता है। अब भारत के चुनाव आयुक्त के समान प्रदेश का चुनाव आयुक्त भी स्वायत्त (autonomous) है। बहरहाल, प्रदेश का चुनाव आयुक्त एक स्वतंत्र अधिकारी है। उसका अथवा उसके कार्यालय का संबंध भारत के चुनाव आयोग से नहीं होता।

राज्य वित्त आयोग

प्रदेशों की सरकार के लिए हर पाँच वर्ष पर एक प्रादेशिक वित्त आयोग बनाना ज़रूरी है। यह आयोग प्रदेश में मौजूद स्थानीय शासन की संस्थाओं की आर्थिक स्थिति का जायजा लेगा। यह आयोग एक तरफ प्रदेश और स्थानीय शासन की व्यवस्थाओं के बीच तो दूसरी तरफ शहरी और ग्रामीण स्थानीय शासन की संस्थाओं के बीच राजस्व के बँटवारे का पुनरावलोकन करेगा। इस पहल के द्वारा यह सुनिश्चित किया गया है कि ग्रामीण स्थानीय शासन को धन आबंटित करना राजनीतिक मसला न बने।

© NCERT not to be republished

खुद करें — खुद समझें

- उन शक्तियों की पहचान करें जिन्हें आपके प्रदेश की सरकार ने पंचायतों को सौंप दिया है।

74वाँ संशोधन

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, संविधान के 74वें संशोधन का संबंध शहरी स्थानीय शासन के निकाय अर्थात् नगरपालिका से है।

शहरी इलाका किसे कहते हैं? मुंबई अथवा कोलकाता जैसे बड़े महानगरों को पहचानना बहुत आसान है, लेकिन जो शहरी इलाके गाँव और नगर के बीच के होते हैं उन्हें पहचान पाना इतना आसान नहीं। भारत की जनगणना में शहरी इलाके की परिभाषा करते हुए ज़रूरी माना गया है कि ऐसे इलाके में (क) कम से कम 5,000 की जनसंख्या हो, (ख) इस इलाके के कामकाजी पुरुषों में कम से कम 75 प्रतिशत खेती-बाड़ी के काम से अलग माने जाने वाले पेशे में हों, और (ग) जनसंख्या का घनत्व कम से कम 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की लगभग 31 प्रतिशत जनसंख्या शहरी इलाके में रहती है।

अनेक रूपों में 74वें संशोधन में संविधान के 73वें संशोधन का दोहराव है, लेकिन यह संशोधन शहरी इलाकों से संबंधित है। 73वें संशोधन के सभी प्रावधान मसलन प्रत्यक्ष चुनाव, आरक्षण, विषयों का हस्तांतरण, प्रादेशिक चुनाव आयुक्त और प्रादेशिक वित्त आयोग 74वें संशोधन में शामिल हैं तथा नगरपालिकाओं पर लागू होते हैं। संशोधन के अंतर्गत इस बात को अनिवार्य बना दिया गया है कि प्रदेश की सरकार कुछेक निश्चित कार्य करने की जिम्मेदारी शहरी स्थानीय शासन की संस्थाओं पर छोड़ दे। ये कार्य संविधान की बारहवीं अनुसूची में लिखे गए हैं।

क्या यह आशा की जाय कि ये शहरी स्थानीय निकाय झुग्गी-झोपड़ी वासियों को बेहतर आवास प्रदान करने के लिए कुछ करेंगे अथवा कम से कम उनके लिए शौचालय आदि का ही निर्माण करायेंगे।

73वें और 74वें संशोधन का क्रियान्वयन

अब सभी प्रदेशों ने 73वें संशोधन के प्रावधानों को लागू करने के लिए कानून बना दिए हैं। इन प्रावधानों को अस्तित्व में आये अब दस वर्ष से ज़्यादा हो रहे हैं। इस अवधि (1994-2004) में अधिकांश प्रदेशों में स्थानीय निकायों के चुनाव कम से कम दो बार हो चुके हैं। मध्य प्रदेश और राजस्थान तथा कुछ और प्रदेशों में तो अब तक तीन-तीन दफे चुनाव हो चुके हैं।

चित्र को बूझें

यह झंडा स्थानीय शासन को लेकर लोगों की अपेक्षाओं का प्रतीक है। लोग सिर्फ अपने लिए औपचारिक कानून नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि इन कानूनों को पूरी ईमानदारी से लागू किया जाय। संक्षेप में लिखें कि आप इस नारे के बारे में क्या सोचते हैं – 'हमारे गाँव में हमारा राज'।

आज ग्रामीण भारत में जिला पंचायतों की संख्या 600 से ज़्यादा, मध्यवर्ती अथवा प्रखंड स्तरीय पंचायत की संख्या 6,000 तथा ग्राम पंचायतों की संख्या 2,40,000 है। शहरी भारत में 100 से ज़्यादा नगर निगम, 1,400 नगरपालिका तथा 2,000 नगर पंचायत मौजूद हैं। हर पाँच वर्ष पर इन निकायों के लिए 32 लाख सदस्यों का निर्वाचन होता है। इनमें से 13 लाख महिलाएँ हैं। यदि प्रदेशों की विधान सभा तथा संसद को एक साथ रखकर देखें तो भी इनमें निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों की संख्या 5,000 से कम बैठती है। स्थानीय निकायों के चुनाव के कारण निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों की संख्या में भारी इजाफ़ा हुआ है।

यह बात एकदम जाहिर है कि 73वें और 74वें संशोधन ने देश भर की पंचायती राज संस्थाओं और नगरपालिका की संस्थाओं की बनावट को एक-सा किया है। इन स्थानीय संस्थाओं की मौजूदगी ही अपने आप में बड़ी उपलब्धि है। इससे शासन में जनता की भागीदारी के लिए मंच और माहौल तैयार होगा।

पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण के प्रावधान के कारण स्थानीय निकायों में महिलाओं की भारी संख्या में मौजूदगी सुनिश्चित हुई है। आरक्षण का प्रावधान अध्यक्ष और सरपंच जैसे पद के लिए भी है। इस कारण निर्वाचित महिला जन-प्रतिनिधियों की एक बड़ी संख्या अध्यक्ष और सरपंच जैसे पदों पर आसीन हुई है। आज कम से कम 200 महिलाएँ जिला पंचायतों की अध्यक्ष हैं। 2,000 महिलाएँ प्रखंड अथवा तालुका पंचायत की अध्यक्ष हैं और ग्राम पंचायतों में महिला सरपंच की संख्या 80,000 से ज़्यादा है। नगर निगमों में 30 महिलाएँ मेयर (महापौर) हैं। नगरपालिकाओं में 500 से ज़्यादा महिलाएँ अध्यक्ष पद पर आसीन हैं। लगभग 650 नगर पंचायतों की प्रधानी महिलाओं के हाथ में हैं। संसाधनों पर अपने नियंत्रण की दावेदारी करके महिलाओं ने ज़्यादा

© NCERT not to be republished

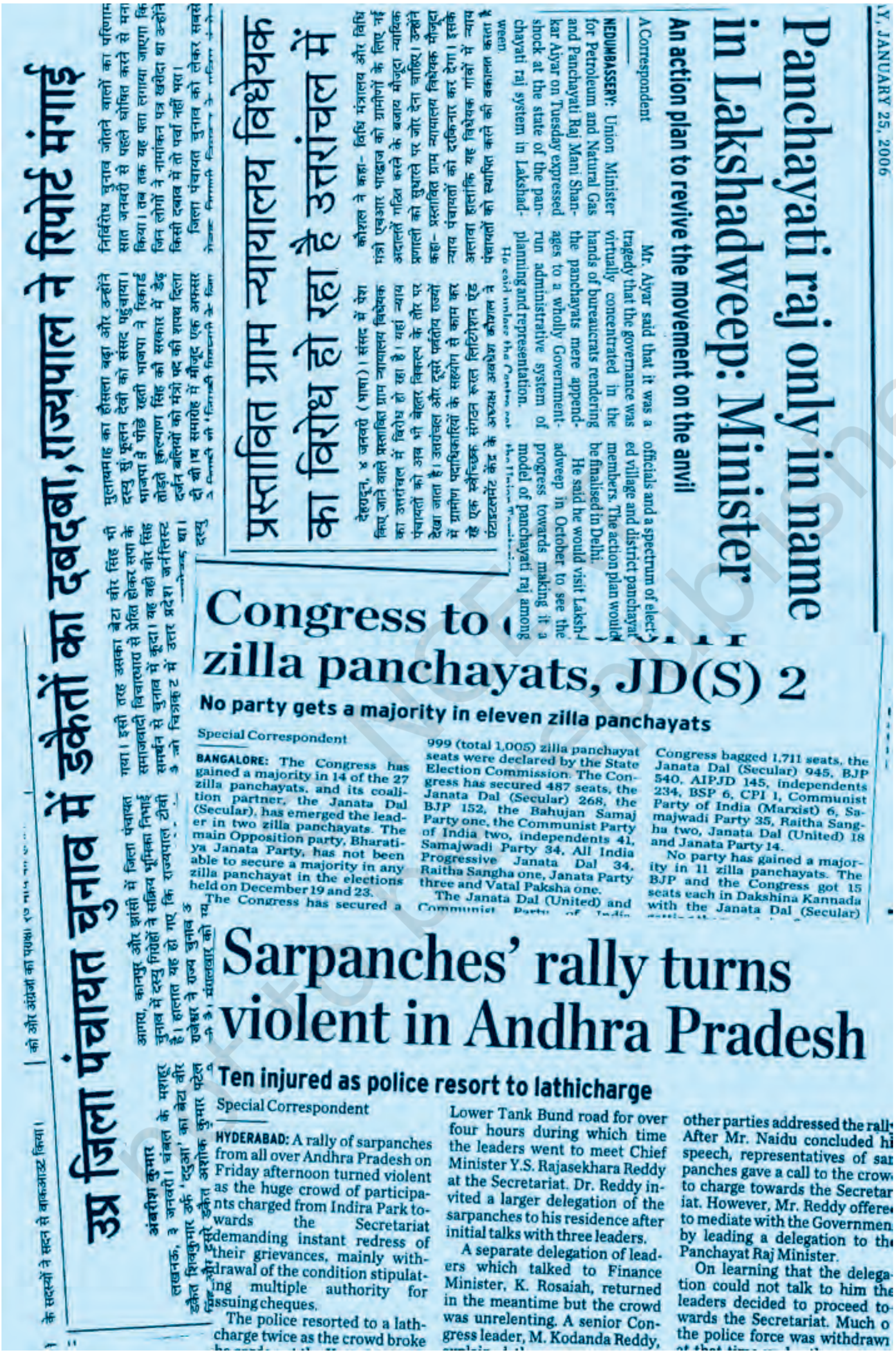

Y, JANUARY 25, 2006
Panchayati raj only in name in Lakshadweep: Minister
An action plan to revive the movement on the anvil
A Correspondent
NEDUMBASSERY: Union Minister for Petroleum and Natural Gas and Panchayati Raj Mani Shankar Aiyar on Tuesday expressed shock at the state of the panchayati raj system in Lakshadweep.
Mr. Aiyar said that it was a tragedy that the governance was virtually concentrated in the hands of bureaucrats rendering the panchayats mere appendages to a wholly Government-run administrative system of planning and representation.
officials and a spectrum of elected village and district panchayat members. The action plan would be finalised in Delhi.
He said he would visit Lakshadweep in October to see the progress towards making it a model of panchayati raj among
प्रस्तावित ग्राम न्यायालय विधेयक का विरोध हो रहा है उत्तरांचल में
उप्र जिला पंचायत चुनाव में डकैतों का दबदबा, राज्यपाल ने रिपोर्ट मंगाई
Congress to ... zilla panchayats, JD(S) 2
No party gets a majority in eleven zilla panchayats
Special Correspondent
BANGALORE: The Congress has gained a majority in 14 of the 27 zilla panchayats, and its coalition partner, the Janata Dal (Secular), has emerged the leader in two zilla panchayats. The main Opposition party, Bharatiya Janata Party, has not been able to secure a majority in any zilla panchayat in the elections held on December 19 and 23.
The Congress has secured a
999 (total 1,005) zilla panchayat seats were declared by the State Election Commission. The Congress has secured 487 seats, the Janata Dal (Secular) 268, the BJP 152, the Bahujan Samaj Party one, the Communist Party of India two, independents 41, Samajwadi Party 34, All India Progressive Janata Dal 34, Raitha Sangha one, Janata Party three and Vatal Paksha one.
The Janata Dal (United) and
Congress bagged 1,711 seats, the Janata Dal (Secular) 945, BJP 540, AIPJD 145, independents 234, BSP 6, CPI 1, Communist Party of India (Marxist) 6, Samajwadi Party 35, Raitha Sangha two, Janata Dal (United) 18 and Janata Party 14.
No party has gained a majority in 11 zilla panchayats. The BJP and the Congress got 15 seats each in Dakshina Kannada with the Janata Dal (Secular)
Sarpanches' rally turns violent in Andhra Pradesh
Ten injured as police resort to lathicharge
Special Correspondent
HYDERABAD: A rally of sarpanches from all over Andhra Pradesh on Friday afternoon turned violent as the huge crowd of participants charged from Indira Park towards the Secretariat demanding instant redress of their grievances, mainly withdrawal of the condition stipulating multiple authority for issuing cheques.
The police resorted to a lathcharge twice as the crowd broke
Lower Tank Bund road for over four hours during which time the leaders went to meet Chief Minister Y.S. Rajasekhara Reddy at the Secretariat. Dr. Reddy invited a larger delegation of the sarpanches to his residence after initial talks with three leaders.
A separate delegation of leaders which talked to Finance Minister, K. Rosaiah, returned in the meantime but the crowd was unrelenting. A senior Congress leader, M. Kodanda Reddy,
other parties addressed the rally. After Mr. Naidu concluded his speech, representatives of sarpanches gave a call to the crowd to charge towards the Secretariat. However, Mr. Reddy offered to mediate with the Government by leading a delegation to the Panchayat Raj Minister.
On learning that the delegation could not talk to him the leaders decided to proceed towards the Secretariat. Much of the police force was withdrawn

शक्ति और आत्मविश्वास अर्जित किया है। इन संस्थाओं में महिलाओं की मौजूदगी के कारण बहुत-सी स्त्रियों की राजनीति के काम-धंधे की समझ पैनी हुई है। अनेक मामलों में पाया गया है कि स्थानीय निकायों के विचार-विमर्श में महिलाओं की मौजूदगी उसमें नया परिप्रेक्ष्य जोड़ती है और चर्चा ज़्यादा संवेदनशील होती है। अनेक मामलों में यह देखा गया है कि महिलाएँ अपनी मौजूदगी दर्ज कराने में असफल रहीं अथवा महिला को पद पर आसीन करा कर परिवार का पुरुष उसके बहाने फ़ैसले लेता रहा। लेकिन ऐसी घटनाओं में तेज़ी से कमी आ रही है।

चित्र को बूझें

इस चित्र को देखें, स्थानीय सरकार यहाँ खुली धूप में बैठी है। क्या कोई और खास बात आपका ध्यान खींचती है।

अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए आरक्षण को संविधान संशोधन ने ही अनिवार्य बना दिया था। इसके साथ ही, अधिकांश प्रदेशों ने पिछड़ी जाति के लिए आरक्षण का प्रावधान बनाया है। भारत की जनसंख्या में 16.2 प्रतिशत अनुसूचित जाति तथा 8.2 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति है। स्थानीय शासन के शहरी और ग्रामीण संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों में इन समुदायों के सदस्यों की संख्या लगभग 6.6 लाख है। इससे स्थानीय निकायों की सामाजिक बुनावट में भारी बदलाव आए हैं। ये निकाय जिस सामाजिक सच्चाई के बीच काम कर रहे हैं अब उस सच्चाई की नुमाइंदगी इन निकायों के ज़रिए ज़्यादा हो रही है।

not to be republished

कभी-कभी इससे तनाव पैदा होता है। जो तबका सामाजिक रूप से प्रभावशाली होने के कारण गाँव पर अपना नियंत्रण रखता था वह अपने इस दबदबे को छोड़ना नहीं चाहता। इससे सत्ता के लिए संघर्ष तेज़ हो जाता है। लेकिन, तनाव और संघर्ष हमेशा बुरे नहीं होते। जब भी लोकतंत्र को ज़्यादा सार्थक बनाने और ताकत से वंचित लोगों को ताकत देने की कोशिश होगी, तो समाज में संघर्ष और तनाव होना ही है।

संविधान के संशोधन ने 29 विषयों को स्थानीय शासन के हवाले किया है। ये सारे विषय स्थानीय विकास तथा कल्याण की ज़रूरतों से संबंधित हैं। स्थानीय शासन के कामकाज के पिछले दशकों के अनुभव बताते हैं कि भारत में इसे अपना कामकाज स्वतंत्रतापूर्वक करने की छूट बहुत कम है। अनेक प्रदेशों ने अधिकांश विषय स्थानीय निकायों को नहीं सौंपे थे। इसका मतलब यह है कि स्थानीय निकाय कारगर ढंग से काम नहीं कर सकते थे। इस तरह, इतने सारे जन-प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने का पूरा का पूरा काम बस प्रतीकात्मक बनकर रह गया। कुछ लोग स्थानीय निकायों के निर्माण की यह कहकर आलोचना करते हैं कि इससे प्रादेशिक और केंद्रीय स्तर पर जिस तरह से फ़ैसले लिए जाते हैं – उसमें कोई बदलाव नहीं आता। स्थानीय स्तर की जनता के पास लोक कल्याण के कार्यक्रमों अथवा संसाधनों के आबंटन के बारे में विकल्प चुनने की ज़्यादा शक्ति नहीं होती।

अच्छा! कानून है तो ठीक लेकिन केवल कागज़ी है। क्या इसी को कथनी और करनी का अंतर कहते हैं?

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के सफल उदाहरण के रूप में अकसर लातिनी अमेरिका के देश बोलिविया का नाम लिया जाता है। सन् 1994 में पॉपुलर पार्टिसिपेशन लॉ (जनभागीदारी कानून) के तहत विकेंद्रीकरण करके सत्ता स्थानीय स्तर को सौंपी गई। इसके परिणामस्वरूप महापौर का लोकतांत्रिक चुनाव संभव हुआ। देश को नगरपालिकाओं में विभाजित किया गया और एक ऐसी प्रणाली अपनाई गई कि नई नगरपालिकाओं को धन स्वत: हस्तांतरित हो जाय। बोलिविया में 314 नगरपालिकाएँ हैं। नगरपालिकाओं की अगुआई जनता द्वारा निर्वाचित महापौर करते हैं। इन्हें presidente municipal भी कहा जाता है। महापौर के साथ एक नगरपालिका परिषद् (cabildo) होती है। स्थानीय स्तर के देशव्यापी चुनाव हर पाँच वर्ष पर होते हैं।

बोलिविया की स्थानीय सरकार को स्थानीय स्तर पर स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधा बहाल करने तथा आधारभूत ढाँचे के रख-रखाव की जिम्मेदारी सौंपी गई है। बोलिविया में देशव्यापी राजस्व उगाही का 20 प्रतिशत नगरपालिकाओं को प्रतिव्यक्ति के हिसाब से दिया जाता है। नगरपालिका को मोटर-वाहन, शहरी संपदा तथा बड़ी कृषि संपदा पर कर लगाने का अधिकार है। इन नगरपालिकाओं के बजट का अधिकांश हिस्सा वित्तीय हस्तांतरण की प्रणाली के ज़रिए प्राप्त होता है।

स्थानीय निकायों के पास अपना कह सकने लायक धन बहुत कम होता है। स्थानीय निकाय प्रदेश और केंद्र की सरकार पर वित्तीय मदद के लिए निर्भर होते हैं। इससे कारगर ढंग से काम कर सकने की उनकी क्षमता का बहुत क्षरण हुआ है। शहरी स्थानीय निकायों का कुल राजस्व उगाही में 0.24 प्रतिशत का योगदान है जबकि सरकारी खर्चे का 4 प्रतिशत इन निकायों द्वारा व्यय होता है। इस तरह स्थानीय निकाय कमाते कम और खर्च ज़्यादा करते हैं। इसी कारण ये निकाय अनुदान देने वाले पर निर्भर होते हैं।

निष्कर्ष

इस अनुभव से यही संकेत मिलते हैं कि स्थानीय शासन के निकाय एक एजेंसी की भूमिका निभाते हुए केंद्र और राज्य सरकार के विकास-कार्यक्रमों को लागू करना जारी रखेंगे। स्थानीय शासन को ज़्यादा शक्ति देने का मतलब है कि हम सत्ता के वास्तविक विकेंद्रीकरण के लिए तैयार रहें। आखिरकार, लोकतंत्र का मतलब होता है कि सत्ता की भागीदार जनता होगी। गाँव और शहर के लोगों को यह फ़ैसला लेने का अधिकार होना चाहिए कि किस नीति और कार्यक्रम को उन्हें अपनाना है और किसे नहीं। स्थानीय शासन के संबंध में जो कानून बने हैं वे लोकतंत्रीकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम माने जाएँगे। लेकिन लोकतंत्र की असली परीक्षा कानूनी प्रावधानों में नहीं बल्कि इन प्रावधानों को अमली जामा पहनाने में होती है।

प्रश्नावली

1. भारत का संविधान ग्राम पंचायत को स्व-शासन की इकाई के रूप में देखता है। नीचे कुछ स्थितियों का वर्णन किया गया है। इन पर विचार कीजिए और बताइए कि स्व-शासन की इकाई बनने के क्रम में ग्राम पंचायत के लिए ये स्थितियाँ सहायक हैं या बाधक?

(क) प्रदेश की सरकार ने एक बड़ी कंपनी को विशाल इस्पात संयंत्र लगाने की अनुमति दी है। इस्पात संयंत्र लगाने से बहुत-से गाँवों पर दुष्प्रभाव पड़ेगा।

© NCERT not to be republished

दुष्प्रभाव की चपेट में आनेवाले गाँवों में से एक की ग्राम सभा ने यह प्रस्ताव पारित किया कि क्षेत्र में कोई भी बड़ा उद्योग लगाने से पहले गाँववासियों की राय ली जानी चाहिए और उनकी शिकायतों की सुनवाई होनी चाहिए।

(ख) सरकार का फ़ैसला है कि उसके कुल खर्चे का 20 प्रतिशत पंचायतों के माध्यम से व्यय होगा।

(ग) ग्राम पंचायत विद्यालय का भवन बनाने के लिए लगातार धन माँग रही है, लेकिन सरकारी अधिकारियों ने माँग को यह कहकर ठुकरा दिया है कि धन का आबंटन कुछ दूसरी योजनाओं के लिए हुआ है और धन को अलग मद में खर्च नहीं किया जा सकता।

(घ) सरकार ने डुंगरपुर नामक गाँव को दो हिस्सों में बाँट दिया है और गाँव के एक हिस्से को जमुना तथा दूसरे को सोहना नाम दिया है। अब डुंगरपुर नामक गाँव सरकारी खाते में मौजूद नहीं है।

(ङ) एक ग्राम पंचायत ने पाया कि उसके इलाके में पानी के स्रोत तेजी से कम हो रहे हैं। ग्राम पंचायत ने फ़ैसला किया कि गाँव के नौजवान श्रमदान करें और गाँव के पुराने तालाब तथा कुएँ को फिर से काम में आने लायक बनाएँ।

2. मान लीजिए कि आपको किसी प्रदेश की तरफ से स्थानीय शासन की कोई योजना बनाने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। ग्राम पंचायत स्व-शासन की इकाई के रूप में काम करे, इसके लिए आप उसे कौन-सी शक्तियाँ देना चाहेंगे? ऐसी पाँच शक्तियों का उल्लेख करें और प्रत्येक शक्ति के बारे में दो-दो पंक्तियों में यह भी बताएँ कि ऐसा करना क्यों ज़रूरी है।

3. सामाजिक रूप से कमज़ोर वर्गों के लिए संविधान के 73वें संशोधन में आरक्षण के क्या प्रावधान हैं? इन प्रावधानों से ग्रामीण स्तर के नेतृत्व का खाका किस तरह बदला है?

4. संविधान के 73वें संशोधन से पहले और संशोधन के बाद के स्थानीय शासन के बीच मुख्य भेद बताएँ।

5. नीचे लिखी बातचीत पढ़ें। इस बातचीत में जो मुद्दे उठाए गए हैं उसके बारे में अपना मत दो सौ शब्दों में लिखें।

आलोक – हमारे संविधान में स्त्री और पुरुष को बराबरी का दर्जा दिया गया है। स्थानीय निकायों में स्त्रियों को आरक्षण देने से सत्ता में उनकी बराबर की भागीदारी सुनिश्चित हुई है।

© NCERT not to be republished

नेहा – लेकिन, महिलाओं का सिर्फ सत्ता के पद पर काबिज होना ही काफी नहीं है। यह भी ज़रूरी है कि स्थानीय निकायों के बजट में महिलाओं के लिए अलग से प्रावधान हो।

जयेश – मुझे आरक्षण का यह गोरखधंधा पसंद नहीं। स्थानीय निकाय को चाहिए कि वह गाँव के सभी लोगों का ख्याल रखे और ऐसा करने पर महिलाओं और उनके हितों की देखभाल अपने आप हो जाएगी।

6. 73वें संशोधन के प्रावधानों को पढ़ें। यह संशोधन निम्नलिखित सरोकारों में से किससे ताल्लुक रखता है?
   (क) पद से हटा दिये जाने का भय जन-प्रतिनिधियों को जनता के प्रति जवाबदेह बनाता है।
   (ख) भूस्वामी सामंत और ताकतवर जातियों का स्थानीय निकायों में दबदबा रहता है।
   (ग) ग्रामीण क्षेत्रों में निरक्षरता बहुत ज़्यादा है। निरक्षर लोग गाँव के विकास के बारे में फ़ैसला नहीं ले सकते हैं।
   (घ) प्रभावकारी साबित होने के लिए ग्राम पंचायतों के पास गाँव की विकास योजना बनाने की शक्ति और संसाधन का होना ज़रूरी है।

7. नीचे स्थानीय शासन के पक्ष में कुछ तर्क दिए गए हैं। इन तर्कों को आप अपनी पसंद से वरीयता क्रम में सजायें और बताएँ कि किसी एक तर्क की अपेक्षा दूसरे को आपने ज़्यादा महत्त्वपूर्ण क्यों माना है। आपके जानते वेंगैवसल गाँव की ग्राम पंचायत का फ़ैसला निम्नलिखित कारणों में से किस पर और कैसे आधारित था?
   (क) सरकार स्थानीय समुदाय को शामिल कर अपनी परियोजना कम लागत में पूरी कर सकती है।
   (ख) स्थानीय जनता द्वारा बनायी गई विकास योजना सरकारी अधिकारियों द्वारा बनायी गई विकास योजना से ज़्यादा स्वीकृत होती है।
   (ग) लोग अपने इलाके की ज़रूरत, समस्याओं और प्राथमिकताओं को जानते हैं। सामुदायिक भागीदारी द्वारा उन्हें विचार-विमर्श करके अपने जीवन के बारे में फ़ैसला लेना चाहिए।
   (घ) आम जनता के लिए अपने प्रदेश अथवा राष्ट्रीय विधायिका के जन-प्रतिनिधियों से संपर्क कर पाना मुश्किल होता है।

8. आपके अनुसार निम्नलिखित में कौन-सा विकेंद्रीकरण का साधन है? शेष को विकेंद्रीकरण के साधन के रूप में आप पर्याप्त विकल्प क्यों नहीं मानते?
   (क) ग्राम पंचायत का चुनाव कराना।

© NCERT not to be republished

(ख) गाँव के निवासी खुद तय करें कि कौन–सी नीति और योजना गाँव के लिए उपयोगी है।

(ग) ग्राम सभा की बैठक बुलाने की ताकत।

(घ) प्रदेश सरकार ने ग्रामीण विकास की एक योजना चला रखी है। खंड विकास अधिकारी (बीडीओ) ग्राम पंचायत के सामने एक रिपोर्ट पेश करता है कि इस योजना में कहाँ तक प्रगति हुई है।

9. दिल्ली विश्वविद्यालय का एक छात्र प्राथमिक शिक्षा के निर्णय लेने में विकेंद्रीकरण की भूमिका का अध्ययन करना चाहता था। उसने गाँववासियों से कुछ सवाल पूछे। ये सवाल नीचे लिखे हैं। यदि गांववासियों में आप शामिल होते तो निम्नलिखित प्रश्नों के क्या उत्तर देते? गाँव का हर बालक/बालिका विद्यालय जाए, इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कौन–से कदम उठाए जाने चाहिए – इस मुद्दे पर चर्चा करने के लिए ग्राम सभा की बैठक बुलाई जानी है।

(क) बैठक के लिए उचित दिन कौन–सा होगा, इसका फ़ैसला आप कैसे करेंगे? सोचिए कि आपके चुने हुए दिन में कौन बैठक में आ सकता है और कौन नहीं?

(अ) खंड विकास अधिकारी अथवा कलेक्टर द्वारा तय किया हुआ कोई दिन।

(ब) गाँव का बाज़ार जिस दिन लगता है। (स) रविवार (द) नाग पंचमी/संक्रांति

(ख) बैठक के लिए उचित स्थान क्या होगा? कारण भी बताएँ।

(अ) जिला–कलेक्टर के परिपत्र में बताई गई जगह। (ब) गाँव का कोई धार्मिक स्थान।

(स) दलित मोहल्ला। (द) ऊँची जाति के लोगों का टोला। (ध) गाँव का स्कूल।

(ग) ग्राम सभा की बैठक में पहले जिला–समाहर्ता (कलेक्टर) द्वारा भेजा गया परिपत्र पढ़ा गया। परिपत्र में बताया गया था कि शैक्षिक रैली को आयोजित करने के लिए क्या कदम उठाये जाएँ और रैली किस रास्ते होकर गुजरे। बैठक में उन बच्चों के बारे में चर्चा नहीं हुई जो कभी स्कूल नहीं आते। बैठक में बालिकाओं की शिक्षा के बारे में, विद्यालय भवन की दशा के बारे में और विद्यालय के खुलने–बंद होने के समय के बारे में भी चर्चा नहीं हुई। बैठक रविवार के दिन हुई इसलिए कोई महिला शिक्षक इस बैठक में नहीं आ सकी। लोगों की भागीदारी के लिहाज से इस को आप अच्छा कहेंगे या बुरा? कारण भी बताएँ।

(घ) अपनी कक्षा की कल्पना ग्राम सभा के रूप में करें। जिस मुद्दे पर बैठक में चर्चा होनी थी उस पर कक्षा में बातचीत करें और लक्ष्य को पूरा करने के लिए कुछ उपाय सुझायें।

© NCERT not to be republished

अध्याय नौ

संविधान–एक जीवंत दस्तावेज़

11103CH09

© NCERT not to be republished

परिचय

इस अध्याय में हम पिछले 69 वर्षों के दौरान संविधान के क्रियान्वयन और भारत की शासन प्रणाली में उसकी भूमिका पर विचार करेंगे। इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातें जान सकेंगें–

- *भारतीय संविधान को समय की आवश्कताओं के अनुरूप संशोधित किया जा सकता है।*
- *संविधान में कई संशोधन किए जा चुके हैं परंतु इसका मूल स्वरूप नहीं बदला है।*
- *संविधान की रक्षा और उसकी व्याख्या में न्यायपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।*
- *यह संविधान एक ऐसा दस्तावेज़ है जिसमें परिस्थितियों के अनुसार बदलाव आते गए हैं।*

क्या संविधान अपरिवर्तनीय होते हैं?

परिस्थितिगत बदलाव, सामाजिक परिवर्तनों और कई बार राजनीतिक उठापटक के चलते विभिन्न राष्ट्रों ने अपने संविधान को दुबारा तैयार किया है। सोवियत संघ में 74 वर्षों के दौरान–(1918, 1924, 1936 और 1977) संविधान चार बार बदला गया। 1991 में वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी का शासन समाप्त हो गया और जल्दी ही सोवियत गणराज्य भी बिखर गया। इस राजनीतिक भूचाल के बाद वहाँ रूसी गणराज्यों का नए सिरे से गठन किया गया और 1993 में एक नया संविधान अंगीकार किया गया।

अब ज़रा भारत की ओर नज़र दौड़ाएँ! भारतीय संविधान 26 नवंबर 1949 को अंगीकृत किया गया। इस संविधान को 26 जनवरी 1950 को औपचारिक रूप से लागू किया गया। तब से लेकर आज तक 69 वर्ष बीत चुके हैं और यह संविधान लगातार काम कर रहा है। हमारे देश की सरकार इसी संविधान के अनुसार काम करती है।

तो, क्या हम यह मानें कि हमारा संविधान इतना अच्छा है कि उसमें किसी बदलाव की ज़रूरत ही नहीं है? क्या हमारे संविधान-निर्माता इतने दूरदर्शी थे कि उन्होंने समय के बदलावों और घटनाओं का अंदाजा पहले ही लगा लिया था? एक अर्थ में ये दोनों ही बातें ठीक हैं। यह बात सही है कि हमें एक मज़बूत संविधान विरासत में मिला है। इस संविधान की बनावट हमारे देश की परिस्थितियों के बेहद अनुकूल हैं। इसके साथ यह बात भी सही है कि हमारे संविधान-निर्माता अत्यंत दूरदर्शी थे। उन्होंने भविष्य के कई प्रश्नों का समाधान उसी समय कर लिया था। लेकिन कोई भी संविधान सदा सर्वदा के लिए ठीक नहीं हो सकता। ऐसा कोई दस्तावेज़ नहीं होता जिसे बदलने की आवश्यकता न पड़े।

इसी प्रकार फ्रांस ने भी दो सौ वर्षों के दौरान कई संविधान अपनाए। क्रांति के बाद और नेपोलियन के शासन काल में वहाँ संविधान को लेकर लगातार प्रयोग चलते रहे। क्रांति के बाद 1793 में वहाँ एक नया संविधान तैयार किया गया। प्रथम फ्रांसीसी गणतंत्र कहा जाता है। 1848 में वहाँ दूसरा संविधान लागू हुआ और उसी के साथ बना दूसरा फ्रांसीसी गणतंत्र। 1875 में तीसरा फ्रांसीसी गणतंत्र बना यानी तीसरी बार एक नया संविधान अपनाया गया। संविधान निर्माण के क्षेत्र में फ्रांस ने चौथा प्रयोग 1946 में किया। अंतत: वहाँ 1958 में एक और संविधान के साथ पाँचवे गणतंत्र की स्थापना की गई।

जान पड़ता है कि संवैधानिक बदलाव और राजनीतिक विकास-क्रम का आपसी रिश्ता बड़ा गहरा है।

© NCERT not to be republished

तब, एक ही संविधान आखिर हमारे यहाँ इतने दिनों से कैसे काम करता रह सकता है? इस प्रश्न का एक उत्तर तो यह है कि हमारे संविधान में इस बात को स्वीकार करके चला गया है कि समय की ज़रूरत को देखते हुए इसके अनुकूल संविधान में संशोधन किये जा सकते हैं। दूसरी बात यह है कि संविधान के व्यावहारिक कामकाज में इस बात की पर्याप्त गुंजाइश रहती है कि किसी संवैधानिक बात की एक से ज्यादा व्याख्याएँ हो सकें। कहने का मतलब यह है कि हमारा संविधान लचीला है। अदालती फ़ैसले और राजनीतिक व्यवहार-बरताव दोनों ने संविधान के अमल में अपनी परिपक्वता और लचीलेपन का परिचय दिया है। इन्हीं वजहों से हमारा संविधान कानूनों की एक बंद और जड़ किताब न बनकर एक जीवंत दस्तावेज़ के रूप में विकसित हो सका है।

समय के एक खास मोड़ पर अपने समाज के लिए संविधान तैयार कर रहे लोगों को एक आम चुनौती का सामना करना पड़ता है। यह तो स्वाभाविक ही है कि उस खास वक्त में समाज जिन समस्याओं का सामना कर रहा है उसके समाधान के प्रयासों की झलक संविधान के प्रावधानों में दिखाई देगी। लेकिन, संविधान को बनाते हुए इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि आगे आने वाले समय में वह सरकारों के कामकाज के लिए एक रूपरेखा प्रदान करे। इसलिए, किसी भी संविधान को भविष्य में पैदा होने वाली चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करने में भी सक्षम होना चाहिए। इस अर्थ में संविधान न केवल समकालीन परिस्थितियों और प्रश्नों से जुड़ा होता है बल्कि उसके कई सारे तत्त्व स्थायी महत्त्व के होते हैं।

अमेरिका का संविधान 200 वर्ष पहले अस्तित्व में आया था। तब से लेकर आज तक उसमें केवल 27 संशोधन किए गए हैं। है न दिलचस्प बात!

लेकिन इसी के साथ संविधान कोई जड़ और अपरिवर्तनीय दस्तावेज़ भी नहीं होता। संविधान की रचना मनुष्य ही करते हैं और इस नाते उसमें हमेशा संशोधन बदलाव और पुनर्विचार की गुंजाइश रहती है। संविधान समाज की इच्छाओं और आकांक्षाओं का प्रतिबिंब होता है लेकिन इस संबंध में हमें यह बात भी याद रखनी चाहिए कि संविधान समाज को लोकतांत्रिक ढंग से चलाने का एक ढाँचा भी होता है। इस दृष्टि से संविधान एक ऐसा उपकरण होता है जिसे समाज खुद अपने लिए गढ़ता है।

संविधान की यह दोहरी भूमिका संविधान की हैसियत को लेकर कुछ मुश्किल सवाल खड़े करती है। क्या संविधान इतना पवित्र दस्तावेज़ होता है कि उसमें कोई बदलाव किया ही नहीं जा सकता? दूसरी तरफ देखें तो यह पूछा जा सकता है कि क्या यह एक इतना आम फहम मसला है कि उसमें सामान्य कानून की तरह जब चाहे बदलाव किए जा सकते हैं?

भारतीय संविधान के निर्माताओं को इस समस्या का आभास था, इसलिए उन्होंने संविधान में एक संतुलन पैदा करने की कोशिश की। उन्होंने संविधान को सामान्य कानून से ऊँचा दर्जा दिया ताकि आने वाली पीढियाँ उसे सन्मान की दृष्टि से देखें। साथ ही संविधान बनाते समय उन्होंने इस बात का भी ख्याल रखा कि भविष्य में इस दस्तावेज़ में संशोधन की आवश्कता पड़ सकती है। संविधान निर्माण की प्रक्रिया के दौरान भी वे इस बात को लेकर सचेत थे कि किसी मुद्दे पर लोगों की राय अलग-अलग हो सकती है। वे जानते थे कि जब समाज किसी मत विशेष की ओर ज्यादा आकृष्ट होगा तब संविधान के प्रावधानों में संशोधन की आवश्यकता महसूस की जाएगी। इसलिए संविधान बनाते समय दोनों बातों का ध्यान रखा गया यानी उसे पवित्र दस्तावेज़ मानने के साथ-साथ इतना लचीला भी बनाया गया कि उसमें समय की आवश्यकता के अनुरूप यथोचित बदलाव किए जा सकें। दूसरे शब्दों में हमारा संविधान कोई जड़ और अपरिवर्तनीय दस्तावेज़ नहीं है। इसमें किसी स्थिति के बारे में अंतिम निर्णय देने से बचा गया है। यह कोई अपरिवर्तनीय चीज़ नहीं है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे ?

कक्षा के अनेक छात्रों को उपरोक्त खंड स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आया। छात्रों ने निम्नलिखित बातें कही। इस बारे में आपकी राय क्या है?

- संविधान किसी भी अन्य कानून की तरह ही होता है। उससे हमें सरकार के कामकाज के पीछे काम करने वाले नियमों और कानूनों के विषय में जानकारी मिलती है।
- संविधान जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति होता है। अत: संविधान में एक ऐसा उपबंध किया जाना चाहिए ताकि उसे 10 या 15 वर्षों के बाद बदला जा सके।
- संविधान किसी देश के दर्शन को बयान करता है। उसे कभी नहीं बदला जा सकता।
- संविधान एक पावन दस्तावेज़ होता है इसलिए इसे बदलने की बात करना लोकतंत्र का विरोध करना है।

संविधान में संशोधन कैसे किया जाता है?

अनुच्छेद 368 ...

संसद अपनी संवैधानिक शक्ति के द्वारा और इस अनुच्छेद में वर्णित प्रक्रिया के अनुसार संविधान में नए उपबंध कर सकती है, पहले से विद्यमान उपबंधों को बदल या हटा सकती है।

© NCERT not to be republished

हम पहले ही कह चुके हैं कि हमारे संविधान निर्माता संविधान को एक संतुलित दस्तावेज़ बनाने के पक्षधर थे। संविधान को इतना लचीला होना ही चाहिए कि उसमें आवश्यकता के अनुसार बदलाव किए जा सकें। लेकिन साथ ही इसे अनावश्यक और अक्सर होने वाले बदलावों से बचाया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में संविधान निर्माता संविधान को एक ही साथ 'लचीला' और 'कठोर' बनाने के पक्ष में थे। यहाँ लचीले का मतलब है परिवर्तनों के प्रति खुली दृष्टि और कठोर का अर्थ है अनावश्यक परिवर्तनों के प्रति सख्त रवैया। लचीला संविधान वह होता है जिसमें आसानी से संशोधन किया जा सके जिन संविधानों में संशोधन करना बहुत मुश्किल होता है ऐसे संविधानों को कठोर कहा जाता है। भारतीय संविधान में इन दोनों ही तत्वों का समावेश किया गया है।

मुझे यह बात समझ नहीं आती कि कोई संविधान लचीला या कठोर कैसे होता है? क्या संविधान की कठोरता या उसका लचीलापन उस काल की राजनीति से तय नहीं होता?

संविधान निर्माता जानते थे कि संविधान में त्रुटियाँ हो सकती हैं। वे समझते थे कि संविधान पूरी तरह दोषमुक्त नहीं हो सकता। वे संविधान को एक ऐसा रूप देना चाहते थे कि त्रुटि सामने आने पर उसका निवारण आसानी से किया जा सके इस संविधान के कुछ प्रावधानों का स्वरूप अस्थायी था और इनके बारे में यह राय अपनायी गयी थी कि नयी संसद का गठन होने पर या बाद में इन प्रावधानों को हटा लिया जाएगा। हमारा संविधान एक संघीय राज्यव्यवस्था बनाने के पक्ष में था। इसलिए उसमें ऐसे प्रावधान किए गए थे कि राज्यों की शक्तियों को उनकी सहमति के बिना नहीं हटाया जा सके इसके कुछ पक्ष इतने केंद्रीय महत्त्व के थे कि संविधान निर्माता उन्हें संशोधन के दायरे से बाहर रखना चाहते थे। अतः इन प्रावधानों की संशोधन प्रक्रिया को कठोर बनाना आवश्यक था। यही वजह है कि संविधान में संशोधन करने के लिए विभिन्न तरीके अपनाने पड़े।

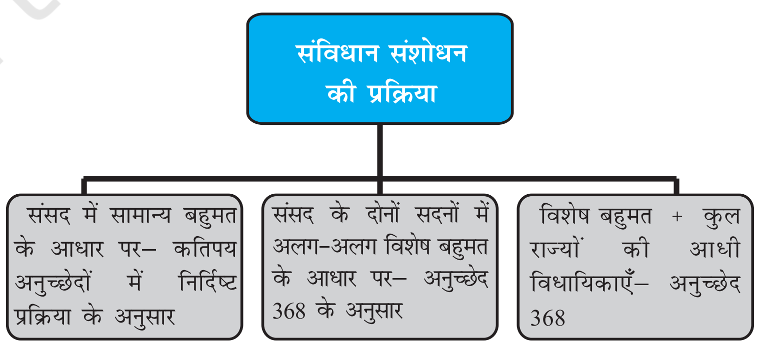

© NCERT not to be republished

संविधान में ऐसे कई अनुच्छेद हैं जिनमें संसद सामान्य कानून बनाकर संशोधन कर सकती हैं। ऐसे मामलों में कोई विशेष प्रक्रिया अपनाने की जरूरत नहीं होती। इस प्रकार के संशोधन और सामान्य कानून में कोई अंतर नहीं होता। संविधान के इन हिस्सों को काफ़ी लचीला बनाया गया है। आगे संविधान के दो अनुच्छेद दिए गए हैं। इन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ें। इन दोनों अनुच्छेदों में 'विधि द्वारा' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ यह है कि संसद इन अनुच्छेदों में अनुच्छेद 368 में वर्णित प्रक्रिया को अपनाए बिना ही संशोधन कर सकती है। संविधान के अनेक अनुच्छेदों में संसद इसी सरल तरीके से संशोधन कर सकती है।

अनुच्छेद 2 संसद विधि द्वारा संघ में... नए राज्यों को प्रवेश दे सकती है।

अनुच्छेद 3 संसद विधि द्वारा... किसी राज्य का क्षेत्रफल बढ़ा सकती है।

संविधान के शेष खंडों में संशोधन करने के लिए अनुच्छेद 368 में प्रावधान किया गया है। इस अनुच्छेद में संविधान में संशोधन करने के दो तरीके दिए गए हैं। ये तरीके संविधान के सभी अनुच्छेदों पर एकसमान रूप से लागू नहीं होते। एक तरीके के अंतर्गत संसद के दोनों सदनों के विशेष बहुमत द्वारा संशोधन करने की बात कही गई है। दूसरा तरीका ज़्यादा कठोर है। इसके लिए संसद के विशेष बहुमत और राज्य विधानपालिकाओं की आधी संख्या की आवश्यकता होती है। ध्यान दें कि संविधान संशोधन की प्रक्रिया संसद से ही शुरू होती है। संसद के विशेष बहुमत के अलावा किसी बाहरी एजेंसी जैसे संविधान आयोग या किसी अन्य निकाय की संविधान की संशोधन प्रक्रिया में कोई भूमिका नहीं होती।

इसी प्रकार संसद या कुछ मामलों में राज्य विधानपालिकाओं में संशोधन पारित होने के पश्चात् इस संशोधन को पुष्ट करने के लिए किसी प्रकार के जनमत संग्रह की आवश्यकता नहीं होती। अन्य सभी विधेयकों की तरह

अगर कुछ राज्य संविधान में संशोधन चाहते हैं तो क्या उनकी बात सुनी जाएगी? क्या ये राज्य अपनी तरफ से संशोधन का प्रस्ताव ला सकते हैं? मुझे लगता है कि यह राज्यों की तुलना में केंद्र को ज्यादा शक्तियाँ देने का ही एक और उदाहरण है।

© NCERT not to be republished

संशोधन विधेयक को भी राष्ट्रपति के अनुमोदन के लिए भेजा जाता है परंतु इस मामले में राष्ट्रपति को पुनर्विचार करने का अधिकार नहीं है। इन बातों से पता चलता है कि संशोधन की प्रक्रिया कितनी कठोर और जटिल हो सकती है। हमारे संविधान में इन जटिलताओं से बचा गया है। इससे हमारे यहाँ संशोधन की प्रक्रिया अपेक्षाकृत सरल हो गई है। लेकिन यहाँ एक महत्त्वपूर्ण तथ्य पर ध्यान दिया जाना चाहिए – संशोधन के प्रश्न पर अंतिम राय जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की ही होती है। इसका अर्थ यह है कि संशोधन की प्रक्रिया का आधार निर्वाचित प्रतिनिधियों (संसदीय संप्रभुता) में निहित है।

विशेष बहुमत

चुनाव, कार्यपालिका और न्यायपालिका से संबंधित अध्यायों में हम उन प्रावधानों का अध्ययन कर चुके हैं जिनमें संशोधन करने के लिए विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है। एक बार पुनः याद करें कि विशेष बहुमत का क्या अर्थ होता है। सामान्यतः विधायिका में किसी प्रस्ताव या विधेयक को पारित करने के लिए सदन में उपस्थित सदस्यों के साधारण बहुमत की आवश्यकता होती है। कल्पना करें कि सदन में 247 सदस्य उपस्थित हैं। ये सभी सदस्य एक विधेयक पर मतदान करते हैं। अगर इन सदस्यों में से कम से कम 124 सदस्य विधेयक के पक्ष में मतदान करते हैं तो इस विधेयक को पारित माना जाएगा। लेकिन संशोधन विधेयक पर यह बात लागू नहीं होती। संविधान में संशोधन करने के लिए दो प्रकार के विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है। सबसे पहले, संशोधन विधेयक के पक्ष में मतदान करने वाले सदस्यों की संख्या सदन के कुल सदस्यों की संख्या की कम से कम आधी होनी चाहिए। दूसरे, संशोधन का समर्थन करने वाले सदस्यों की संख्या मतदान में भाग लेने वाले सभी सदस्यों की दो तिहाई होनी चाहिए। संशोधन विधेयक को संसद के दोनों सदनों में स्वतंत्र रूप से पारित करने की आवश्यकता होती है। इसके लिए संयुक्त सत्र बुलाने का प्रावधान नहीं है। कोई भी संशोधन विधेयक विशेष बहुमत के बिना पारित नहीं किया जा सकता।

आखिर विशेष बहुमत का क्या औचित्य है? लोकसभा में 545 सदस्य होते हैं। अतः किसी भी संशोधन विधेयक का समर्थन करने के लिए 273 सदस्यों की आवश्यकता होती है। अगर मतदान के समय 300 सदस्य मौजूद हों तो विधेयक पारित करने के लिए 273 सदस्यों के समर्थन की आवश्यकता होगी।

लेकिन कल्पना करें कि लोकसभा के 400 सदस्यों ने किसी विधेयक पर होने वाले मतदान में भाग लिया है। इस विधेयक को पारित करने के लिए कितने सदस्यों के समर्थन

विश्व के आधुनिकतम संविधानों में संशोधन की विभिन्न प्रक्रियाओं में दो सिद्धांत ज़्यादा अहम् भूमिका अदा करते हैं।

- एक सिद्धांत है विशेष बहुमत का। उदाहरण के लिए, अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, रूस आदि के संविधानों में इस सिद्धांत का समावेश किया गया है। अमेरिका में दो तिहाई बहुमत का सिद्धांत लागू है, जबकि दक्षिण अफ्रीका और रूस जैसे देशों में तीन चौथाई बहुमत की आवश्यकता होती है।
- दूसरा सिद्धांत है संशोधन की प्रक्रिया में जनता की भागीदारी का। यह सिद्धांत कई आधुनिक संविधानों में अपनाया गया है। स्विट्ज़रलैंड में तो जनता को संशोधन की प्रक्रिया शुरू करने तक का अधिकार है। रूस और इटली अन्य ऐसे देश हैं जहाँ जनता को संविधान में संशोधन करने या संशोधन के अनुमोदन का अधिकार दिया गया है।

विशेष बहुमत के इस झंझट से मैं उकता गया हूँ। इसके लिए हमेशा ही बड़ा भारी जोड़-घटाव करना पड़ता है। भई यह राजनीति है या गणित?

की आवश्यकता होगी। इसके अलावा, संशोधन विधेयक को संसद के दोनों सदनों में विशेष बहुमत के साथ स्वतंत्र रूप से पारित किया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि जब तक प्रस्तावित विधेयक पर पर्याप्त सहमति न बन पाए तब तक उसे पारित नहीं किया जा सकता। सत्तारूढ़ दल काफी कम बहुमत और विपक्ष के विरोध के बावजूद बजट या अपनी पसंद का विधेयक पारित करा सकता है, लेकिन अगर यह दल संविधान में संशोधन करना चाहता है तो उसे कुछ विपक्षी दलों को विश्वास में लेना पड़ेगा। इस तरह संशोधन प्रक्रिया के पीछे बुनियादी भावना यह है कि उसमें राजनीतिक दलों और सांसदों की व्यापक भागीदारी होनी चाहिए।

जो लोग इस संविधान से असंतुष्ट हैं, उन्हें केवल दो तिहाई बहुमत प्राप्त करना है और यदि वे (इतना)... भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं तो यह नहीं समझा जा सकता है कि जन साधारण उनके असंतोष में उनका साथ दे रहा है। यहाँ गौर करने की बात यह है कि डा. अंबेडकर सिर्फ संसदीय बहुमत की बात नहीं कर रहे हैं। इस संदर्भ में वे जनता की राय का उल्लेख भी करते हैं। इससे पता चलता है कि बहुमत की धारणा के पीछे जनमत की भावना काम करती है। जनमत का यही सिद्धांत निर्णय प्रक्रिया को नियंत्रित करता है।

डा. अंबेडकर
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 976, 25 नवंबर 1949

© NCERT not to be republished

राज्यों द्वारा अनुमोदन

संविधान के कुछ अनुच्छेदों में संशोधन करने के लिए विषेश बहुमत पर्याप्त नहीं होता। राज्यों और केंद्र सरकार के बीच शक्तियों के वितरण से संबंधित या जन प्रतिनिधित्त्व से संबंधित अनुच्छेदों में संशोधन करने के लिए राज्यों से परामर्श करना और उनकी सहमति प्राप्त करना आवश्यक होता है। पीछे हमने संविधान की संघीय प्रकृति के बारे में अध्ययन किया है। संघीय संरचना का अर्थ यह है कि राज्यों की शक्तियाँ केंद्र सरकार की दया पर निर्भर नहीं करतीं। संविधान में राज्यों की शक्तियों को सुनिश्चित करने के लिए यह व्यवस्था की गई है कि जब तक आधे राज्यों की विधान पालिकाएँ किसी संशोधन विधेयक को पारित नहीं कर देतीं तब तक वह संशोधन प्रभावी नहीं माना जाता। इस अर्थ में यह कहा जा सकता है कि संविधान के कुछ हिस्सों के बारे में राजनीति से एक व्यापक सहमति की अपेक्षा की जाती है। इस प्रावधान में राज्यों के अधिकारों को भी जगह दी गई है। इसके अंतर्गत राज्यों को संशोधन की प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार दिया गया है। उल्लेखनीय है कि संशोधन की प्रक्रिया के कठोर होने के बावजूद उसे फिर भी काफी हद तक लचीला बनाया गया है। हम देख सकते हैं कि संशोधन के लिए केवल आधे राज्यों के अनुमोदन और राज्य विधानपालिकाओं के साधारण बहुमत की आवश्यकता होती है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि शर्तों की कठोरता के बावजूद संशोधन करने की प्रक्रिया अव्यावहारिक नहीं है। संक्षेप में, भारतीय संविधान में संशोधन करने के लिए व्यापक बहुमत की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रक्रिया में राज्यों को सीमित भूमिका दी गई है। हमारे संविधान निर्माता इस बात को लेकर सचेत थे कि संविधान में संशोधन की प्रक्रिया को इतना आसान नहीं बना दिया जाना चाहिए कि उसके साथ जब चाहे छेड़खानी की जा सके। लेकिन साथ ही उन्होंने इस बात का ख्याल भी रखा कि भावी पीढ़ियाँ अपने समय की जरूरतों के हिसाब से इसमें आवश्यक संशोधन कर सके।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे ?

भारतीय संविधान में निम्नलिखित संशोधन करने के लिए कौन-कौन-सी शर्तें पूरी की जानी चाहिए? उचित स्थान पर सही का निशान लगाएँ।

संशोधन का विषय	विशेष बहुमत	राज्यों द्वारा अनुमोदन
नागरिकता संबंधी अनुच्छेद		
धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार		
केंद्र सूची में परिवर्तन		
राज्य की सीमाओं में बदलाव		
चुनाव आयोग से संबंधित उपबंध		

संविधान में इतने संशोधन क्यों किए गए हैं?

26 जनवरी 2024 को हमारे संविधान को लागू हुए 74 वर्ष हो गए। अभी तक इसमें 106 संशोधन किए जा चुके थे। संशोधन प्रक्रिया की कठोरता को देखते हुए संशोधनों की यह संख्या काफी बड़ी मानी जाएगी। आइए जानने का प्रयास करें कि इतने सारे संशोधनों के पीछे क्या वजहें रही हैं और इसके निहितार्थ क्या हैं।

आइए जरा एक नज़र संशोधनों के इतिहास पर डालें। अगले पन्ने पर दिए गए ग्राफ़ को ध्यानपूर्वक देखें और इसे समझने का प्रयास करें। ग्राफ़ में एक ही सूचना को दो भिन्न तरीकों से दर्शाया गया है। पहले ग्राफ़ में प्रत्येक दस वर्षों के दौरान हुए संवैधानिक संशोधनों की संख्या को दर्शाया गया है। इसमें दिए गए स्तंभ उस अवधि के दौरान संशोधनों की संख्या को चिन्हित करते हैं। दूसरे ग्राफ़ में प्रत्येक दस संशोधनों की अवधि को दिखाया गया है। आप पाते हैं कि 1970 से 1990 तक के दो दशकों के दौरान बड़े स्तर पर संशोधन हुए। दूसरी ओर, दूसरा ग्राफ़ हमें एक और ही कहानी बताता है; 1974 से 1976 बीच तीन वर्ष के अंतराल में दस

हमारे संविधान में इतनी बार संशोधन क्यों किए गए? क्या हमारे समाज या हमारे संविधान में कुछ समस्या है?

© NCERT not to be republished

संवैधानिक संशोधन किए गए। पुनः 2001 से 2003 तक ठीक तीन वर्षों के दौरान भी दस संवैधानिक संशोधन किए गए। हमारे देश के राजनीतिक इतिहास में ये दो कालखंड बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। पहले काल के दौरान कांग्रेस सत्ता में थी। कांग्रेस पार्टी को संसद में भारी बहुमत मिला था। लोकसभा में उसके 352 सदस्य थे और ज़्यादातर राज्य विधान सभाओं में भी वह बहुमत की स्थिति में थी। दूसरी ओर, 2001 से 2003 के बीच का काल गठबंधन की राजनीति का काल माना जाता है। यह एक ऐसा भी काल था जिसमें विभिन्न राज्यों में अलग-अलग दलों की सरकारें काम कर रही थीं। इस काल की एक अन्य विशेषता भाजपा और इसके विरोधी दलों के बीच कटु प्रतिद्वंद्विता थी। लेकिन इस काल में दस संशोधन किए गए। इसलिए ये संशोधन केवल सत्ताधारी पार्टी के बहुमत पर ही निर्भर नहीं करते थे।

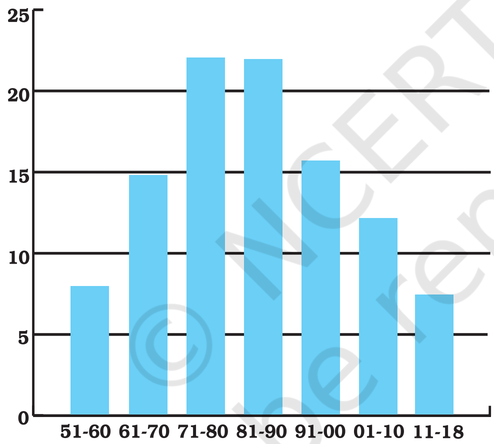

ग्राफ़-1
एक दशक के दौरान किए गए संशोधन

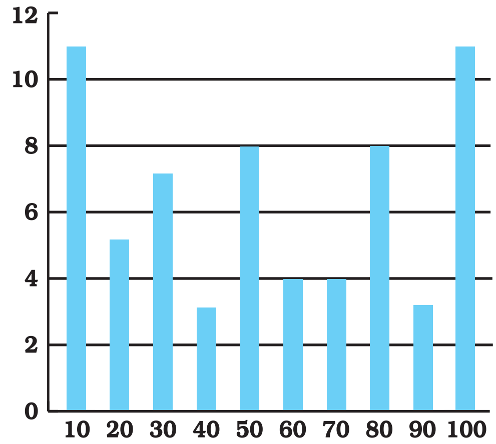

ग्राफ़-2
दस संशोधनों की अवधि

संशोधनों की संख्या को लेकर हमेशा आलोचना होती रही है। यह कहा जाता है कि भारतीय संविधान में बहुत अधिक संशोधन किए गए हैं। बाहरी तौर पर 74 वर्षों की अवधि के दौरान संविधान में 106 संशोधनों की बात अजीब लगती है। लेकिन ऊपर के दोनों ग्राफ़ देखने से पता चलता है कि इन संशोधनों के पीछे केवल राजनीतिक सोच ही प्रमुख नहीं रही है। संविधान के पहले दशक को छोड़कर शेष दशकों में संशोधनों की एक धारा-सी बहने लगती है। इसका अर्थ है कि संशोधनों के पीछे सत्ताधारी दल की राजनीतिक सोच बहुत मायने नहीं रखती थी बल्कि ये संशोधन समय की जरूरतों के अनुसार किए गए थे। क्या इसके पीछे मूल संविधान की कमजोरियाँ भी काम कर रही या संविधान ही बहुत लचीला है?

संशोधनों की विषय-वस्तु

अब तक किए संशोधनों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पहली श्रेणी में वे संशोधन शामिल किए गए हैं जो तकनीकी या प्रशासनिक प्रकृति के हैं और ये संविधान के मूल उपबंधों को स्पष्ट बनाने, उनकी व्याख्या करने तथा छिट-पुट संशोधन से संबधित हैं। उन्हें केवल सिर्फ तकनीकी भाषा में संशोधन कहा जा सकता है। वास्तव में वे इन उपबंधों में कोई विशेष बदलाव नहीं करते।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की आयु सीमा को 60 वर्ष से बढाकर 62 वर्ष (15वाँ संशोधन) करना और इसी प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का वेतन बढ़ाने संबंधी संशोधन (54वाँ संशोधन) इसी बात के उदाहरण हैं। एक अन्य उदाहरण के रूप में हम विधायिकाओं में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों के आरक्षण संबंधी उपबंधों को ले सकते हैं। मूल उपबंध में आरक्षण की बात दस वर्ष की अवधि के लिए कही गई थी। किंतु इन वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व देने के लिए इस अवधि को प्रत्येक दस वर्षों की समाप्ति पर एक संशोधन द्वारा आगामी दस वर्षों के लिए बढ़ाना आवश्यक समझा गया। इस संबंध में अब तक छह संशोधन किए जा चुके हैं परंतु इन संशोधनों से मूल उपबंधों में कोई अंतर नहीं आया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ये केवल तकनिकी संशोधन हैं।

हाँ, मुझे लगता है कि हमें संशोधनों की संख्या के बजाय बदलावों पर ध्यान देना चाहिए। राजनीति के छात्र होने के नाते हमें इसी बात पर गौर करनी चाहिए।

क्या आपको राष्ट्रपति के पद से संबंधित चर्चा याद है? मूल संविधान में यह माना गया था कि हमारी संसदीय व्यवस्था में राष्ट्रपति सामान्यत: मंत्री परिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करेगा। इस संबंध में बाद में एक संशोधन किया गया और अनुच्छेद 74(1) में यह स्पष्ट कर दिया गया कि मंत्री परिषद् की सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी होगी। क्या इस संशोधन से वास्तव में कोई अंतर पड़ा है? इसे स्थापित परंपरा की निरंतरता के रूप में देखा जा सकता है अर्थात इस संशोधन में केवल संवैधानिक उपबंधों की व्याख्या भर की गई है।

व्याख्याएँ– विभिन्न दृष्टिकोण

संविधान की व्याख्या को लेकर न्यायपालिका और सरकार के बीच अकसर मतभेद पैदा होते रहे हैं। संविधान के अनेक संशोधन इन्हीं मतभेदों की उपज के रूप में देखे जा सकते हैं। इस तरह के टकराव पैदा होने पर संसद को संशोधन का सहारा लेकर संविधान की किसी एक व्याख्या को प्रामाणिक सिद्ध करना पड़ता है। प्रजातंत्र में विभिन्न संस्थाएँ संविधान और अपनी शक्तियों की अपने-अपने तरीके से व्याख्या करती हैं। यह लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक अहम लक्षण है। कई बार संसद इन न्यायिक व्याख्याओं से सहमत नहीं होती और उसे न्यायपालिका के नियमों को नियंत्रित करने के लिए संविधान में संशोधन करना पड़ता है। 1970 से 1975 के दौरान ऐसी अनेक परिस्थितियाँ पैदा हुईं।

न्यायपालिका तथा अधिकारों से संबंधित अध्यायों में आप संसद तथा न्यायपालिका के बीच उठने वाले विवादों के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। इस संबंध में हम तीन दृष्टांतों का उल्लेख कर सकते हैं। मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धांतों को लेकर संसद और न्यायपालिका के बीच अकसर मतभेद पैदा होते रहे हैं। इसी प्रकार निजी संपत्ति के अधिकार के दायरे तथा संविधान में संशोधन के अधिकार की सीमा को लेकर भी दोनों के बीच विवाद उठते रहे हैं। 1970 से 1975 के काल में संसद ने न्यायपालिका की प्रतिकूल व्याख्या को निरस्त करते हुए बार-बार संशोधन किए।

मुझे बात अब भी समझ नहीं आ रही है। लिखित संविधान में अलग-अलग व्याख्याओं की क्या ज़रूरत है? क्या लोग संविधान में अपनी इच्छाओं को मूर्त होते देखना चाहते हैं?

© NCERT not to be republished

यहाँ यह याद रखना ज़रूरी होगा कि इस दौर(1970–1975) में भारतीय राजनीति में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटी। इसलिए हमारा संवैधानिक इतिहास पूरे तौर पर इस काल की राजनीति के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। अगले वर्ष स्वतंत्र भारत के राजनीतिक इतिहास का अध्ययन करते समय आपको इस बारे में और जानकारी मिलेगी।

राजनीतिक आम सहमति के माध्यम से संशोधन

तीसरे, बहुत से संशोधन ऐसे हैं जिन्हें राजनीतिक दलों की आपसी सहमति का परिणाम माना जा सकता है। एक अर्थ में कहा जा सकता है कि ये संशोधन तत्कालीन राजनीतिक दर्शन और समाज की आकांक्षाओं को समाहित करने के लिए किए गए थे। वास्तव में, 1984 के बाद किए गए अनेक संशोधन इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं। यहाँ एक बार पुन: पिछले प्रश्न को याद करें—गठबंधन सरकारों के बावजूद इतने संशोधन क्यों किए गए? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इनमें से कई संशोधनों के पीछे व्यापक आम सहमति काम कर रही थी। राजनीतिक उथल-पुथल के इस दौर में हम अनेक संशोधनों को आकार लेते देखते हैं। संशोधनों के इस दीर्घ क्रम की शुरुआत दल बदल विरोधी कानून(52वाँ संशोधन) से हुई थी।

इसका मतलब कुछ मामलों में राजनीतिज्ञ एक-दूसरे से सहमत होते हैं। मगर सहमति के अर्थ को लेकर उनके बीच विवाद फिर भी बना ही रहता है।

दल बदल विरोधी कानून(52वाँ तथा 91वाँ संशोधन) के अलावा इस काल में मताधिकार की आयु को 21 से 18 वर्ष करने के लिए संविधान में 61वाँ संशोधन हुआ और 73वाँ और 74वाँ संशोधन किए गए। इस काल में नौकरियों में आरक्षण सीमा बढ़ाने और प्रवेश संबंधी नियमों को स्पष्ट करने के लिए भी संशोधन किए गए। सन् 1992-93 के बाद इन कदमों को लेकर देश में एक आम सहमति का माहौल पैदा हुआ और इन मुद्दों से संबंधित संशोधन पारित करने में कोई खास दिक्कत नहीं आई।

विवादास्पद संशोधन

हमारी अब तक की चर्चा से यह भावना पैदा नहीं होनी चाहिए कि संविधान में संशोधन करने के प्रश्न पर आज तक कोई विवाद ही पैदा नहीं हुआ है। सच्चाई यह है कि सत्तर से अस्सी के दशक में इन संशोधनों को लेकर विधि और राजनीति के दायरों में भारी बहस छिड़ी थी। 1971-1976 के काल में विपक्षी दल इन संशोधनों को संदेह की दृष्टि से देखते थे। उनका मानना था कि

इन संशोधनों के माध्यम से सत्तारूढ़ दल संविधान के मूल स्वरूप को बिगाड़ना चाहता है। इस संबंध में, 38वाँ, 39वाँ और 42वाँ संशोधन विशेष रूप से विवादास्पद रहे हैं।

जून 1975 में देश में आपातकाल की घोषणा की गई। ये तीन संशोधन इसी पृष्ठभूमि से निकले थे। इन संशोधनों का लक्ष्य संविधान के कई महत्त्वपूर्ण हिस्सों में बुनियादी परिवर्तन करना था।

अच्छा! तो, सारा मामला राजनीति से जुड़ा है। क्या मैं यही बात नहीं कह रही थी कि संविधान और संशोधन के मसले कानून के बजाय राजनीति से ज्यादा संबंधित हैं?

पिछले तीन दशकों में संविधान की बुनियादी संरचना को लेकर देश की सभी संस्थाओं में सहमति पैदा हुई है। वास्तव में, संविधान का 42वाँ संशोधन एक बड़ा संशोधन है। इसने संविधान को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। एक प्रकार से यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा केशवानंद मामले में दिए गए निर्णय को भी चुनौती थी। यहाँ तक कि इसके तहत लोकसभा की अवधि को भी 5 वर्ष से बढ़ाकर 6 वर्ष कर दिया गया। आपने मूल कर्तव्यों के बारे में अवश्य पढ़ा होगा। उन्हें संविधान में इसी संशोधन द्वारा जोड़ा गया था। संविधान का 42वाँ संशोधन न्यायपालिका की समीक्षा शक्तियों पर भी प्रतिबंध लगाता है। यह कहा जाता है कि इस संशोधन के द्वारा संविधान के एक बड़े मौलिक हिस्से को नए सिरे से लिखा गया। क्या आप जानते हैं कि इस संशोधन के द्वारा संविधान की प्रस्तावना, सातवीं अनुसूची तथा 53 अनुच्छेदों में परिवर्तन किए गए। जब यह संशोधन संसद में पास किया गया तो विरोधी दलों के बहुत से सांसद जेल में थे। इसी पृष्ठभूमि में 1977 के चुनाव हुए और सत्ताधारी दल (कांग्रेस) की हार हुई। नई सरकार ने इन विरोधाभासी संशोधनों पर पुनः विचार करना आवश्यक समझा और 38वें, 39वें तथा 42वें संशोधन के माध्यम से जो परिवर्तन किए गए थे उनमें से अधिकांश को 43वें, 44वें संशोधन के द्वारा निरस्त कर दिया। इन संशोधनों के माध्यम से संवैधानिक संतुलन को पुनः लागू किया गया।

खुद करें—खुद सीखें

शिक्षा के अधिकार (RTE) और वस्तु एवं सेवा कर (GST) संबंधी संशोधनों को देखें। आप इनके महत्त्व के बारे में क्या सोचते हैं?

संविधान की मूल संरचना तथा उसका विकास

भारतीय संविधान के विकास को जिस बात ने बहुत दूर तक प्रभावित किया है वह है संविधान की मूल संरचना का सिद्धांत। आप यह बात पहले से ही जानते हैं कि इस सिद्धांत को न्यायपालिका ने केशवानंद भारती के प्रसिद्ध मामले में प्रतिपादित किया था। इस निर्णय ने संविधान के विकास में निम्नलिखित सहयोग दिया:

- इस निर्णय के द्वारा संसद की संविधान में संशोधन करने की शक्तियों की सीमाएँ निर्धारित की गई।
- यह संविधान के किसी या सभी भागों के संपूर्ण संशोधन (निर्धारित सीमाओं के अंदर) की अनुमति देता है।
- संविधान की मूल संरचना या उसके बुनियादी तत्त्व का उल्लंघन करने वाले किसी संशोधन के बारे में न्यायपालिका का फ़ैसला अंतिम होगा – केशवानंद भारती मामले में यह बात स्पष्ट हो गई।

सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद के मामले में 1973 में निर्णय दिया था। बाद के चार दशकों में संविधान की सभी व्याख्याएँ इसको ध्यान में रखकर की गयी।

संरचना का सिद्धांत स्वयं में ही एक जीवंत संविधान का उदाहरण है। संविधान में इस अवधारणा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। यह एक ऐसा विचार है जो न्यायिक व्याख्याओं से जन्मा है। विगत तीन दशकों के दौरान बुनियादी संरचना के सिद्धांत को व्यापक स्वीकृति मिली है। इस तरह देखा जाए तो न्यायपालिका और उसकी व्याख्याओं के चलते भी संविधान में संशोधन हुए हैं।

सभी जीवंत संविधान बहस, तर्क-वितर्क, प्रतिस्पर्द्धा और व्यावहारिक राजनीति की प्रक्रिया से गुजर कर ही विकसित होते हैं।

1973 के बाद न्यायालयों ने कई मामलों में बुनियादी संरचना के तत्वों को निर्धारित करने का प्रयास किया है। एक अर्थ में, बुनियादी संरचना के सिद्धांत से संविधान की कठोरता और लचीलेपन का संतुलन और मजबूत ही हुआ है। संविधान के कुछ हिस्सों को संशोधन के दायरे से बाहर रखने और उसके कुछ हिस्सों को संशोधन प्रक्रिया के अंतर्गत लाने से कठोरता और लचीलेपन का संतुलन निश्चय ही पुष्ट हुआ है।

अच्छा! तो आखिरी .फ़ैसला न्यायपालिका के हाथ में होता है। क्या इसे भी न्यायिक सक्रियता कहा जा सकता है?

संविधान की समीक्षा

नवें दशक के अंतिम वर्षों में समूचे संविधान की समीक्षा करने का विचार सामने आया। सन् 2000 में भारत सरकार ने उच्चतम न्यायालय के सेवा निवृत्त मुख्य न्यायाधीश श्री वेंकटचलैया की अध्यक्षता में एक आयोग नियुक्त किया जिसका उद्देश्य संविधान के कामकाज की समीक्षा करना था। विपक्षी दल तथा अन्य संगठनों ने इस आयोग का बहिष्कार किया। आयोग को लेकर उठा राजनीतिक विवाद अपनी जगह है लेकिन गौर करने की बात यह है कि आयोग ने बुनियादी संरचना में विश्वास जताया और ऐसे किसी कदम की सिफारिश नहीं की जिससे संविधान की बुनियादी संरचना को चोट पहुँचती हो। इससे पता चलता है कि हमारे संविधान में बुनियादी संरचना के सिद्धांत को कितना महत्त्व दिया गया है।

यह बात पूरी तरह गलत है। पहले तो आप कहते हैं कि संशोधन के लिए सहमति जरूरी है। लेकिन हम देखते हैं कि न्यायाधीश संविधान के समूचे अर्थ को ही बदल डालते हैं।

ऐसे कई और उदाहरण मौजूद हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि संविधान की समझ को बदलने में न्यायिक व्याख्याओं की अहम भूमिका रही है। नौकरियों तथा शैक्षिक संस्थाओं में आरक्षण सीमा तय करने के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने यह फ़ैसला दिया है कि आरक्षित सीटों की संख्या सीटों की कुल संख्या के आधे से अधिक नहीं होनी चाहिए। इस निर्णय को अब एक सिद्धांत के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इसी प्रकार अन्य पिछड़े वर्गों को आरक्षण नीति के अंतर्गत स्थान देते हुए उच्चतम न्यायालय ने क्रीमी लेयर का विचार सामने रखा और यह फ़ैसला दिया कि इस श्रेणी से संबंधित व्यक्तियों को आरक्षण के लाभ नहीं मिलने चाहिए। इसी तरह, न्यायपालिका ने शिक्षा, जीवन, स्वतंत्रता और अल्पसंख्यक समूहों की संस्थाओं की स्थापना और उनके प्रबंधन के अधिकारों के उपबंधों में अनौपचारिक रूप से कई संशोधन किए हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि न्यायालय के आदेशों की भी संविधान के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

बताएँ कि निम्नलिखित वाक्य सही हैं या गलत ?

(क) बुनियादी ढाँचे को लेकर दिए गए फ़ैसले के बाद, संसद को संविधान में संशोधन करने का अधिकार नहीं रह गया है।

(ख) सर्वोच्च न्यायालय ने हमारे संविधान के बुनियादी तत्वों की एक सूची तैयार की है। इस सूची को बदला नहीं जा सकता।

(ग) न्यायालय को इस बात का फ़ैसला करने का अधिकार है कि किसी संशोधन से बुनियादी संरचना का उल्लंघन होता है या नहीं।

(ग) केशवानंद भारती मामले के बाद यह तय हो चुका है कि संसद संविधान में किस सीमा तक संशोधन कर सकती है।

संविधान एक जीवंत दस्तावेज़

हमने संविधान को एक जीवंत दस्तावेज़ माना है। इसका क्या अर्थ है?

लगभग एक जीवित प्राणी की तरह यह दस्तावेज़ समय-समय पर पैदा होने वाली परिस्थितियों के अनुरूप कार्य करता है। जीवंत प्राणी की तरह ही यह अनुभव से सीखता है। वास्तव में यह उस पहेली का उत्तर है जिसका जिक्र हमने शुरुआत में संविधान के टिकाऊपन के बारे में किया था। समाज में इतने सारे परिवर्तन होने के बाद भी हमारा संविधान अपनी गतिशीलता, व्याख्याओं के खुलेपन और बदलती परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तनशीलता की विशेषताओं के कारण प्रभावशाली रूप से कार्य कर रहा है। यही लोकतांत्रिक संविधान का असली मानदंड है।

लोकतंत्र में व्यावहारिकताएँ तथा विचार समय-समय पर विकसित होते रहते हैं और समाज में इसके अनुसार प्रयोग चलते रहते हैं। कोई भी संविधान जो प्रजातंत्र को समर्थ बनाता हो और नए प्रयोगों के विकास का रास्ता खोलता हो वह केवल टिकाऊ ही नहीं होता बल्कि अपने नागरिकों के बीच सम्मान का पात्र भी होता है। महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या संविधान खुद का और लोकतंत्र का संरक्षण करने में सक्षम है?

पिछले छह दशकों के दौरान देश की राजनीति तथा संवैधानिक विकास के मामले में बहुत ही महत्त्वपूर्ण परिस्थितियाँ पैदा हुईं। इस अध्याय में हम उनमें से कुछ परिस्थितियों का उल्लेख कर चुके हैं। 1950 से संवैधानिक तथा वैधानिक मुद्दों

© NCERT not to be republished

हाँ मैं समझ गई! यह कुछ सी-सॉ झूले की तरह है। क्या इसे रस्साकशी कहना ज़्यादा उचित होगा?

के बारे में बार-बार सामने आने वाला सबसे गंभीर प्रश्न संसद की सर्वोच्चता का था। संसदीय लोकतंत्र में संसद देश की जनता का प्रतिनिधित्त्व करती है और इसलिए ऐसा माना जाता है कि कार्यपालिका तथा न्यायपालिका पर इसको वरीयता प्राप्त है। इसी प्रकार संविधान में सरकार के अन्य घटकों को भी शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। इसलिए यह अपेक्षा की जाती है कि संसद की सर्वोच्चता इस ढाँचे के अंतर्गत ही हो। प्रजातंत्र का अर्थ केवल वोट तथा जन प्रतिनिधियों तक ही सीमित नहीं है। प्रजातंत्र का अर्थ विकासशील संस्थाओं से है और इनके माध्यम से ही वह कार्य करता है। सभी राजनीतिक संस्थाओं को लोगों के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए और दोनों को एक दूसरे के साथ मिलकर चलना चाहिए।

न्यायपालिका का योगदान

न्यायपालिका तथा संसद के विवाद के दौरान संसद का मानना था कि उसके पास गरीब, पिछड़े तथा असहाय लोगों के हितों की रक्षा के लिए कानून बनाने (संशोधन करने) की शक्ति मौजूद है। न्यायपालिका ने इस बात पर ज़ोर दिया कि ये सब कार्यकलाप संवैधानिक ढाँचे के अंतर्गत किए जाने चाहिए और जनहित के उपाय विधिक सीमाओं के बाहर नहीं होने चाहिए क्योंकि एक बार कानून की सीमाओं से बाहर जाने की छूट मिलने पर सत्ताधारी उसका दुरुपयोग भी कर सकते हैं। प्रजातंत्र में जितना महत्त्व जनकल्याण को दिया जाता है उतना ही ध्यान इस बात पर देना पड़ता है कि सत्ता का दुरूपयोग न होने पाए।

भारतीय संविधान की सफलता इन तनावों को सुलझाने में ही निहित है। न्यायपालिका ने केशवानंद के मामले में संविधान की भाषा पर नहीं बल्कि उसकी आत्मा के आधार पर निर्णय दिया। संविधान पढ़ने पर आपको संविधान के मूल ढाँचे के बारे में कहीं उल्लेख नहीं मिलेगा। संविधान में ऐसा कहीं भी नहीं कहा गया है कि उसका फलाँ भाग मूल संरचना का हिस्सा है। इस प्रकार मूल संरचना न्यायपालिका द्वारा स्वयं विकसित की गई अवधारणा है।

न्यायपालिका ने इस अवधारणा को कैसे विकसित किया? पिछले चार दशकों के दौरान अन्य संस्थाओं ने इसे किस प्रकार अपनाया है?

© NCERT not to be republished

यहीं आकर हमें शब्द और भावना के बीच का अंतर पता चलता है। न्यायालय का यह मानना है कि किसी दस्तावेज़ को पढ़ते समय हमें उसके निहितार्थ पर ध्यान देना चाहिए। कानून की भाषा की अपेक्षा उस कानून या दस्तावेज़ के पीछे काम करने वाली सामाजिक परिस्थितियाँ तथा अपेक्षाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। इसलिए न्यायालय ने संविधान की मूल संरचना पर विशेष ध्यान दिया क्योंकि इसके बिना संविधान की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

बिलकुल ठीक! अगर अधिकार न हों और चुनाव न कराए जाएँ तो संविधान का कोई खास मतलब नहीं रह जाता और अगर जनता खुशहाल न हो तो अधिकार और चुनाव बेमानी हो जाते हैं। क्या संविधान की मूल भावना का अर्थ यही है?

राजनीतिज्ञों की परिपक्वता

उपर्युक्त अनुच्छेद में न्यायपालिका के बारे में की गई हमारी चर्चा से एक और तथ्य उजागर होता है। 1967 से 1973 के दौरान पैदा हुए कटु विरोधाभासों के दौर में संसद तथा कार्यपालिका ने एक संतुलित तथा दीर्घकालीन समाधान की आवश्यकता को महसूस किया। केशवानंद के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद, न्यायालय द्वारा इस पर पुनर्विचार कराने के प्रयास किए गए। जब ये सारे प्रयास विफल रहे तो 42 वाँ संशोधन किया गया और संसद की सर्वोच्चता स्थापित की गई लेकिन मिनर्वा मिल प्रकरण (1980) में न्यायालय ने अपने पहले लिए गए निर्णय को पुनः दोहराया। इसलिए केशवानंद मामले में निर्णय दिए जाने के चार दशकों के बाद भी संविधान की व्याख्या में इस निर्णय ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। राजनैतिक दलों, राजनेताओं, सरकार तथा संसद ने भी मूल संरचना के संवेदनशील विचार को स्वीकृति प्रदान की। यद्यपि संविधान की समीक्षा की बात चलती रही लेकिन यह प्रक्रिया संविधान की मूल संरचना के सिद्धांत द्वारा निर्धारित सीमाओं के परे नहीं जा सकती।

हमें यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि कई बार राजनीतिज्ञ अपरिपक्वता का व्यवहार करते हैं। क्या ऐसे मामलों का जिक्र करना जरूरी है?

संविधान का निर्माण करते समय भारत के नेताओं और जनता के सामने एक साझे भविष्य की तस्वीर थी। नेहरू ने स्वतंत्रता के अवसर पर दिए एक प्रसिद्ध भाषण में इस सामूहिक स्वप्न को भाग्य के साथ करार बताया था। संविधान सभा के सदस्य भी इस आदर्श अर्थात् व्यक्ति की गरिमा और आज़ादी, सामाजिक–आर्थिक समानता, जनता की खुशहाली और राष्ट्रीय एकता में विश्वास करते थे। यह आदर्श आज भी

संविधान सभा में भी कई सदस्य ऐसे थे जो इस संविधान को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल नहीं मानते थे :

यह संविधान जिन आदर्शों पर आधारित है उनका भारत की आत्मा से कोई संबंध नहीं है।... यह संविधान... यहाँ की परिस्थितियों में कार्य नहीं कर पाएगा और लागू होने के कुछ समय बाद ही ठप्प हो जाएगा।

लक्ष्मीनारायण साहू
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 613, 17 नवंबर 1949

धूमिल नहीं पड़ा है। यही कारण है कि आधी सदी गुजर जाने के बाद भी लोग संविधान का सम्मान करते हैं और उसे महत्त्व देते हैं। जनता की चेतना को निर्देशित करने वाले ये बुनियादी मूल्य आज भी उतने ही कारगर हैं।

निष्कर्ष

बुनियादी संरचना में कौन-कौन से तत्त्व निहित हैं– इस बात को लेकर अभी तक अनिर्णय की स्थिति बनी हुई है। इन बहसों के चलते रहने में कोई बुराई नहीं है। हमें यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि बहस और मतभेद लोकतांत्रिक राजनीति के अनिवार्य अंग होते हैं। साथ ही हमारे राजनैतिक दलों और नेतृत्त्व ने भी इन बहसों के मामले में परिपक्वता का परिचय दिया है। उन्होंने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि राजनीतिक प्रश्नों से जुड़ी बहस और तर्क-वितर्क मार्यादा के बाहर न जाए। समझौतों और आदान-प्रदान के बिना राजनीति नहीं चलती। अतिवादी रूख अपनाना सैद्धांतिक दृष्टि से ठीक हो सकता है, वैचारिक स्तर पर ऐसा करना काफी आकर्षक भी दिखता है। लेकिन, राजनीति में सभी पक्षों को अपने अतिवादी विचारों और नज़रिए को छोड़कर एक न्यूनतम साझी समझ विकसित करनी पड़ती है। इसके बिना लोकतांत्रिक राजनीति आगे नहीं बढ़ सकती। हमारे यहाँ की जनता और राजनीतिज्ञों ने इन बातों को भली-भाँति समझा है। इसी मर्यादित व्यवहार के

© NCERT not to be republished

कारण हमारा लोकतांत्रिक संविधान सफल रहा है। सरकार के विभिन्न अंगों के बीच सर्वोच्च होने की प्रतिद्वंद्विता हमेशा चलती रहेगी। जनकल्याण के अभिप्राय को लेकर भी उनके बीच द्वंद्व बना रहेगा। लेकिन अंततः निर्णय जनता के हाथों में ही रहता है। वस्तुतः लोकतंत्र का उद्देश्य और लोकतांत्रिक राजनीति का अंतिम लक्ष्य जनता की आज़ादी और खुशहाली है।

प्रश्नावली

1. निम्नलिखित में से कौन-सा वाक्य सही है—

संविधान में समय-समय पर संशोधन करना आवश्यक होता है क्योंकि

(क) परिस्थितियाँ बदलने पर संविधान में उचित संशोधन करना आवश्यक हो जाता है।

(ख) किसी समय विशेष में लिखा गया दस्तावेज़ कुछ समय पश्चात् अप्रासंगिक हो जाता है।

(ग) हर पीढ़ी के पास अपनी पसंद का संविधान चुनने का विकल्प होना चाहिए।

(घ) संविधान में मौजूदा सरकार का राजनीतिक दर्शन प्रतिबिंबित होना चाहिए।

2. निम्नलिखित वाक्यों के सामने सही/गलत का निशान लगाएँ।

(क) राष्ट्रपति किसी संशोधन विधेयक को संसद के पास पुनर्विचार के लिए नहीं भेज सकता।

(ख) संविधान में संशोधन करने का अधिकार केवल जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के पास ही होता है।

(ग) न्यायपालिका संवैधानिक संशोधन का प्रस्ताव नहीं ला सकती परंतु उसे संविधान की व्याख्या करने का अधिकार है। व्याख्या के द्वारा वह संविधान को काफी हद तक बदल सकती है।

(घ) संसद संविधान के किसी भी खंड में संशोधन कर सकती है।

3. निम्नलिखित में से कौन भारतीय संविधान की संशोधन प्रक्रिया में भूमिका निभाते हैं? इस प्रक्रिया में ये कैसे शामिल होते हैं?

(क) मतदाता

(ख) भारत का राष्ट्रपति

(ग) राज्य की विधान सभाएँ

(घ) संसद

© NCERT not to be republished

(ङ) राज्यपाल

(च) न्यायपालिका

4. इस अध्याय में आपने पढ़ा कि संविधान का 42वाँ संशोधन अब तक का सबसे विवादास्पद संशोधन रहा है। इस विवाद के क्या कारण थे?

(क) यह संशोधन राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान किया गया था। आपातकाल की घोषणा अपने आप में ही एक विवाद का मुद्दा था।

(ख) यह संशोधन विशेष बहुमत पर आधारित नहीं था।

(ग) इसे राज्य विधानपालिकाओं का समर्थन प्राप्त नहीं था।

(घ) संशोधन के कुछ उपबंध विवादास्पद थे।

5. निम्नलिखित वाक्यों में कौन-सा वाक्य विभिन्न संशोधनों के संबंध में विधायिका और न्यायपालिका के टकराव की सही व्याख्या नहीं करता–

(क) संविधान की कई तरह से व्याख्या की जा सकती है

(ख) खंडन-मंडन/बहस और मतभेद लोकतंत्र के अनिवार्य अंग होते हैं।

(ग) कुछ नियमों और सिद्धांतों को संविधान में अपेक्षाकृत ज़्यादा महत्त्व दिया गया है। कतिपय संशोधनों के लिए संविधान में विशेष बहुमत की व्याख्या की गई है।

(घ) नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की जिम्मेदारी विधायिका को नहीं सौंपी जा सकती।

(ङ) न्यायपालिका केवल किसी कानून की संवैधानिकता के बारे में फ़ैसला दे सकती है। वह ऐसे कानूनों की वांछनीयता से जुड़ी राजनीतिक बहसों का निपटारा नहीं कर सकती।

6. बुनियादी ढाँचे के सिद्धांत के बारे में सही वाक्य को चिन्हित करें। गलत वाक्य को सही करें।

(क) संविधान में बुनियादी मान्यताओं का खुलासा किया गया है।

(ख) बुनियादी ढाँचे को छोड़कर विधायिका संविधान के सभी हिस्सों में संशोधन कर सकती है।

(ग) न्यायपालिका ने संविधान के उन पहलुओं को स्पष्ट कर दिया है जिन्हें बुनियादी ढाँचे के अंतर्गत या उसके बाहर रखा जा सकता है।

(घ) यह सिद्धांत सबसे पहले केशवानंद भारती मामले में प्रतिपादित किया गया है।

(ङ) इस सिद्धांत से न्यायपालिका की शक्तियाँ बढ़ी हैं। सरकार और विभिन्न राजनीतिक दलों ने भी बुनियादी ढाँचे के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है।

7. सन् 2000–2003 के बीच संविधान में अनेक संशोधन किए गए। इस जानकारी के आधार पर आप निम्नलिखित में से कौन–सा निष्कर्ष निकालेंगे–

(क) इस काल के दौरान किए गए संशोधनों में न्यायपालिका ने कोई ठोस हस्तक्षेप नहीं किया।

(ख) इस काल के दौरान एक राजनीतिक दल के पास विशेष बहुमत था।

(ग) कतिपय संशोधनों के पीछे जनता का दबाव काम कर रहा था।

(घ) इस काल में विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच कोई वास्तविक अंतर नहीं रह गया था।

(ङ) ये संशोधन विवादास्पद नहीं थे तथा संशोधनों के विषय को लेकर विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच सहमति पैदा हो चुकी थी।

8. संविधान में संशोधन करने के लिए विशेष बहुमत की आवश्यकता क्यों पड़ती है? व्याख्या करें।

9. भारतीय संविधान में अनेक संशोधन न्यायपालिका और संसद की अलग–अलग व्याख्याओं का परिणाम रहे हैं। उदाहरण सहित व्याख्या करें।

10. अगर संशोधन की शक्ति जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के पास होती है तो न्यायपालिका को संशोधन की वैधता पर निर्णय लेने का अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए। क्या आप इस बात से सहमत हैं? 100 शब्दों में व्याख्या करें।

© NCERT not to be republished

अध्याय दस

संविधान का राजनीतिक दर्शन

11103CH10

परिचय

इस पुस्तक में अभी तक हमने संविधान के कुछ मुख्य प्रावधानों का अध्ययन किया और जाना कि पिछले 69 वर्षों में इन प्रावधानों ने कैसे काम किया। हमने इस बात का भी अध्ययन किया कि संविधान कैसे बना। लेकिन, क्या कभी आपके मन में यह सवाल उठता है कि ब्रिटिश-शासन से आज़ादी हासिल करने के बाद राष्ट्रीय स्वाधीनता-आंदोलन के नेताओं ने संविधान को अंगीकार करने की ज़रूरत क्यों महसूस की? उन्होंने खुद को और आने वाली पीढ़ियों को संविधान से बाँधने का फ़ैसला क्यों किया? इस पुस्तक में बार-बार आपका सामना संविधान सभा की बहसों से हुआ है। यह पूछा जा सकता है कि संविधान के अध्ययन के सिलसिले में संविधान सभा की बहसों की गहरी परीक्षा करना क्यों ज़रूरी है? इस अध्याय में सबसे पहले इसी प्रश्न का उत्तर खोजा जाएगा। दूसरे, यह प्रश्न पूछना भी ज़रूरी है कि हमने जो संविधान अपनाया है वह कैसा है? इस संविधान के सहारे हम किन उद्देश्यों को पाना चाहते हैं? क्या इन उद्देश्यों के साथ कोई नीति-बोध जुड़ा हुआ है? और अगर ऐसा है, तो यह नीति-बोध स्वयं में क्या है? हमारे संविधान के पीछे कौन-सी नैतिक दृष्टि काम कर रही है? इस दृष्टि की मजबूती और सीमाएँ क्या हैं और इसी के अनुसार संविधान की सफलता और कमज़ोरियाँ क्या हैं? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के क्रम में हम अपने संविधान के दर्शन को जानने की कोशिश करेंगे।

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि –

- *संविधान के अंतर्निहित दर्शन को समझना क्यों ज़रूरी हैं,*
- *भारतीय संविधान की मूलभूत विशेषताएँ क्या हैं,*
- *इस संविधान की आलोचनाएँ क्या हैं, और*
- *इस संविधान की सीमाएँ क्या हैं।*

© NCERT not to be republished

संविधान के दर्शन का क्या आशय है?

कुछ लोग मानते हैं कि संविधान सिर्फ कानूनों से बनता है और कानून एक बात है तथा मूल्य और नैतिकता बिलकुल ही अलग बात, इसलिए संविधान के प्रति केवल कानूनी नज़रिया अपनाया जा सकता है न कि नैतिक या राजनीतिक दर्शन का नज़रिया। यह सच है कि हर कानून में नैतिक तत्व नहीं होता किंतु बहुत-से कानून ऐसे हैं जिनका हमारे मूल्यों और आदर्शों से गहरा संबंध है। उदाहरण के लिए कोई कानून भाषा अथवा धर्म के आधार पर व्यक्तियों के बीच भेदभाव की मनाही कर सकता है। इस तरह का कानून समानता के विचार से जुड़ा है। यह कानून इसलिए बना है क्योंकि हम लोग समानता को मूल्यवान मानते हैं। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि कानून और नैतिक मूल्यों के बीच गहरा संबंध है।

इसी कारण संविधान को एक ऐसे दस्तावेज़ के रूप में देखना ज़रूरी है जिसके पीछे एक नैतिक दृष्टि काम कर रही है। संविधान के प्रति राजनीतिक दर्शन का नज़रिया अपनाने की ज़रूरत है। संविधान के प्रति राजनीतिक दर्शन के नज़रिये से हमारा क्या आशय है? इसमें तीन बातें शामिल हैं –

- पहली बात, संविधान कुछ अवधारणाओं के आधार पर बना है। इन अवधारणाओं की व्याख्या हमारे लिए ज़रूरी है। इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह कि हम संविधान में व्यवहार किए गए पदों, जैसे – 'अधिकार', 'नागरिकता', 'अल्पसंख्यक' अथवा 'लोकतंत्र' के संभावित अर्थ के बारे में सवाल करें।
- इसके अतिरिक्त, हमारे सामने एक ऐसे समाज और शासन-व्यवस्था की तस्वीर साफ-साफ होनी चाहिए जो संविधान की बुनियादी अवधारणाओं की हमारी व्याख्या से मेल खाती है। संविधान का निर्माण जिन आदर्शों की बुनियाद पर हुआ है उन पर हमारी गहरी पकड़ होनी चाहिए।
- इस सिलसिले में हमारी अंतिम बात यह है कि भारतीय संविधान को संविधान सभा की बहसों के साथ जोड़कर पढ़ा जाना चाहिए ताकि सैद्धांतिक रूप से हम बता सकें कि ये आदर्श कहाँ तक और क्यों ठीक हैं तथा आगे उनमें कौन-से सुधार किए जा सकते हैं। किसी मूल्य को अगर हम संविधान की बुनियाद बनाते हैं, तो हमारे लिए यह बताना ज़रूरी हो जाता है कि यह मूल्य सही और सुसंगत क्यों है। इसके बगैर संविधान के निर्माण में किसी मूल्य को आधार बनाना एकदम अधूरा कहा जाएगा। संविधान के निर्माताओं ने जब भारतीय समाज और राज-व्यवस्था को अन्य मूल्यों के बदले किसी खास मूल्य-समूह से दिशा-निर्देशित करने का फ़ैसला किया, तो ऐसा इसलिए हो सका क्योंकि उनके पास इस मूल्य-समूह को जायज ठहराने के लिए कुछ तर्क

क्या इसका मतलब यह माना जाए कि हर संविधान का एक दर्शन होता है या सिर्फ कुछ ही संविधानों में दर्शन होता है?

© NCERT not to be republished

मौजूद थे, भले ही इनमें से बहुत से तर्क पूरी तरह से स्पष्ट न हों, चाहे संविधान निर्माताओं के तर्क कितने भी कच्चे और अनगढ़ क्यों न हों, यह कल्पना करना मुश्किल है कि संविधान में अंतर्निहित मूल्यों को जायज ठहराने के लिए उनके पास तर्क नहीं थे। संविधान के अंतर्निहित नैतिक तत्त्व को जानने और उसके दावे के मूल्यांकन के लिए संविधान के प्रति राजनीतिक दर्शन का नज़रिया अपनाने की ज़रूरत है। ऐसा करना इस वजह से भी ज़रूरी है ताकि हम अपनी शासन व्यवस्था के बुनियादी मूल्यों की अलग-अलग व्याख्याओं को एक कसौटी पर जाँच सकें। यह बात स्पष्ट है कि आज संविधान के बहुत-से आदर्शों को चुनौती मिल रही है। इन आदर्शों को संविधान में सूखे हुए फूलों की भाँति सिर्फ रख भर नहीं दिया गया बल्कि इन पर बार-बार अदालतों में जिरह होती है और ये हमारे राजनीतिक जीवन के अभिन्न अंग हैं। इन पर विविध राजनीतिक हलकों – विधायिका, राजनीतिक दल, मीडिया, स्कूल तथा विश्वविद्यालयों में विचार-विमर्श होता है, बहस चलती है और इन पर सवाल उठाए जाते हैं। इन आदर्शों की व्याख्या अलग-अलग ढंग से की जाती है और कभी-कभी अल्पकालिक क्षुद्र स्वार्थों के लिए इनके साथ चालबाजी भी की जाती है। इसी कारण से इस बात की परीक्षा की ज़रूरत पैदा होती है कि संविधान के आदर्शों और अन्य हलकों में इन आदर्शों की अभिव्यक्ति के बीच कहीं

सन् 1947 के जापानी संविधान को बोलचाल में 'शांति संविधान' कहा जाता है। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है – ''हम, जापान के लोग हमेशा के लिए शांति की कामना करते हैं और हम लोग मानवीय रिश्तों का नियंत्रण करने वाले उच्च आदर्शों के प्रति सचेत हैं''। जापान के संविधान का दर्शन शांति पर आधारित है –

जापान के संविधान के अनुच्छेद 9 में कहा गया है –

1. न्याय और सुसंगत व्यवस्था पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय शांति की ईमानदारी से कामना करते हुए जापान के लोग राष्ट्र के संप्रभु अधिकार के रूप में प्रतिष्ठित युद्ध और अंतर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने के लिए धमकी अथवा बल प्रयोग से सदा-सर्वदा के लिए दूर रहेंगे।
2. उपर्युक्त अनुच्छेद के लक्ष्यों को पूरा करने की बात ध्यान में रखते हुए ज़मीनी-सेना, नौ-सेना और वायुसेना तथा युद्ध के अन्य साजो-सामान कभी भी नहीं रखे जाएँगे।

इससे पता चलता है कि संविधान निर्माण के समय की परिस्थितियाँ किस तरह संविधान निर्माताओं के सोच पर छाई रहती हैं।

जी हाँ, बिलकुल! संविधान की विभिन्न व्याख्याओं की बात मुझे याद है। हमने पिछले अध्याय में इस पर चर्चा की थी। की थी न?

© NCERT not to be republished

कोई गंभीर खाई तो नहीं? कभी-कभी विभिन्न संस्थाएँ एक ही आदर्श की व्याख्या अलग-अलग ढंग से करती हैं। हमें इन व्याख्याओं की आपसी तुलना की ज़रूरत पड़ती है। संविधान के आदर्श अपने आप में परम न सही परंतु हैसियत के लिहाज से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। मूल्यों या आदर्शों की व्याख्या अलग-अलग ढंग से की जाए, तो इन व्याख्याओं के बीच विरोध पैदा होता है। यह जाँचने की ज़रूरत आ पड़ती है कि कौन-सी व्याख्या सही है। इस जाँच-परख में संविधान के आदर्शों का इस्तेमाल एक कसौटी के रूप में होना चाहिए। इस लिहाज से हमारा संविधान एक पंच की भूमिका निभा सकता है।

संविधान–लोकतांत्रिक बदलाव का साधन

पहले अध्याय में हमने संविधान के अर्थ और एक अच्छे संविधान की ज़रूरत के बारे में पढ़ा। इस बात पर व्यापक सहमति है कि संविधान को अंगीकार करने का एक बड़ा कारण है सत्ता को निरंकुश होने से रोकना। आधुनिक राज्य अति की हद तक ताकतवर हैं। बल प्रयोग और दंड-शक्ति पर राज्य का एकाधिकार माना जाता है। यदि ऐसे राज्य की संस्थाएँ गलत हाथों में पड़ जाएँ तो क्या होगा? भले ही इन संस्थाओं का निर्माण हमारी सुरक्षा और भलाई के लिए किया गया था, परंतु ये बड़ी आसानी से हमारे ही विरुद्ध काम कर सकती हैं। राज्य की शक्ति का दुनियाभर का अनुभव बताता है कि अधिकांश राज्य कुछ व्यक्ति अथवा समूहों के हित को नुकसान पहुँचाने की दिशा में काम कर सकते हैं। अगर ऐसा है, तो हमें सत्ता के खेल के नियमों को इस तरह बनाना चाहिए कि राज्य की इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगे। संविधान ये बुनियादी नियम प्रदान करता है और राज्य को निरंकुश बनने से रोकता है। संविधान हमें गहरे सामाजिक बदलाव के लिए शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक साधन भी प्रदान करता है। इन सबके अतिरिक्त, औपनिवेशिक दासता में रहे लोगों के लिए संविधान राजनीतिक आत्मनिर्णय का उद्घोष है और इसका पहला वास्तविक अनुभव भी। जवाहरलाल नेहरू इन दोनों बातों को अच्छी तरह समझते थे। उनका कहना था कि संविधान सभा की माँग पूर्ण आत्मनिर्णय की सामूहिक माँग का प्रतिरूप है क्योंकि सिर्फ भारतीय जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों से बनी संविधान सभा को ही बगैर बाहरी हस्तक्षेप के भारतीय संविधान बनाने का अधिकार है। दूसरे, नेहरू की दलील थी कि संविधान सभा सिर्फ जन-प्रतिनिधियों अथवा योग्य वकीलों का जमावड़ा भर नहीं है बल्कि यह स्वयं में 'राह पर चल पड़ा एक राष्ट्र है जो अपने अतीत के राजनीतिक और सामाजिक ढाँचे के खोल से निकलकर अपने बनाए नए आवरण को पहनने की तैयारी कर रहा है।' भारतीय संविधान का निर्माण परंपरागत सामाजिक ऊँच-नीच के बंधनों को तोड़ने और स्वतंत्रता, समता तथा न्याय के नये युग में प्रवेश के लिए हुआ।

क्या हम यह कह सकते हैं कि संविधान सभा के सदस्य सामाजिक बदलाव के लिए आतुर थे? लेकिन, हम तो यह भी कहते हैं कि संविधान सभा में हर तरह के विचार रखे गए!

इस नज़रिए में संवैधानिक लोकतंत्र के सिद्धांत को पूरी तरह से बदलकर रख देने की क्षमता है। इस नज़रिए के अनुसार संविधान की मौजूदगी सत्तासीन लोगों की शक्ति पर अंकुश ही नहीं लगाती बल्कि जो लोग परंपरागत तौर पर सत्ता से दूर रहे हैं उनका सशक्तिकरण भी करती है। संविधान, कमज़ोर लोगों को उनका वाज़िब हक सामुदायिक रूप में हासिल करने की ताकत देता है।

संविधान सभा की ओर मुड़कर क्यों देखें?

पीछे क्यों मुड़ें और अपने को अतीत से क्यों बाँधकर रखें? कानून और राजनीतिक विचारों के इतिहासकार के लिए यह बात ठीक हो सकती है कि वह पीछे मुड़कर देखें कि कानूनी और राजनीतिक विचारों का आधार कहाँ छुपा है? किंतु, राजनीति के विद्यार्थी के लिए संविधान निर्माताओं के सरोकार और मंशा को जानना क्यों ज़रूरी है? क्यों नहीं बदली हुई स्थितियों पर गौर किया जाए और इस बात की नई परिभाषा बनाई जाए कि संविधान किन-किन बातों में सही-गलत का फ़ैसला दे सकता है?

अमेरिका का उदाहरण लें। वहाँ संविधान 18 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में लिखा गया। उस युग के मूल्य और मानक का इस्तेमाल 21 वीं सदी में करना बेतुका कहा जाएगा। बहरहाल, हिंदुस्तान की स्थिति अलग है। यहाँ संविधान-निर्माताओं के समय जो स्थिति थी और हम लोग आज जिन स्थितियों में रहते हैं-उसमें कोई क्रांतिकारी बदलाव नहीं आया है। मूल्यों, आदर्शों और अवधारणाओं के लिहाज से हम लोग संविधान सभा की सोच और समय से अलग नहीं हो पाए। हमारे संविधान का इतिहास अब भी हमारे वर्तमान का इतिहास है।

खुद करें — खुद सीखें

अध्याय दो और सात में दिए गए संविधान सभा की बहस के उद्धरणों को एक बार फिर पढ़ें। क्या आप मानते हैं कि इन अंशों में दिए गए तर्क आज के समय में प्रासंगिक हैं? क्यों?

हो सकता है कि हमारे कानूनी और राजनीतिक व्यवहार-बरताव के पीछे जो असली बात है, हमने उसे भुला दिया हो। कालक्रम में हमने उन्हें स्वाभाविक मान लिया हो। हमारे बहुत से कानूनी और राजनीतिक व्यवहारों के पीछे जो असली बात है, वह पृष्ठभूमि में चली गई हो या हमारी चेतना के पर्दे से उतर गई हो, भले ही वही बात पहले हमारे व्यवहार-बरताव की बुनियाद के रूप में स्वीकार की गई हो। जब तक सब कुछ ठीक-ठाक चलता रहे तब तक भूले रहना हानिकारक नहीं होता। लेकिन जब संवैधानिक व्यवहार-बरताव को चुनौती मिले, खतरा मंडराए या उपेक्षा हो, तब इन पर अपनी पकड़ बनाए रखना ज़रूरी हो जाता है। ऐसे में इन व्यवहारों-बरतावों के मूल्य और अर्थ को समझने के लिए संविधान

सभा की बहसों को मुड़कर देखने के सिवा हमारे पास कोई चारा नहीं रहता। संभव है, इस क्रम में हमें और पीछे यानि औपनिवेशिक भारत में जाकर पड़ताल करनी पड़े। इसलिए अपने संविधान के मूल में निहित राजनीतिक दर्शन को बार–बार याद करना और उससे टटोलना हमारे लिए ज़रूरी है।

यह कठिन है। हमें सीधे-सीधे क्यों नहीं बता दिया जाता कि इस संविधान का दर्शन क्या है? यदि यह दर्शन ऐसे छुपा रहेगा तो आम नागरिक इसे कैसे समझेगा?

हमारे संविधान का राजनीतिक दर्शन क्या है?

इस दर्शन को एक शब्द में बताना कठिन है। हमारा संविधान किसी एक शीर्षक में अँटने से इनकार करता है क्योंकि यह उदारवादी, लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, संघवादी, सामुदायिक जीवन–मूल्यों का हामी, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के साथ–साथ ऐतिहासिक रूप से अधिकार, वंचित वर्गों की ज़रूरतों के प्रति संवेदनात्मक तथा एक सर्व सामान्य राष्ट्रीय पहचान बनाने को प्रतिबद्ध संविधान है। संक्षेप में यह संविधान स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र, सामाजिक न्याय तथा एक न एक किस्म की राष्ट्रीय एकता के लिए प्रतिबद्ध है। इन सबके साथ एक बुनियादी चीज़ और है – संविधान का ज़ोर इस बात पर है कि उसके दर्शन पर शांतिपूर्ण तथा लोकतांत्रिक तरीके से अमल किया जाए।

कार्टून बूझें

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

26 जनवरी 1950

इस खेल के मैदान में हर विचार को दौड़ लगाने की छूट है लेकिन 'अंपायर' लोकतंत्र है।

© NCERT not to be republished

व्यक्ति की स्वतंत्रता

संविधान के बारे में गौर करने वाली पहली बात है कि यह व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध है। यह प्रतिबद्धता किसी चमत्कार के रूप में मेज के इर्द-गिर्द चुपचाप बैठकर चिंतन-मनन करने से नहीं आई। यह प्रतिबद्धता लगभग एक सदी तक निरंतर चली बौद्धिक और राजनीतिक गतिविधियों का परिणाम है। 19वीं सदी के शुरुआती समय में ही राममोहन राय ने प्रेस की आज़ादी की काट-छाँट का विरोध किया था। अंग्रेजी सरकार प्रेस की आज़ादी पर प्रतिबंध लगा रही थी। राममोहन राय का तर्क था कि जो राज्य व्यक्ति की ज़रूरतों का ख्याल रखता है, उसे चाहिए कि वह व्यक्ति को अपनी ज़रूरतों की अभिव्यक्ति का साधन प्रदान करे। इसलिए, राज्य के लिए ज़रूरी है कि वह प्रकाशन की असीमित आज़ादी प्रदान करे। पूरे ब्रिटिश-शासन के दौरान भारतीय प्रेस की आज़ादी की माँग निरंतर उठाते रहे। आश्चर्य नहीं कि आज अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हमारे संविधान का अभिन्न अंग है। इसी तरह, मनमानी गिरफ़्तारी के विरुद्ध हमें स्वतंत्रता प्रदान की गई है। आखिर कुख्यात रौलेट एक्ट ने हमारी इसी स्वतंत्रता के अपहरण का प्रयास किया था और राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम ने इसके विरुद्ध जमकर लोहा लिया। इसके अतिरिक्त अन्य वैयक्तिक स्वतंत्रताएँ मसलन अंतरात्मा का अधिकार उदारवादी विचारधारा का अभिन्न हिस्सा है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय संविधान का चरित्र मजबूत उदारवादी बुनियाद पर प्रतिष्ठित है। मौलिक अधिकारों से संबंधित अध्याय में हम देख चुके हैं कि भारतीय संविधान व्यक्ति की स्वतंत्रता को कितना महत्त्व देता है। यहाँ इस बात को भी हम याद करें कि संविधान को अंगीकार करने के चालीस वर्ष पहले भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रत्येक प्रस्ताव, योजना, विधेयक और रिपोर्ट में व्यक्ति की स्वतंत्रता की चर्चा रहती थी। इसे यों ही लिखने भर के लिए नहीं लिखा जाता था बल्कि इसे एक ऐसा मूल्य माना जाता था जिस पर समझौता नहीं किया जा सकता।

सामाजिक न्याय

जब भारतीय संविधान को उदारवादी कहा जाता है, तो इसका अर्थ इतना भर नहीं होता कि यह संविधान योरोपीय शास्त्रीय परंपरा के अर्थ में उदारवादी है। राजनीतिक सिद्धांत की अपनी किताब में आप 'उदारवाद' के बारे में और समझेंगे। शास्त्रीय उदारवाद (classical liberalism) सामाजिक न्याय और सामुदायिक जीवन मूल्यों के ऊपर हमेशा व्यक्ति को तरजीह देता है। भारतीय संविधान का उदारवाद इससे दो मायनों में अलग है। पहली बात तो यह कि हमारा संविधान सामाजिक न्याय से जुड़ा है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण का प्रावधान इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। संविधान निर्माताओं का विश्वास था कि मात्र समता का अधिकार दे देना इन वर्गों के साथ सदियों से हो रहे अन्याय

© NCERT not to be republished

से मुक्ति के लिए अथवा इनके मताधिकार को वास्तविक अर्थ देने के लिए काफी नहीं है। इन वर्गों के हितों को बढ़ावा देने के लिए विशेष संवैधानिक उपायों की ज़रूरत थी। इस कारण संविधान निर्माताओं ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के हितों की रक्षा के लिए बहुत से विशेष उपाय किए। इसका एक उदाहरण है अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए विधायिका में सीटों का आरक्षण। संविधान के विशेष प्रावधानों के कारण ही सरकारी नौकरियों में इन वर्गों को आरक्षण देना संभव हो सका।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे ?

बताएँ कि निम्नलिखित में कौन-सा अधिकार वैयक्तिक स्वतंत्रता का अंश है?

- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
- धर्म की स्वतंत्रता
- अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार
- सार्वजनिक स्थलों पर बराबरी की पहुँच।

विविधता और अल्पसंख्यकों के अधिकारों का सम्मान

संविधान का उदारवाद सामुदायिक जीवन-मूल्यों का पक्षधर है। भारतीय संविधान समुदायों के बीच बराबरी के रिश्ते को बढ़ावा देता है। हमारे देश में ऐसा करना आसान नहीं था क्योंकि समुदायों के बीच अकसर बराबरी का रिश्ता नहीं होता। समुदायों के बीच एक-दूसरे के साथ अकसर ऊँच-नीच

के एम पणिक्कर – भारतीय उदारवाद की दो धाराएँ हैं। पहली धारा की शुरुआत राममोहन राय से होती है। उन्होंने व्यक्ति के अधिकारों पर ज़ोर दिया, खासकर महिलाओं के अधिकार पर। दूसरी धारा में स्वामी विवेकानंद, के सी सेन और जस्टिस रानाडे जैसे चिंतक शामिल हैं। इन चिंतकों ने पुरातनी हिन्दू धर्म के दायरे में सामाजिक न्याय का जज्बा जगाया। विवेकानंद के लिए हिंदू समाज की ऐसी पुनर्रचना कर पाना उदारवादी सिद्धांतों के बगैर संभव न होता।

– इन डिफेंस ऑव लिबरलिज़्म–बॉबे–एशिया पब्लि. हाऊस, 1962

सामाजिक न्याय की बात करते हुए हमें नीति-निर्देशक सिद्धांतों की बात भी नहीं भूलनी चाहिए।

not to be republished © NCERT

का रिश्ता होता है जैसा कि हम जाति के मामले में देखते हैं। दूसरे, जब समुदाय एक-दूसरे को बराबरी का मानते हैं तब बहुधा प्रतिद्वंद्वी बन जाते हैं जैसा कि हम धार्मिक समुदायों के मामले में देखते हैं। संविधान निर्माताओं के सामने इस बात की कठिन चुनौती थी कि ऊँच-नीच अथवा गहरी प्रतिद्वंद्विता की मौजूदा स्थिति के बीच समुदायों में बराबरी का रिश्ता कैसे कायम किया जाए? समुदायों को उदार कैसे बनाया जाए? समुदायों को मान्यता न देकर इस समस्या का समाधान आसानी से किया जा सकता था। अधिकांश पश्चिमी राष्ट्रों के उदारवादी संविधान में ऐसा ही किया गया है। लेकिन ऐसा करना न तो अपने देश में कारगर होता और न ही वांछनीय। इसका कारण यह नहीं कि भारतीय अन्य लोगों की तुलना में समुदायों से कहीं ज़्यादा जुड़े हैं। हर जगह के व्यक्ति सांस्कृतिक समुदाय से जुड़े होते हैं और ऐसे हर समुदाय की अपनी परंपरा, मूल्य, रीति-रिवाज तथा भाषा होती है। समुदाय का सदस्य इसमें भागीदार होता है। उदाहरण के लिए, फ्रांस और जर्मनी में व्यक्ति भाषाई समुदाय का सदस्य होता है और इससे वह बड़ी गहराई से जुड़ा होता है। हम लोग सामुदायिक जीवन-मूल्यों को ज़्यादा खुले तौर पर स्वीकार करते हैं और यही बात हमें खास बनाती है। इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत में अनेक सांस्कृतिक समुदाय हैं। जर्मनी अथवा फ्रांस के विपरीत भारत में बहुत से भाषाई और धार्मिक समुदाय हैं। कोई समुदाय दूसरे पर प्रभुत्व न जमाए – इस बात को सुनिश्चित करना ज़रूरी था। इसी कारण हमारे संविधान के लिए समुदाय आधारित अधिकारों को मान्यता देना ज़रूरी हो गया।

मैं हमेशा सोचता रहता हूँ कि आखिर मैं हूँ कौन? मेरी बहुत-सी पहचान है। मेरी धार्मिक पहचान है; मेरी भाषाई पहचान है; मेरा रिश्ता अपने पैतृक शहर से है और फिर मैं एक छात्र भी हूँ।

ऐसे ही अधिकारों में एक है धार्मिक समुदाय का अपनी शिक्षा संस्था स्थापित करने और चलाने का अधिकार। ऐसी संस्थाओं को सरकार धन दे सकती है। इस प्रावधान से पता चलता है कि भारतीय संविधान धर्म को सिर्फ व्यक्ति का निजी मामला नहीं मानता।

धर्मनिरपेक्षता

माना जाता है कि धर्मनिरपेक्ष राज्य धर्म को 'निजी मामला' के रूप में स्वीकार करते हैं। कहने का अर्थ यह कि धर्मनिरपेक्ष राज्य धर्म को आधिकारिक अथवा सार्वजनिक मान्यता नहीं प्रदान करते। क्या इसका अर्थ यह हुआ कि भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्ष नहीं है? ऐसी बात नहीं हैं। यद्यपि शुरुआत में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द का जिक्र संविधान में नहीं हुआ था लेकिन भारतीय संविधान हमेशा धर्मनिरपेक्ष रहा। हाँ, यह भी है कि मुख्यधारा की पश्चिमी धारणा में व्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्ति की नागरिकता से संबंधित

अधिकारों की रक्षा के लिए धर्मनिरपेक्षता को धर्म और राज्य के पारस्परिक निषेध के रूप में देखा गया है।

इसके बारे में आप राजनीतिक सिद्धांत में विस्तार से पढ़ेंगे। पारस्परिक निषेध (mutual exclusion) शब्द का अर्थ होता है – धर्म और राज्य दोनों एक-दूसरे के अंदरूनी मामले से दूर रहेंगे। राज्य के लिए ज़रूरी है कि वह धर्म के क्षेत्र में हस्तक्षेप न करे। ठीक इसी तरह धर्म को चाहिए कि वह राज्य की नीति में दखल न दे और न ही राज्य-संचालन को प्रभावित करे। दूसरे शब्दों में, पारस्परिक-निषेध का अर्थ है कि धर्म और राज्य परस्पर एकदम अलग होने चाहिए।

क्या हमें राजनीतिक-सिद्धांत का पाठ्यक्रम पढ़ाने की शुरुआत हो गई है?

धर्म और राज्य को एकदम अलग रखने के इस मुख्यधारा के नज़रिए का उद्देश्य क्या है? इसका उद्देश्य है व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा। जो राज्य संगठित धर्म को समर्थन देता है वह पहले से ही मजबूत धर्म को और ताकतवर बनाता है। जब धार्मिक संगठन व्यक्ति के धार्मिक जीवन का नियंत्रण करने लगते हैं, जब वे यह तक बताने लगें कि किसी व्यक्ति को ईश्वर से किस तरह जुड़ाव रखना चाहिए, कैसे पूजा-प्रार्थना करनी चाहिए, तो व्यक्ति के पास इस स्थिति में अपनी धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए राज्य से अपेक्षा रखने का विकल्प होना चाहिए। लेकिन, जिस राज्य ने स्वयं इन संगठनों से हाथ मिला लिया हो वह क्या सहायता देगा? इसलिए, व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए ज़रूरी है कि राज्य धार्मिक संगठनों की सहायता न करे। लेकिन इसके साथ-साथ यह भी ज़रूरी है कि राज्य जैसी ताकतवर संस्था धार्मिक संगठनों को यह न बताने लगे कि उन्हें अपना काम कैसे करना चाहिए। इससे भी धार्मिक स्वतंत्रता बाधित होती है। इसी कारण, राज्य के लिए भी ज़रूरी है कि वह धार्मिक संगठनों को बाधा न पहुँचाए। संक्षेप में, राज्य को चाहिए कि वह न तो धर्म की मदद करे और न ही उसे बाधा पहुँचाए। इसके बदले, राज्य के लिए धर्म से एक सम्मानजनक दूरी बनाए रखना ज़रूरी है।

ठीक इसी तरह, राज्य को चाहिए कि नागरिकों को अधिकार प्रदान करते हुए वह धर्म को आधार न बनाए। पश्चिमी दुनिया में ईसाई धर्म कई शाखाओं में बँट गया और प्रत्येक शाखा का अपना चर्च था। इसी कारण ऐसा करना अनिवार्य हो गया। यदि राज्य की निष्ठा इनमें से किसी एक चर्च के साथ होती, तो वह इस चर्च के सदस्यों को दूसरे के सदस्यों से ज़्यादा तरजीह देता। इस संभावित असमानता से बचने के लिए धर्म और राज्य के बीच गठजोड़ को तोड़ना आवश्यक था। माना गया कि राज्य को व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए चाहे उस व्यक्ति का धर्म कोई भी हो।

© NCERT not to be republished

भारत में स्थितियाँ अलग थीं और इन स्थितियों से उत्पन्न चुनौती से निबटने के लिए संविधान निर्माताओं ने धर्मनिरपेक्षता की वैकल्पिक धारणा का विकास किया। संविधान निर्माता धर्मनिरपेक्षता के पश्चिमी मॉडल से दो रूपों में अलग हुए और इसके दो अलग-अलग कारण थे।

◈ **धार्मिक समूहों के अधिकार**

पहली बात, जैसा कि बताया जा चुका है, संविधान निर्माता विभिन्न समुदायों के बीच बराबरी के रिश्ते को उतना ही ज़रूरी मानते थे जितना विभिन्न व्यक्तियों के बीच बराबरी को। इसका कारण यह कि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता और आत्म-सम्मान का भाव सीधे-सीधे उसके समुदाय की हैसियत पर निर्भर करता है। यदि एक समुदाय दूसरे के प्रभुत्व में हो, तो उसके सदस्य भी कम स्वतंत्र होंगे। दूसरी तरफ, अगर दो समुदायों के बीच बराबरी का संबंध हो, एक का दूसरे पर प्रभुत्व न हो, तो इन समुदायों के सदस्य आत्म-सम्मान और आज़ादी के भाव से भरे होंगे। इसलिए, भारतीय संविधान सभी धार्मिक समुदायों को शिक्षा-संस्थान स्थापित करने और चलाने का अधिकार प्रदान करता है। भारत में धार्मिक स्वतंत्रता का अर्थ व्यक्ति और समुदाय दोनों की धार्मिक स्वतंत्रता होता है।

◈ ***राज्य का हस्तक्षेप करने का अधिकार***

दूसरी बात, धर्म और राज्य के अलगाव का अर्थ भारत में पारस्परिक-निषेध नहीं हो सकता। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए कि धर्म से अनुमोदित रिवाज मसलन छुआछूत व्यक्ति को उसकी बुनियादी गरिमा और आत्म-सम्मान से वंचित करते हैं। इन रिवाजों की पैठ इतनी गहरी और व्यापक थी कि राज्य के सक्रिय हस्तक्षेप के बिना इनके खात्मे की उम्मीद नहीं थी। राज्य को धर्म के अंदरूनी मामले में हस्तक्षेप करना ही पड़ा। ऐसे हस्तक्षेप हमेशा नकारात्मक नहीं होते। राज्य ऐसे में धार्मिक समुदायों की मदद भी कर सकता है। मिसाल के तौर पर धार्मिक संगठन द्वारा चलाए जा रहे शिक्षा-संस्थान को वह धन दे सकता है। इस तरह, राज्य धार्मिक समुदायों की मदद भी कर सकता है और बाधा भी पहुँचा सकता है। यह इस बात पर निर्भर है कि राज्य के किन कदमों से स्वतंत्रता और समता जैसे मूल्यों को बढ़ावा मिलता है। भारत में धर्म और राज्य के अलगाव का अर्थ पारस्परिक-निषेध नहीं बल्कि राज्य की धर्म से सिद्धांतगत दूरी है। यह एक जटिल विचार है। इससे राज्य को सभी धर्मों से दूरी रखने की छूट मिलती है ताकि वह अवसर के अनुकूल धर्म के मामलों में हस्तक्षेप कर सके अथवा ऐसे मामलों में दखल देने से बचा रहे। यह इस बात पर निर्भर है कि इन दोनों में से किस कदम से स्वतंत्रता, समता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा मिलता है।

मैं यह जानना चाहती हूँ कि आखिरकार, धर्म के मामलों का राज्य नियमन कर सकता है या नहीं? इसके बिना, कोई धार्मिक सुधार नहीं हो सकता।

© NCERT not to be republished

हमने अभी तक तीन केंद्रीय विशेषताओं के बारे में पढ़ा। इन्हें हमारे संविधान की उपलब्धियाँ भी कहा जा सकता है।

- पहली बात तो यह कि हमारे संविधान ने उदारवादी व्यक्तिवाद को एक शक्ल देकर उसे मजबूत किया है। यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है क्योंकि यह सब एक ऐसे समाज में किया गया जहाँ सामुदायिक जीवन-मूल्य व्यक्ति की स्वायत्तता को कोई महत्व नहीं देते अथवा शत्रुता का भाव रखते हैं।
- दूसरे, हमारे संविधान ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आँच लाए बगैर सामाजिक न्याय के सिद्धांत को स्वीकार किया है। जाति आधारित 'सकारात्मक कार्य-योजना (Affirmative action programme) के प्रति संवैधानिक वचनबद्धता से प्रकट होता है कि भारत दूसरे राष्ट्रों की तुलना में कहीं आगे है। क्या कोई इस बात को भूल सकता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में सकारात्मक कार्य-योजना सन् 1964 के नागरिक अधिकार आंदोलन के बाद आरंभ हुई जबकि भारतीय संविधान ने इसे लगभग दो दशक पहले ही अपना लिया था।
- तीसरे, विभिन्न समुदायों के आपसी तनाव और झगड़े की पृष्ठभूमि में भी भारतीय संविधान ने समूहगत अधिकार (Group rights) (जैसे - सांस्कृतिक विशिष्टता की अभिव्यक्ति का अधिकार) प्रदान किए हैं। इससे पता चलता है कि संविधान निर्माता उस चुनौती से निपटने के लिए बहुत पहले से तैयार थे जो चार दशक बाद बहु-संस्कृतिवाद के नाम से जानी गई।

सार्वभौम मताधिकार

दो अन्य केंद्रीय विशेषताओं को उपलब्धि के रूप में गिना जा सकता है। सार्वभौम मताधिकार के प्रति वचनबद्धता अपने आप में कोई कम बड़ी उपलब्धि नहीं, खासतौर पर उस स्थिति में जब माना जाता हो कि भारत में परंपरागत आपसी ऊँच-नीच का व्यवहार बहुत मजबूत है और उसे समाप्त कर पाना लगभग असंभव है। सार्वभौम मताधिकार को अपनाना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण कहा जाएगा क्योंकि पश्चिम के उन देशों में भी जहाँ लोकतंत्र की जड़ स्थायी रूप से जम चुकी थी, कामगार तबके और महिलाओं को मतदान का अधिकार काफी देर से दिया गया था। एक बार राष्ट्र के विचार ने समाज के अभिजात्य तबके में जगह बना ली, तो इसके परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक स्व-शासन का विचार भी पनपा। इस प्रकार, भारतीय राष्ट्रवाद की धारणा में हमेशा एक ऐसी राजव्यवस्था की बात मौजूद रही जो समाज के प्रत्येक सदस्य की इच्छा पर आधारित हो। सार्वभौम मताधिकार का विचार भारतीय राष्ट्रवाद के बीज—विचारों में एक है। भारत के लिए अनौपचारिक रूप से संविधान तैयार करने का पहला प्रयास 'कंस्टिट्यूशन ऑफ इंडिया बिल' के नाम से सन् 1895 में हुआ था। इस पहले प्रयास में भी इसके लेखक ने घोषणा की थी कि प्रत्येक नागरिक अर्थात् भारत में जन्मे व्यक्ति को देश के मामलों में भाग लेने तथा सरकारी पद हासिल करने का हक है। मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट (1928 ई.) में

© NCERT not to be republished

सभा ने आम आदमी और लोकतांत्रिक नियमों की पूरी सफलता पर भरपूर भरोसा करते हुए तथा इस विश्वास के साथ वयस्क मताधिकार के सिद्धांत को अपनाया है कि वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतांत्रिक शासन की यह शुरुआत, सबका भला करेगी।

अलादि कृष्णस्वामी अय्यर
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 835, 23 नवंबर 1949

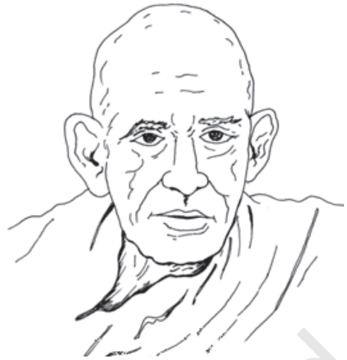

सचमुच यह गर्व की बात है कि 'एक व्यक्ति – एक वोट' का सिद्धांत लगभग बगैर किसी ना-नुकर के मान लिया गया। क्या यह बात सच नहीं कि बहुत से देशों में मताधिकार के लिए महिलाओं को संघर्ष करना पड़ा।

नागरिकता की इसी धारणा की पुष्टि करते हुए कहा गया कि 24 वर्ष की आयु के हर व्यक्ति को (स्त्री हो या पुरुष) लोकसभा के लिए मतदान करने का अधिकार होगा। इस रिपोर्ट में ऐसे हर व्यक्ति को नागरिक का दर्जा प्रदान किया गया जो राष्ट्रमंडल की भू-सीमा में पैदा हुआ है और जिसने किसी अन्य राष्ट्र की नागरिकता नहीं ग्रहण की है अथवा जिसके पिता इस भू-सीमा में जन्म हों या बस गए हों। इस तरह, शुरुआती दौर से ही सार्वभौम मताधिकार को अत्यंत महत्त्वपूर्ण और वैधानिक साधन माना गया जिसके सहारे राष्ट्र की जनता अपनी इच्छा का इज़हार करती है।

संघवाद

पूर्वोत्तर से संबंधित अनुच्छेद 371 को जगह देकर भारतीय संविधान ने 'असमतोल संघवाद' जैसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवधारणा को अपनाया। संघवाद से संबंधित अध्याय में हमने देखा कि संविधान में एक मजबूत केंद्रीय सरकार की बात मानी गई है। संविधान का झुकाव केंद्र सरकार की मजबूती की तरफ तो है लेकिन इसके बावजूद भारतीय संघ की विभिन्न इकाइयों की कानूनी हैसियत और विशेषाधिकार में महत्त्वपूर्ण अंतर है। अमेरिकी संघवाद की संवैधानिक बनावट समतोल है लेकिन भारतीय संघवाद संवैधानिक रूप से असमतोल है। कुछ एक इकाइयों की विशेष ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए संविधान की रचना में बराबर इस बात का ख्याल रखा गया कि इन इकाइयों के साथ संबंध अनूठे रहें अथवा इन्हें विशेष दर्जा प्रदान किया जाय।

अनुच्छेद 371ए के तहत पूर्वोत्तर के प्रदेश नगालैंड को विशेष दर्जा प्रदान किया गया। यह अनुच्छेद न सिर्फ नगालैंड में पहले से लागू नियमों को मान्यता

प्रदान करता है बल्कि आप्रवास पर रोक लगाकर स्थानीय पहचान की रक्षा भी करता है। बहुत से अन्य प्रदेशों को भी ऐसे विशेष प्रावधानों का लाभ मिला है। भारतीय संविधान के अनुसार विभिन्न प्रदेशों के साथ इस असमान बरताव में कोई बुराई नहीं है।

हालाँकि संविधान में मूल रूप से यह बात नहीं कही गई है परंतु आज भारत एक बहु-भाषिक संघ है। हर बड़े भाषाई समूह की राजनीतिक मान्यता है और इन्हें परस्पर बराबरी का दर्जा प्राप्त है। इस तरह भारत के लोकतांत्रिक और भाषाई संघवाद ने सांस्कृतिक पहचान के दावे को एकता के दावे के साथ जोड़ने में सफलता पाई है। भारत में एक भरा-पूरा राजनीतिक मैदान मौजूद है जिसमें परस्पर प्रतिस्पर्धी बहुविध अस्मिताओं को राजनीतिक दावेदारी करने की छूट है।

मैं सचमुच चकित हूँ। कौन कहता है कि हमारा संविधान सिर्फ नकल है। हर 'बाहरी' अंश पर हमने अपनी विशिष्ट छाप छोड़ी है।

राष्ट्रीय पहचान

संविधान में समस्त भारतीय जनता की एक राष्ट्रीय पहचान पर निरंतर ज़ोर दिया गया है। इस संबंध में हम यहाँ कुछ बातों पर गौर करें। ऊपर की चर्चा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारी एक राष्ट्रीय पहचान का भाषा या धर्म के आधार पर बनी अलग-अलग पहचानों से कोई विरोध नहीं है। भारतीय संविधान में इन दो पहचानों के बीच संतुलन बनाने की कोशिश की गई है। फिर भी, किन्हीं विशेष परिस्थितियों में राष्ट्रीय पहचान को वरीयता प्रदान की गई है। इसे धर्म के आधार पर पृथक निर्वाचन-मंडल बनाने के संबंध में हुई बहस में स्पष्ट किया गया। संविधान में ऐसे निर्वाचन-मंडल की बात नकार दी गई। पृथक निर्वाचन-मंडल की बात को नकारने का कारण यह नहीं था कि इसको मानने पर विभिन्न धार्मिक समुदायों में भेद पैदा होता है अथवा इससे राष्ट्रीय एकता की धारणा पर खतरा उत्पन्न होता है। इसको नकारने का कारण यह था कि इससे राष्ट्रीय-जीवन सहजता में बाधा पहुँचती है।

प्रक्रियागत उपलब्धि

ऊपर बताई गई पाँच केंद्रीय विशेषताओं को हमारे संविधान की आधारभूत महत्व की उपलब्धि कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ उपलब्धियाँ प्रक्रियागत भी हैं।

- अव्वल तो यह कि भारतीय संविधान का विश्वास राजनीतिक विचार-विमर्श में है। हम इस बात को जानते हैं कि बहुत-से समूहों और हितों की संविधान सभा में समुचित नुमाइंदगी न हो सकी। लेकिन, इस सभा की बहसों से यह बात साफ

जाहिर हो जाती है कि संविधान निर्माताओं का नज़रिया यथा संभव सबको शामिल करने का था। यह खुलापन इस बात का संकेत है कि भारतीय जनता परिणामों को अपने स्वार्थों की तुला पर नहीं बल्कि तर्कबुद्धि की तुला पर तौलकर परखने के लिए तैयार है। इससे यह भी पता चलता है कि संविधान निर्माता असहमति और विभेद को एक सकारात्मक मूल्य के रूप में देखते थे।

लेकिन आगे चलकर यह भूलना सबके हित में होगा कि इस देश में अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक जैसी कोई चीज़ है। भारत में सिर्फ एक समुदाय है...

सरदार पटेल
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड VIII, पृष्ठ 272, 25 मई 1949

- दूसरे, इससे सुलह और समझौते के जज़्बे का भी पता चलता है। सुलह और समझौते जैसे शब्द को हमेशा नकार के भाव से नहीं देखना चाहिए। हर समझौता बुरा नहीं होता। यदि स्वार्थ के वशीभूत होकर किसी मूल्यवान चीज़ का सौदा कर लिया जाता है, तो यह समझौता बुरा है। लेकिन किसी एक मूल्य के थोड़े से सौदे के बदले दूसरा मूल्य हासिल हो और यह सौदा दो बराबरी के लोगों के बीच खुली प्रक्रिया में होता है, तो ऐसे समझौते पर आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। हम इस बात का अफसोस कर सकते हैं कि हमारे पास हर चीज़ होनी चाहिए परंतु है नहीं। फिर भी, हर चीज़ को थोड़ा-थोड़ा हासिल कर लेना नैतिक दृष्टि से अंगुली उठाने लायक नहीं है। संविधान सभा इस बात पर अडिग थी कि किसी महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर फ़ैसला बहुमत के बजाय सर्वानुमति से लिया जाय। यह दृढ़ता अपने आप में प्रशंसनीय है।

आलोचना

भारतीय संविधान की कई आलोचनाएँ हैं। इनमें से तीन पर यहाँ संक्षेप में चर्चा की जाएगी– (क) यह संविधान अस्त-व्यस्त है। (ख) इसमें सबकी नुमाइंदगी नहीं हो सकी है। (ग) यह संविधान भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है।

भारतीय संविधान को अस्त-व्यस्त या ढीला-ढाला बताया जाता है। इसके पीछे यह धारणा काम करती है कि किसी देश का संविधान एक कसे हुए दस्तावेज़ के रूप में मौजूद

© NCERT not to be republished

होना चाहिए। लेकिन यह बात संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देश के लिए भी सच नहीं है जहाँ संविधान एक कसे हुए दस्तावेज़ के रूप में है। सच बात यह है कि किसी देश का संविधान एक दस्तावेज़ तो होता ही है इसमें संवैधानिक हैसियत वाले अन्य दस्तावेज़ों को भी शामिल किया जाता है। इस तरह, इस बात की पूरी संभावना है कि कुछ महत्त्वपूर्ण संवैधानिक वक्तव्य तथा कायदे उस कसे हुए दस्तावेज़ से बाहर मिलें जिसे 'संविधान' कहा जाता है। जहाँ तक भारत का सवाल है – संविधान हैसियत के ऐसे बहुत-से वक्तव्यों, ब्यौरों और कायदों को एक ही दस्तावेज़ के अंदर समेट लिया गया है। मिसाल के तौर पर, बहुत-से देशों के संवैधानिक दस्तावेज़ में चुनाव आयोग या लोक सेवा आयोग के संबंध में कोई प्रावधान नहीं है। लेकिन भारत के संविधान में ऐसे अनेक प्रावधान मौजूद हैं।

संस्थाओं की बनावट में समझौते की बात तो समझ में आती है लेकिन परस्पर विरोधी सिद्धांतों को एक में कैसे समेटा जा सकता है?

क्या आपको याद है कि संविधान सभा का निर्माण कैसे हुआ था? उस वक्त सार्वभौम मताधिकार प्रदान नहीं किया गया था और संविधान सभा के अधिकांश सदस्य समाज के अगड़े तबके के थे। क्या इससे लगता है कि देश के सभी लोगों की नुमाइंदगी हमारे संविधान में नहीं हो सकी?

यहाँ ज़रूरी है कि हम नुमाइंदगी के दो हिस्सों में फर्क करें। इसमें एक को हम चाहें तो 'आवाज़' कह सकते हैं और दूसरे को 'राय'। नुमाइंदगी में 'आवाज़' अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं। लोगों की पहचान खुद उनकी जुबान और आवाज़ से होनी चाहिए न कि उनके मालिकों की जुबान और आवाज़ से। अगर हम इस दृष्टि से विचार करें तो हमारे संविधान में गैर-नुमाइंदगी मौजूद मिलेगी क्योंकि संविधान सभा के सदस्य सीमित मताधिकार से चुने गए थे न कि सार्वभौम मताधिकार से। बहरहाल, अगर हम नुमाइंदगी के दूसरे पहलू यानी 'राय' पर गौर करें तो हमारे संविधान में गैर-नुमाइंदगी नहीं मिलेगी। यह कहना तो खैर अपने आप में एक अतिशयोक्ति है कि संविधान सभा में हर किस्म की राय रखी गई लेकिन इसमें सच्चाई का एक पुट ज़रूर है। यदि हम संविधान सभा में हुई बहसों को पढ़ें तो जाहिर होगा कि सभा में बहुत-से मुद्दे उठाए गए और बड़े पैमाने पर राय रखी गई। सदस्यों ने अपने व्यक्तिगत और सामाजिक सरोकार पर आधारित मसले ही नहीं बल्कि समाज के विभिन्न तबके के सरोकारों और हितों पर आधारित मसले भी उठाए।

क्या यह संयोग मात्र है कि आज हर शहर के नुक्कड़ पर हमें हाथ में संविधान लिए अंबेडकर की प्रतिमा मिलती है? यह अंबेडकर के प्रति महज सांकेतिक श्रद्धांजलि नहीं है। यह प्रतिमा दलितों की इस भावना का इज़हार करती है कि संविधान में उनकी अनेक आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

एक अंतिम आलोचना यह है कि भारतीय संविधान एक विदेशी दस्तावेज़ है। इसका हर अनुच्छेद पश्चिमी संविधानों की नकल है और भारतीय जनता के सांस्कृतिक भावबोध से इसका मेल नहीं बैठता। संविधान सभा में भी बहुत-से सदस्यों ने यह बात उठाई थी। इस दृष्टि से भारतीय संविधान अत्यंत भ्रामक है क्योंकि इस संविधान की सांस्कृतिक और मूल्यपरक गति-मति भारत की असली जनता और उसके आचार-विचार के सांस्कृतिक तथा मूल्यपरक गति-मति के अनुकूल नहीं है।

यह आरोप कितना सच है?

यह बात सच है कि भारतीय संविधान आधुनिक और अंशतः पश्चिमी है। लेकिन इससे यह पूरी तरह विदेशी नहीं हो जाता? पहली बात तो यह कि अनेक भारतीयों ने चिंतन का न सिर्फ आधुनिक तरीका अपना लिया है बल्कि उसे आत्मसात भी कर लिया है। इन लोगों के लिए पश्चिमीकरण अपनी परंपरा की बुराइयों के विरोध का एक तरीका था। राम मोहन राय से इस प्रवृत्ति की शुरुआत हुई थी और आज भी यह प्रवृत्ति दलितों द्वारा जारी है। वस्तुतः बहुत पहले यानी सन् 1841 में ही यह बात जाहिर हो गई थी। उत्तर भारत के तिरस्कृत और अछूत कहलाने वाले 'दलित' नए कानूनों का इस्तेमाल करने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाए और इन लोगों ने नई विधि व्यवस्था का सहारा लेकर अपने जमींदारों के खिलाफ मुकदमे दायर किए। इस तरह आधुनिक कानून का सहारा लेकर लोगों ने गरिमा और इंसाफ के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाया।

बिलकुल! क्या पहले अध्याय में हमने यही बात नहीं सीखी कि समाज के हर तबके के पास संविधान को मानने का कोई वैध कारण होना चाहिए?

दूसरे, जब पश्चिमी आधुनिकता का स्थानीय सांस्कृतिक व्यवस्था से टकराव हुआ तो एक किस्म की संकर-संस्कृति उत्पन्न हुई। यह संकर-संस्कृति पश्चिमी आधुनिकता से कुछ लेने और कुछ छोड़ने की रचनात्मक प्रक्रिया का परिणाम थी ऐसी प्रक्रिया को न तो पश्चिमी आधुनिकता में ढूँढा जा सकता है और न ही देशी परंपरा में। पश्चिमी आधुनिकता और देशी सांस्कृतिक व्यवस्था के संयोग से उत्पन्न इस बहुमुखी परिघटना में वैकल्पिक आधुनिकता का चरित्र है। गैर-पश्चिमी मुल्कों में, लोगों ने सिर्फ अपने अतीत के आचारों से ही छुटकारा पाने की कोशिश नहीं की बल्कि अपने ऊपर थोपी गई पश्चिमी आधुनिकता के एक खास रूप के बंधनों को भी तोड़ना चाहा। इस तरह, जब हम अपना संविधान बना रहे थे तो हमारे मन में परंपरागत भारतीय और पश्चिमी मूल्यों के स्वस्थ मेल का भाव था। यह संविधान सचेत चयन और अनुकूलन का परिणाम है न कि नकल का।

> ...हम वीणा या सितार का संगीत सुनना चाहते थे लेकिन यहाँ तो अंग्रेजी बैंड बज रहा है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि हमारे संविधान निर्माता इसी रूप में शिक्षित हुए थे।... यह ठीक वैसा ही संविधान है जैसा महात्मा गांधी नहीं चाहते थे और जिसके बारे में उन्होंने सोचा तक न था।
>
> के. हनुमन्थैया
>
> संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 616-617, 17 नवंबर 1949

सीमाएँ

इन बातों का यह मतलब नहीं कि भारत का संविधान हर तरह से पूर्ण और त्रुटिहीन दस्तावेज़ है। जिन सामाजिक परिस्थितियों में इसका निर्माण हुआ उसे देखते हुए यह बात स्वाभाविक है कि इसमें कुछ विवादास्पद मुद्दे रह जाएँ - ऐसी बातें बच जाएँ जिनके पुनरावलोकन की ज़रूरत हो। इस संविधान की बहुत-सी ऐसी बातें समय के दबाव में पैदा हुईं। फिर भी, हमें स्वीकार करना चाहिए कि इस संविधान की कुछ सीमाएँ हैं।

अब हम संक्षेप में संविधान की सीमाओं की चर्चा कर लें।

पहली बात यह कि भारतीय संविधान में राष्ट्रीय एकता की धारणा बहुत केंद्रीकृत है। दूसरे, इसमें लिंगगत-न्याय के कुछ महत्त्वपूर्ण मसलों खासकर परिवार से जुड़े मुद्दों पर ठीक से ध्यान नहीं दिया गया है।

तीसरे, यह बात स्पष्ट नहीं है कि एक गरीब और विकासशील देश में कुछ बुनियादी सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को मौलिक अधिकारों का अभिन्न हिस्सा बनाने के बजाय उसे राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्व वाले खंड में क्यों डाल दिया गया?

संविधान की इन सीमाओं के कारण को समझना और दूर करना संभव है। लेकिन यहाँ यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है। हमारा तर्क यह है कि संविधान की ये सीमाएँ इतनी गंभीर नहीं हैं कि ये संविधान के दर्शन के लिए ही खतरा पैदा कर दें।

निष्कर्ष

इस अध्याय में हमने जाना कि संविधान एक जीवंत दस्तावेज़ है। संविधान की केंद्रीय विशेषताएँ उसे जीवंत बनाती हैं। कानूनी प्रावधान और संस्थानिक-व्यवस्था समाज की ज़रूरत तथा समाज द्वारा अपनाए गए दर्शन पर निर्भर हैं। इस पुस्तक में हमने जिस संस्थानिक-व्यवस्था का अध्ययन किया है उसके मूल में है भविष्य के प्रति एक दृष्टि। इस दृष्टि को सबकी सहमति हासिल है। यह दृष्टि ऐतिहासिक रूप से स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उत्पन्न हुई। संविधान सभा ने इस दृष्टि का परिष्कार किया और उसे विधिक संस्थानिक रूप प्रदान किया। इस तरह संविधान में यह दृष्टि रूपायित हुई।

© NCERT not to be republished

बहुत से लोगों का कहना है कि इस दृष्टि अथवा संविधान के दर्शन का सर्वोत्तम सार-संक्षेप संविधान की प्रस्तावना में है।

क्या आपने ध्यानपूर्वक संविधान की प्रस्तावना को पढ़ा है? इसमें बहुत से उद्देश्यों का जिक्र तो है ही, साथ में एक विनम्र दावेदारी भी है। इस संविधान को महान व्यक्तियों के एक समूह ने नहीं प्रदान किया। इसकी रचना और इसका अंगीकार 'हम भारत के लोग' के द्वारा हुआ। इस तरह जनता स्वयं अपनी नियति की नियंता है और लोकतंत्र एक साधन है जिसके सहारे लोग अपने वर्तमान और भविष्य को आकार देते हैं। आज प्रस्तावना के इस उद्घोष को पचास साल से ज़्यादा हो चुके हैं। हम बहुत से मसलों पर लड़े हैं। हमने देखा है कि अदालतों और सरकारों के बीच अनेक व्याख्याओं पर असहमति है। केंद्र और प्रादेशिक सरकारों के बीच मत-वैभिन्न है। राजनीतिक दल संविधान की विविध व्याख्याओं के आधार पर पूरे ज़ोर-शोर से लड़ते हैं। अगले साल आप पढ़ेंगे कि हमारी राजनीति में बहुत सी समस्याएँ और कमियाँ हैं। फिर भी, अगर आप किसी राजनेता अथवा आम नागरिक से पूछें तो पाएँगे कि हर कोई संविधान के अंतर्निहित दर्शन में विश्वास करता है। हम सब साथ रहना चाहते हैं और समता, स्वतंत्रता तथा बंधुता की भावना के आधार पर समृद्धि करना चाहते हैं। संविधान की दृष्टि अथवा दर्शन में यह साझेदारी संविधान को अमल में लाने का महत्त्वपूर्ण परिणाम है। सन् 1950 में इस संविधान का निर्माण एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। आज, इस संविधान के दर्शन को जीवंत रखना हमारे लिए महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी।

कोई भी दस्तावेज़ पूर्ण नहीं हो सकता और कोई भी आदर्श पूरी तरह से प्राप्त नहीं किया जा सकता। लेकिन, क्या इसका मतलब यह हुआ कि हम कोई आदर्श अपनाएँ ही नहीं? भविष्य का कोई सपना पालें ही नहीं? क्या मैं सही कह रही हूँ?

प्रश्नावली

1. नीचे कुछ कानून दिए गए हैं। क्या इनका संबंध किसी मूल्य से है? यदि हाँ, तो वह अंतर्निहित मूल्य क्या है? कारण बताएँ।
   (क) पुत्र और पुत्री दोनों का परिवार की संपत्ति में हिस्सा होगा।
   (ख) अलग-अलग उपभोक्ता वस्तुओं के बिक्री-कर का सीमांकन अलग-अलग होगा।
   (ग) किसी भी सरकारी विद्यालय में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।
   (घ) 'बेगार' अथवा बंधुआ मजदूरी नहीं कराई जा सकती।

2. नीचे कुछ विकल्प दिए जा रहे हैं। बताएँ कि इसमें किसका इस्तेमाल निम्नलिखित कथन को पूरा करने में नहीं किया जा सकता?
लोकतांत्रिक देश को संविधान की ज़रूरत...
   (क) सरकार की शक्तियों पर अंकुश रखने के लिए होती है।
   (ख) अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों से सुरक्षा देने के लिए होती है।
   (ग) औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता अर्जित करने के लिए होती है।
   (घ) यह सुनिश्चित करने के लिए होती है कि क्षणिक आवेग में दूरगामी के लक्ष्यों से कहीं विचलित न हो जाएँ।
   (ङ) शांतिपूर्ण ढंग से सामाजिक बदलाव लाने के लिए होती है।

3. संविधान सभा की बहसों को पढ़ने और समझने के बारे में नीचे कुछ कथन दिए गए हैं – (अ) इनमें से कौन-सा कथन इस बात की दलील है कि संविधान सभा की बहसें आज भी प्रासंगिक हैं? कौन-सा कथन यह तर्क प्रस्तुत करता है कि ये बहसें प्रासंगिक नहीं हैं। (ब) इनमें से किस पक्ष का आप समर्थन करेंगे और क्यों?
   (क) आम जनता अपनी जीविका कमाने और जीवन की विभिन्न परेशानियों के निपटारे में व्यस्त होती हैं। आम जनता इन बहसों की कानूनी भाषा को नहीं समझ सकती।
   (ख) आज की स्थितियाँ और चुनौतियाँ संविधान बनाने के वक्त की चुनौतियों और स्थितियों से अलग हैं। संविधान निर्माताओं के विचारों को पढ़ना और अपने नए जमाने में इस्तेमाल करना दरअसल अतीत को वर्तमान में खींच लाना है।
   (ग) संसार और मौजूदा चुनौतियों को समझने की हमारी दृष्टि पूर्णतया नहीं बदली है। संविधान सभा की बहसों से हमें यह समझने के तर्क मिल सकते हैं कि कुछ संवैधानिक व्यवहार क्यों महत्त्वपूर्ण हैं। एक ऐसे समय में जब संवैधानिक व्यवहारों को चुनौती दी जा रही है, इन तर्कों को न जानना संवैधानिक-व्यवहारों को नष्ट कर सकता है।

4. निम्नलिखित प्रसंगों के आलोक में भारतीय संविधान और पश्चिमी अवधारणा में अंतर स्पष्ट करें –
   (क) धर्मनिरपेक्षता की समझ
   (ख) अनुच्छेद 371
   (ग) सकारात्मक कार्य-योजना या अफरमेटिव एक्शन
   (घ) सार्वभौम वयस्क मताधिकार

© NCERT not to be republished

5. निम्नलिखित में धर्मनिरपेक्षता का कौन-सा सिद्धांत भारत के संविधान में अपनाया गया है?
   (क) राज्य का धर्म से कोई लेना-देना नहीं है।
   (ख) राज्य का धर्म से नजदीकी रिश्ता है।
   (ग) राज्य धर्मों के बीच भेदभाव कर सकता है।
   (घ) राज्य धार्मिक समूहों के अधिकार को मान्यता देगा।
   (ङ) राज्य को धर्म के मामलों में हस्तक्षेप करने की सीमित शक्ति होगी।

6. निम्नलिखित कथनों को सुमेलित करें –

(क) विधवाओं के साथ किए जाने वाले बरताव की आलोचना की आज़ादी।	आधारभूत महत्व की उपलब्धि
(ख) संविधान-सभा में फ़ैसलों का स्वार्थ के आधार पर नहीं बल्कि तर्कबुद्धि के आधार पर लिया जाना।	प्रक्रियागत उपलब्धि
(ग) व्यक्ति के जीवन में समुदाय के महत्त्व को स्वीकार करना।	लैंगिक-न्याय की उपेक्षा
(घ) अनुच्छेद 371	उदारवादी व्यक्तिवाद
(ङ) महिलाओं और बच्चों को परिवार की संपत्ति में असमान अधिकार।	धर्म-विशेष की ज़रूरतों के प्रति ध्यान देना

7. यह चर्चा एक कक्षा में चल रही थी। विभिन्न तर्कों को पढ़ें और बताएँ कि आप इनमें किस-से सहमत हैं और क्यों?

जयेश – मैं अब भी मानता हूँ कि हमारा संविधान एक उधार का दस्तावेज़ है।

सबा – क्या तुम यह कहना चाहते हो कि इसमें भारतीय कहने जैसा कुछ है ही नहीं? क्या मूल्यों और विचारों पर हम 'भारतीय' अथवा 'पश्चिमी' जैसा लेबल चिपका सकते हैं? महिलाओं और पुरुषों की समानता का ही मामला लो। इसमें 'पश्चिमी' कहने जैसा क्या है? और, अगर ऐसा है भी तो क्या हम इसे महज पश्चिमी होने के कारण खारिज कर दें?

जयेश – मेरे कहने का मतलब यह है कि अंग्रेजों से आज़ादी की लड़ाई लड़ने के बाद क्या हमने उनकी संसदीय-शासन की व्यवस्था नहीं अपनाई?

नेहा – तुम यह भूल जाते हो कि जब हम अंग्रेजों से लड़ रहे थे तो हम सिर्फ अंग्रेजों के खिलाफ़ थे। अब इस बात का, शासन की जो व्यवस्था हम चाहते थे उसको अपनाने से कोई लेना-देना नहीं, चाहे यह जहाँ से भी आई हो।

© NCERT not to be republished

8. ऐसा क्यों कहा जाता है कि भारतीय संविधान को बनाने की प्रक्रिया प्रतिनिधिमूलक नहीं थी? क्या इस कारण हमारा संविधान प्रतिनिध्यात्मक नहीं रह जाता? अपने उत्तर के कारण बताएँ।

9. भारतीय संविधान की एक सीमा यह है कि इसमें लैंगिक-न्याय पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। आप इस आरोप की पुष्टि में कौन-से प्रमाण देंगे। यदि आज आप संविधान लिख रहे होते, तो इस कमी को दूर करने के लिए उपाय के रूप में किन प्रावधानों की सिफारिश करते?

10. क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि – 'एक गरीब और विकासशील देश में कुछ एक बुनियादी सामाजिक-आर्थिक अधिकार मौलिक अधिकारों की केंद्रीय विशेषता के रूप में दर्ज करने के बजाए राज्य की नीति-निर्देशक तत्त्वों वाले खंड में क्यों रख दिए गए – यह स्पष्ट नहीं है।' आपके जानते सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को नीति-निर्देशक तत्त्व वाले खंड में रखने के क्या कारण रहे होंगे?

11. आपके विद्यालय ने 26 नवंबर को संविधान दिवस कैसे मनाया?

अपनी राय ज़रूर दें –

आपको यह किताब कैसी लगी? इसे पढ़ने या इसका प्रयोग करने का आपका अनुभव कैसा रहा? आपको इसमें क्या-क्या परेशानियाँ हुईं? पुस्तक के अगले संस्करण में आप इसमें क्या-क्या बदलाव चाहेंगे? इन सबके बारे में या किसी भी नए सुझाव के संबंध में हमें अवश्य लिखें। आप अध्यापक हों, अभिभावक हों, छात्र हों या सामान्य पाठक, हर कोई सलाह दे सकता है। किताबों में बदलाव की प्रक्रिया में आपके सुझाव अमूल्य हैं। हम हर सुझाव का सम्मान करते हैं।

कृपया हमें इस पते पर लिखें:
समन्वयक (राजनीति विज्ञान)
सामाजिक विज्ञान शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-110016

© NCERT not to be republished